GURUKULA - PATRIKA

1984

G. K. V.
Hardwar

गुरुकुल-पत्रिका

चैत्र, वैशाख : २०४०

मार्च-अप्रैल : १९८४ वर्ष : ३६ अंक : ३-४

पूर्णांक: ३५४-५५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

विषय-सूची

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

(गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालयस्य, मासिक पत्रिका)

चैत्र, वैशाख २०४०
मार्च, अप्रैल : १९८४ वर्ष : ३६ अंक : ३-४
पूर्णांक ३५४-५५

श्रुति-सुधा

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विशुरूपं यदस्य।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक्॥ साम० ५८७॥

अन्वय :—इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा, अधिक्षमा विश्वरूपं यत् [अस्ति तत्] अस्य [एव अस्ति] ततः दाशुषे वसूनि ददाति। उपस्तुतं राधः अर्वाक् चित् चोदत्।

सं० अन्वयार्थ :—इन्द्र संसार का, मनुष्यों का राजा है। इस पृथिवी पर नाना रूपों वाला जो कुछ भी है वह सब भी इसी का ही है। उसी में से दानी को वह नानाविध वैभव देता है। अति प्रशंसनीय धन वह हमारी ओर प्रेरित करे।

अन्वयार्थ :—(इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा) सर्वविध ऐश्वर्यों का स्वामी, परमेश्वर इस सकल जगत् का और इस में रहने वाले सभी मनुष्यों का राजा है-स्वामी है। इतना ही नहीं (अधिक्षमा विशुरूपं यत्) इस पृथिवी पर नानारूपों वाला जो प्राणिजात है वा जो पदार्थ जात है वह भी सब (अस्य) इस इन्द्र का ही है, या इस सब का भी वही राजा है। (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) वह जगत् का स्वामी वह प्रभु अति प्रशंसनीय मनोवांछित अपने धन को भी इधर आत्मसमर्पण करने वाले साधक की ओर प्रेरित करे।

वह इन्द्र ही इस सम्पूर्ण संसार का और इसमें विद्यमान प्राणिसमूह और पदार्थसमूह का स्वामी है, राजा है। वह सर्वविध धन-वैभव दानशील को देता है। अति स्तुत्य वैभव—आन्तरिक दिव्य वैभव भी इस आत्मसमर्पण करने वाले उपासक की ओर ही वह प्रवाहित करता है। □

महापुरुषों के वचन

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

(गीता ६।५)

मनुष्य को अपने ही सहारे अपना उद्धार करना चाहिये और हीनभावना से अपने को बचाना चाहिये।

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।।
चरित्रमेवं व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ।।

(वा० रामा०–२।१०९।४)

मनुष्य के चरित्र या बर्ताव से ही पता लग जाता है कि वह कुलीन है या अकुलीन, वीर है या मात्र डींग मारने वाला तथा पवित्र है या अपवित्र।

यः संयमधुरां धत्ते धैर्यमालम्ब्य संयमी ।
स पालयति यत्नेन वाग्वने सत्यपादपम् ।।

(ज्ञानार्णव–पृ० १२१)

जो संयम से रहने वाला व्यक्ति धैर्य का सहारा लेकर संयम की धुरा को धारण करता है, वही वाणी के वन में सत्यरूपी वृक्ष की यत्नपूर्वक रक्षा करता है अर्थात् धैर्य और संयम के बिना मनुष्य सत्य की रक्षा नहीं कर सकता।

न कंचिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ।।

(अर्थशास्त्र–चाणक्य १/१५)

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह किसी का अपमान न करे, सबके मत को सुने, एक बालक की भी अच्छी बात को सुनकर उसका उपयोग करे।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ।।

(मनुस्मृति ४/१३७)

पूर्व की विफलताओं के कारण अपने को हीन समझकर हतोत्साहित नहीं होना चाहिये, प्रत्युत् अभ्युदय के लिए जीवन पर्यन्त परिश्रम करते रहना चाहिए और उसको दुर्लभ नहीं मानना चाहिये।

महापुरुष चरितम्

स्वामी दर्शनानन्द :

यः ख्यातः सद्दार्शनिकाग्रणीः सन् बभूव शास्त्रार्थमहारथीन्द्रः ।
यद् युक्तिजातं प्रबलं नितान्तं स दर्शनानन्दसरस्वतीड्यः ॥

जो अपने समय के प्रसिद्ध उत्तम दार्शनिकों में अगुआ होकर शास्त्रार्थ महारथियों में श्रेष्ठ बन गये। जिनकी युक्तियाँ बहुत प्रबल होती थीं, वे स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती स्तुति के योग्य हैं।

महात्मा नारायण स्वामी :

परोपकारे सततं प्रसक्तान्, दान्तान् प्रशान्तान् सुगुणैश्च कान्तान् ।
सप्रश्रयं तानिह संस्मरामो, नारायण स्वामी महात्मनो वयम् ॥

परोपकार में निरन्तर तत्पर, जितेन्द्रिय, प्रशान्त अपने गुणों से कान्त, महात्मा नारायण स्वामी का हम आदर पूर्वक स्मरण करते हैं।

महात्मा हंसराज :

योग्यो भृशं किन्तु समाजसेवाव्रतं समादाय चकार कार्यम् ।
आजीवनं साधु महान् मनीषी, श्री हंसराजः किल सोऽभिनन्द्यः ॥

अत्यधिक योग्य होते हुए भी समाज सेवा के कठिन व्रत को लेकर जिसने आजीवन कार्य किया। वह सज्जन, महान् विद्वान् श्री हंसराज निश्चय ही सभी के अभिनन्दन के योग्य हैं।

धर्मवीर लेखराम :

वेदोदितो धर्म इहास्त्यभीष्टः, लोकस्य सर्वस्य हिताय नूनम् ॥
तस्य प्रचारे सततं प्रसक्तः, श्री लेखरामो महनीय आसीत् ।

सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिये निश्चय ही वेद में कहा गया धर्म अभीष्ट है, ऐसा समझकर वेद धर्म के प्रचार में निरन्तर लगे हुए लेखराम जी सबके पूजनीय थे।

(महापुरुषकीर्तनम्—प० धर्मदेव)

सम्पादक के नाम पत्र

श्रीमन्नमस्ते।

११ दिसम्बर, १९८३ को महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी की ओर से स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती एवं राय साहब चौधरी प्रताप सिंह जी ने आर्य समाज, अनारकली, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में जब मेरा सम्मान किया तो मुझे अन्य सामग्री एवं ग्रन्थों के साथ परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा प्रकाशित "महर्षि दयानन्द निर्वाण शती स्मृति ग्रन्थ" अर्थात् Dayananda Commemoration Volume भी मिला। इसमें मेरा भी लेख है। ग्रन्थ उत्तम बना है। इसके लिये सभी संबद्ध महानुभाव बधाई के पात्र है।

उक्त ग्रन्थ के "हिंदी खण्ड" में पहला लेख श्री दीनानाथ सिंह आर्य का है जो महर्षि के जीवन के अन्तिम दिवस से संबन्धित है। लेख बड़े परिश्रम से लिखा गया है। उन्होंने अपने लेख के अंतिम भाग में लिखा है कि श्री गोपाल राव हरि जी ने अपने ग्रन्थ में कहीं भी जोधपुर की विरोधी प्रवृत्तियों का उल्लेख नहीं किया, न नन्ही जान का, न नौकर द्वारा चोरी का। लेख के अन्त में श्री आर्य जी लिखते हैं—"जगन्नाथ रसोइये का नाम, दूध के साथ कांच पीसकर दिया जाना और स्वामी जी का जगन्नाथ को रुपया देना तथा देश की सीमा से बाहर जाने की सलाह–ऐसी कथाएं हैं, जो लोक प्रचलित हैं–उनकी पुष्टि करना भी कठिन है और अस्वीकार करना भी।"

महर्षि को विष दिये जाने के विषय में श्री गोपालराव हरि, देवेन्द्र बाबू एवं जोधपुर के राव राजाओं के क्या विचार हैं, मैं इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता, पर एक दो तथ्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ। महर्षि का निर्वाण अक्तूबर१८८३ में हुआ और कुछ ही मास बाद अगले ही वर्ष १८८४ में मैक्समूलर ने अपने लेख में लिखा है कि उन्हें समाचार पत्रों में से संकेत देखने को मिले हैं कि स्वामी जी की मृत्यु उनके शत्रुओं द्वारा विष देने से हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में बैठे लोगों को भारत में ही रहने वालों की अपेक्षा भारत के विषय में अधिक जानकारी थी। इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि उस समय इंग्लैंड का भारत पर राज्य था। यही नहीं, मैक्समूलर ने अपनी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व अर्थात् १८९९ में स्वामी जी पर एक और लेख लिखा था, जिसमें स्वामी जी को जहर देने वाली बात को दुहराया है और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उन्हें बतलाया गया है कि जोधपुर की वेश्याओं के बहकावे पर किसी ब्राह्मण रसोइये द्वारा स्वामी जी को जहर दिया गया और रसोइये ने आत्महत्या कर ली थी। आगे मैक्समूलर महोदय लिखते हैं कि स्वामी जी की सहसा मृत्यु

का यही कारण था, अन्यथा दयानन्द बहुत शक्तिशाली थे और उनमें नेतृत्व करने की क्षमता थी। ये बातें मैक्समूलर ने कहां-कहां लिखी हैं, इसकी पूरी जानकारी निर्वाण शताब्दी पर ही प्रकाशित मेरे ग्रन्थ "World Perspectives on Swami Dayananda Saraswati" में पृष्ठ संख्या १२४ और १२७ पर दी गई है। यह ग्रन्थ Concept ने छापा है और Daystar Publications, B-2/48 A, Lawrence Road, New Delhi-110035. (फोन : ७१२११६९) से भी उपलब्ध है। डॉ० भवानीलाल भारतीय ने भी अपने ग्रन्थ "नवजागरण" के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती (१९८३ पृष्ठ ५२३) में मैक्समूलर के इन लेखों की ओर संकेत किया है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि महर्षि को विष देने वाली बात कल्पित नहीं है, बल्कि उसी समय ज्ञात तथ्यों पर आधारित है।

—डॉ० गंगाराम गर्ग
II/२०, वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर
हरिद्वार—२४९४०७

दिनांक १५-१२-१९८३

□ □ □

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(यजु० ४०।२)

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्तव्य कर्मों को करता हुआ ही पूर्ण आयु–पर्यन्त जीने की, अर्थात् अपने को समुन्नत करने की इच्छा करे। उसका कल्याण इसी में है; कर्तव्य कर्म को छोड़कर भागने में नहीं। कर्मबन्धन से बचने का यही उपाय है।

वैदिकयुगो नारीजातिश्च

—डॉ० प्रमिला वात्स्यायन
रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
रांची गर्ल्स कॉलेज, रांची

कस्यचित् अपि समाजस्य प्रगतिं ज्ञातुं तत्समाजे तत्कालीनसमये नार्यावस्था कीदृशी इति ज्ञानमावश्यकम्। प्रगतिशीले समाजे नारी अपि स्वतंत्रव्यक्तित्वयुक्ता, शिक्षिता एवं प्रगतिशीला अस्ति। रुग्णे एवं पराङ्मुखे समाजे नारी दलिता, धर्षिता एवं अशिक्षिताऽस्ति। वेदेषु अस्माकं समाजस्य सांस्कृतिको निधिः सुरक्षितः मानवतायाः विकासस्य इतिहासश्च समाहितः। अतएव वैदिकयुगे नार्यावस्था कीदृशी आसीत् इति जिज्ञासा विशेषतया स्वाभाविकी अस्मिन् युगे यदा सर्वत्र नारीमुक्त्याः आन्दोलनस्य चर्चा श्रूयते।

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इति कात्यायनस्मरणात् संहितावद् ब्राह्मणग्रन्थाः अपि वेदपदार्थान्तर्गता एव। वेदकालीनसमाजः निःसन्देहरुपेण पुरुषप्रधानः पितृमूलकः समाजः आसीत्। पुत्राः, कन्याः, वध्वः सर्वे तस्य छत्रछायायां सुखपूर्वकं अवसन्। पिता कन्यानां शिक्षादीक्षाविषये विशेष-सावधानः आसीत्। कन्याः अन्यविषयातिरिक्तं काव्यकलासंगीतनृत्याभिनयेषु अपि पारंगताः अभूवन्। ऋग्वेदे अनेकाः सूक्तविधायिकाः ऋषिकाः दृश्यन्ते। काक्षीवतः पत्नी घोषा निजतपस्यया मन्त्रदर्शनेन च अश्विनकुमारयोः अनुकम्पया परिपक्वावस्थायां विवाहसौख्यं अनुभूतवती। ऋग्वेदस्य दशममण्डले द्वौ सूक्तौ अश्विनीकुमाराभ्यां काक्षीवतीघोषायाः एव।

कन्यानां उदारशिक्षायाः एव परिणामः आसीत् यत् लोपामुद्रा, अपाला, रोमशा, सूर्या प्रभृति ऋषिकाः ऋग्वेदकालीनसमाजे आसन्। उपनिषद्काले समाजस्य उच्चस्तरे कन्याषु अपि उपनयनसंस्कारः प्रचलितः आसीत्। 'पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते' कथयति स्मृतिकारः। तदनन्तरं ताः विधिपूर्वकं शिक्षां अगृह्णन्। हारीतस्य इदं कथनं प्रेक्षणीयं-'द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योद्वाहाश्च। ब्रह्मवादिनामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति।' ब्रह्मवादिनीः स्त्रियः उपनिषद्युगस्य विशिष्टता। ताः निजजीवनं ब्रह्मचिन्तने अनयन्। एताः समकालीनदार्शनिकैः सह शास्त्रार्थं अपि अकुर्वन्। बृहदारण्यके उपनिषदे याज्ञवल्क्यस्य पत्नी मैत्रेयी याज्ञवल्क्येन सह शास्त्रार्थे प्रवृत्ता आसीत्। मैत्रेय्याः जीवने, कार्यकलापे वाण्यां च तत्त्वज्ञानस्य पूर्णता प्राप्यते। यदा याज्ञवल्क्यः निजसम्पत्तीनां विभाजनं करोति तदा मैत्रेयी कथयति 'येनाहं नामृता स्याम्, किं तेन कुर्यामिति।' तदा याज्ञवल्क्यः तां प्रति आत्मतत्त्वं कथयति। वाचक्नवीगार्गी नम्र एव याज्ञवल्क्यं शास्त्रार्थे पराजितवती। उपनिषद्काले नार्यः गुरुकुलेषु अध्यापिका रूपे अपि प्रतिष्ठिताः आसन्। पाणिनिः स्पष्टरुपेण तान् 'उपाध्यायाः' कथयति।

ऋग्वेदस्य विवाहसूक्ते विवाहस्य उच्चादर्शो दृश्यते। पतिः कथयति—

"गृभ्णामि ते सौभाग्यत्वाय हस्तं मया जरदष्टिर्यथासः।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यणत्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥" (ऋ० १०/८५/३६)

अनेन सुस्पष्टं यत् धार्मिककार्येषु स्त्रीणां महत्त्वपूर्णस्थानं आसीत्। गृहस्थस्य किमपि कार्यं विना पत्नीं न अभवत्। अतएव पूर्वोक्तमन्त्रे पतिः कामयते पत्न्याः यावज्जीवनं साहचर्यम्। तैत्तिरीय-ब्राह्मणस्योक्तिरस्ति "अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः" (२/२/२६)। वैदिकसिद्धान्तानुसारं पतिः पत्नी च एकस्य शरीरस्य द्वे अंगे आस्ताम्। एकं बिना द्वितीयं अपूर्णम्। विवाहसूक्ते पुनर्पुनः द्वयोः दीर्घजीवनस्य कामना कृता।

वैदिककाले काचित् क्षत्रियकन्याः एव स्वयंवराः आसन्। प्रचलितो विधिः अयमेव आसीत् यत् पिता एव कन्यायाः वरं चिनोति स्म। ऋग्वेदस्य तृतीये मण्डले यत् कथितं 'पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन मनसा दधन्वे' (ऋ०, ३-३१-१) तत् इमं विधिं प्रति एव संकेतितम्। शतपथे ब्राह्मणे अपि सुकन्या कथयति यत् 'यस्मै मां, पिताऽदामैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति (शतपथ ब्राह्मण ४-१-५-९ विवाहविषयका) मातापित्रोः सम्मतिः कन्याय आवश्यकी आसीत्। बृहद्देवता अस्मिन् विषये एकं आख्यानं कथयति। श्यावाश्वः ऋषिः राजकन्यां पत्नीरूपे प्राप्तुं इच्छति। अतः सः नृपं निजाभिलाषया अवगतं करोति। नृपः निजां पत्नीं शशीयसीं वदति अस्मिन् विषये। तस्याः सहमत्या एव नृपः आप्तऋषित्वाय श्यावाश्वाय कन्यां ददाति। बालविवाहस्य एकोऽपि प्रसङ्गः ऋग्वेदे न प्राप्यते। ऋग्वेदस्य दशममण्डले वर्णितः विवाहः युवावस्थानन्तरं प्रौढावस्थायां कृतः विवाहः आसीत्। पारस्करगृह्यसूत्रे कथितं 'समुद्गृह्य यथर्तु प्रवेशनम्।' अयं अभिगमनाज्ञा संकेतः यत् वरो वधू च आपन्नयौवनौ। यद्यपि वैदिकः आर्यः सामान्यतया केवलं सकृत् एव पाणिग्रहणं करोति स्म, तथापि यत्र-तत्र एकस्यैव नरस्य एकाधिकविवाहानां संकेतानि अपि प्राप्यन्ते।

दुहितारूपे, पत्नीरूपे, मातारूपे च स्त्री सर्वदा सम्मान्या आसीत्। विवाहसूक्ते सा "सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रू वा भव। ननान्दरिं सम्राज्ञी भव, समाज्ञी अधिदेवेषु।" इति आशीर्वचनेन समन्विता। न केवलं ताः गृहकार्येषु एव चतुराः आसन्, अपितु कृषिवाणिज्यादिकार्येषु अपि नराणां योगदायिकाः आसन्। नार्यः पतिभिः सह युद्धक्षेत्रं अपि अगच्छन्। अगस्त्यस्य पुरोहितस्य खेलस्य ऋषेः पत्नी विशाला निजपत्या सह युद्धक्षेत्रं गतवती। वृत्रासुरस्य माता दनुरपि पुत्रेण सह युद्धक्षेत्रं गता आसीत्, इन्द्रेण तत्र मारिता च सा। संक्षेपेण ऋग्वेदे जाया गृहरूपासीत्— 'जायेदस्तम्।'

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह पर मान्य कुलपति द्वारा

स्वागत भाषण

अर्चनीय स्वामी जी, परिद्रष्टा महोदय, कुलाधिपति जी, विशिष्ट अतिथिगण, देवियों, सज्जनों एवं ब्रह्मचारियों !

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८४ वें दीक्षान्त समारोह के अवसर पर मुझे आपका अभिनन्दन करते हुये अतीव प्रसन्नता हो रही है। स्वामी सत्य प्रकाश जी का मैं अत्यन्त आभारी हूं कि उन्होंने इस दीक्षान्त समारोह में पधारने का हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया और अपनी गरिमामयी उपस्थिति से समारोह की शोभा बढ़ायी।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी के व्यक्तित्व से हम सभी परिचित और प्रभावित हैं। उनका जीवन एक खुली किताब है और हमारे लिये प्रेरणा का एक भारी स्रोत है। आप विज्ञान और वेद दोनों के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपने १९६७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के प्रोफेसर पद से अवकाश प्राप्त किया और १९७१ में सन्यास ग्रहण किया। भौतिकी और रसायन शास्त्र में आपके सैकडों अनुसंधान पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आप विज्ञान परिषद् के प्रमुख संचालक रहे हैं। 'अंग्रेजी हिन्दी वैज्ञानिक कोष' तथा 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' आपकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। देश में हिन्दी माध्यम से वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले वैज्ञानिकों में आप अग्रणी हैं। इसके साथ ही आप पातञ्जल योग और उपनिषदों में पारंगत हैं। आपने ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके अंग्रेजी भाषा भाषी लोगों में वेद के प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। सी० एस० आई० आर० द्वारा प्रकाशित भारत की सम्पदा शृंखला पुस्तकों के आप मुख्य सम्पादक रहे हैं।

आदरणीय स्वामी जी !

आप जैसे मनीषी व्यक्ति को अपने बीच पाकर हम अपने आपको इसलिये भी गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं, क्योंकि आधुनिक ऋषियों की परम्परा का इस संस्थान के संस्थापक ने पुनरावर्तन किया है और आपका गैरिक परिधान उसी अनुपम आध्यात्मिक प्रकाश का प्रेरक प्रतीक है। आज दीक्षा लेने वाले स्नातकों के लिये यह दिन और आपका उपदेश अविस्मरणीय रहेगा।

आपकी उपलब्धियां और प्रखर योग्यता को ध्यान में रखते हुये इस विश्वविद्यालय की शिष्ट परिषद् ने इस वर्ष आपको विद्या-मार्तण्ड की मानद उपाधि से अलंकृत करने का निश्चय किया है।

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह (१९८३-८४) एवं अन्य कार्यक्रमों की झलकियां
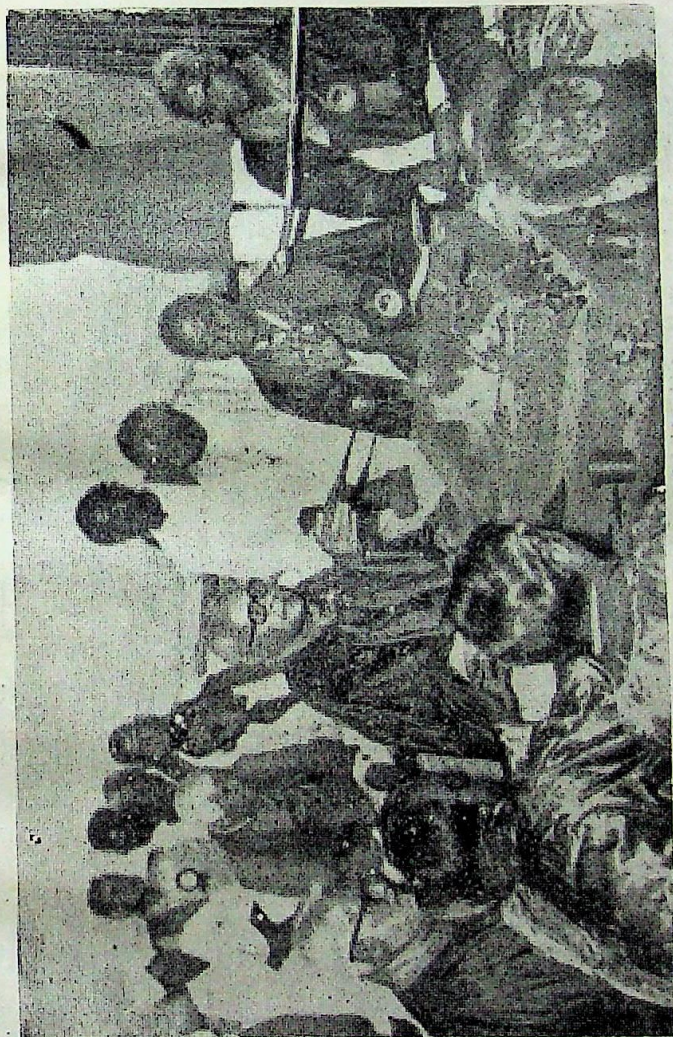
विश्वविद्यालय के दीक्षान्त यज्ञ का दृश्य नवस्नातकों को आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार यज्ञ कराते हुए, साथ में अधिकारीगण।

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर
अधिकारीगण-

दाएं से-श्री सरदारी लाल वर्मा, आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार, डॉ० एम० आराम (कुलपति, गांधी रुरल इन्स्टीट्यूट, मदुराई) कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा, डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा), पं० सत्यकाम विद्यालंकार (आचार्य), डा० गंगाराम गर्ग।
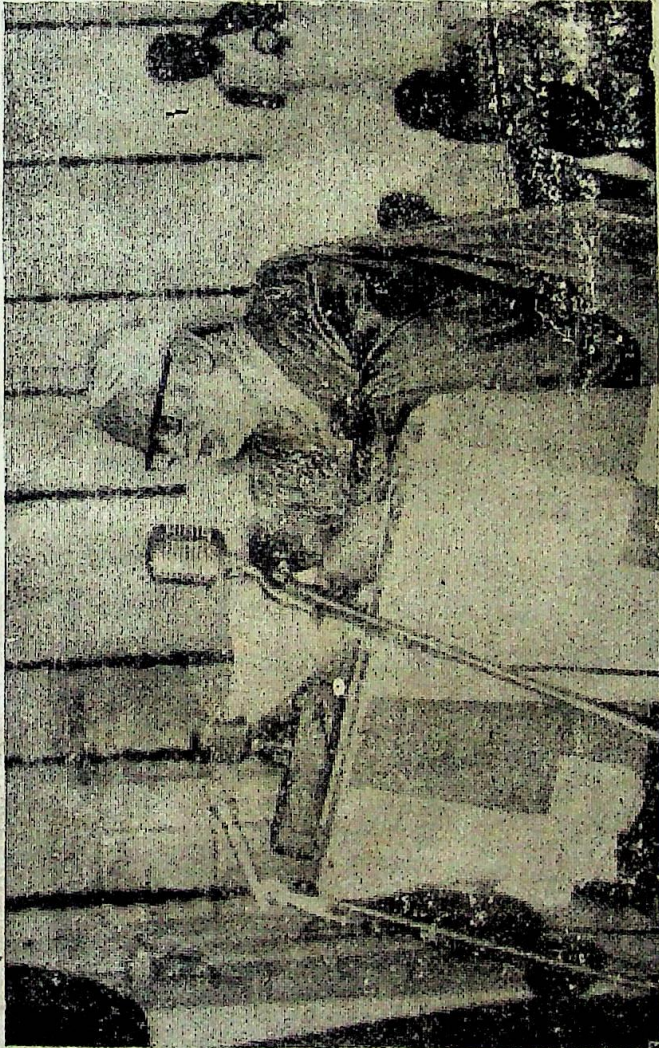
कुलपति जी दीक्षान्त समारोह पर स्वागत भाषण देते हुए।
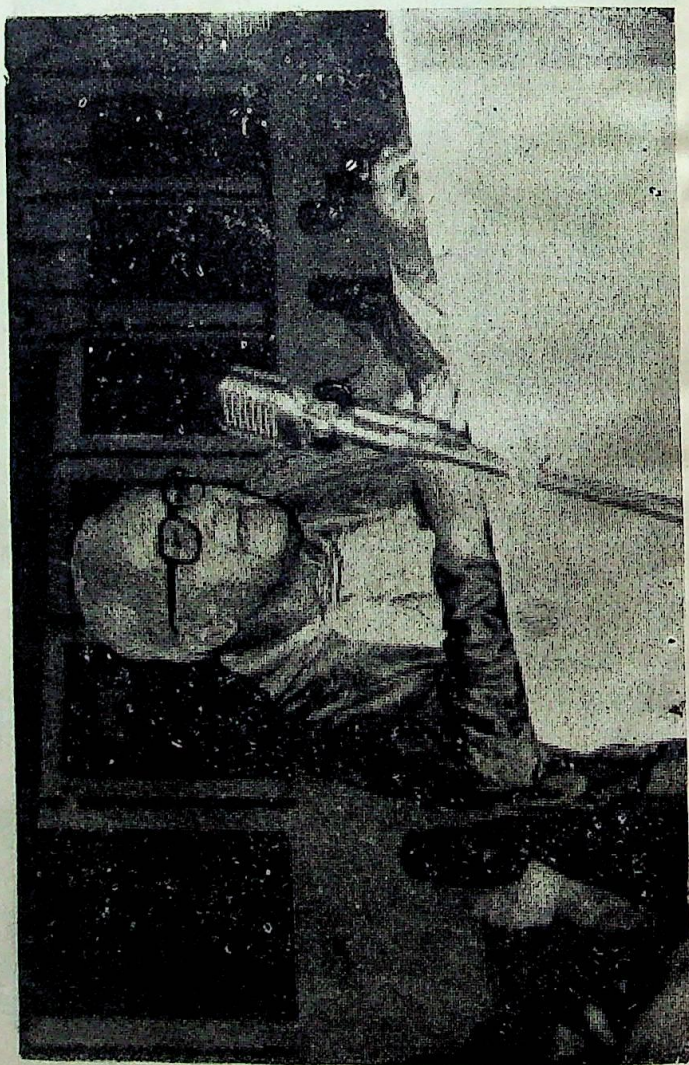
कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी दीक्षान्त समारोह पर नवस्नातकों को सम्बोधित करते हुए

उनकी ओर से हम आपको यह उपाधि प्रदान करते हुये अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।
देवियों एवं सज्जनों !

इस वर्ष के आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार विजेता श्री सत्यकाम विद्यालंकार का भी में अभिनन्दन करता हूं। श्री सत्यकाम विद्यालंकार वेदों के निष्णात ज्ञाता हैं और उन्होंने भी ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को गति दी है। आप गुरुकुल के यशस्वी स्नातक हैं और वर्षों से वेद का प्रचार, भाषण, चित्रकला तथा शब्दों के आलेखों द्वारा करते रहे हैं।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय की कार्यपरिषद् ने आपको इस विश्वविद्यालय में मानद प्रोफेसर के पद पर कार्य करने हेतु आमन्त्रित किया है और आर्य विद्या सभा ने आपको गुरुकुल के आचार्य का पद–भार सौंपा है। आपने अत्यन्त कृपा कर इन दोनों पदों पर कार्य करने की सहमति प्रदान की है। हम आपके प्रति कृतज्ञ हैं।

मान्य पण्डित जी, आपकी उपलब्धियों को देखते हुए विश्वविद्यालय की सीनेट ने आपको 'विद्यामार्तण्ड' की उपाधि से विभूषित करने का निश्चय किया है। उसकी ओर से यह उपाधि प्रदान करते हुए हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

इस अवसर पर मैं गुरुकुल कांगड़ी की ओर से और आप सबकी ओर से भारत के पहले अन्तरिक्ष यात्री राकेश शर्मा का भी अभिनन्दन करना चाहूंगा, आर्य जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि राकेश शर्मा आर्य समाज के प्रसिद्ध उपदेशक पं० लोकनाथ, जो कि 'यज्ञरूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिये' गीत के रचयिता हैं, के पौत्र हैं। मेरी उत्कट इच्छा है कि चाँद पर उतरने वाला पहला भारतीय गुरुकुल का ब्रह्मचारी हो।

इधर जो कुछ पंजाब में हो रहा है। उसके बारे में भी हमें कुछ सोचना है, करना है। एक वक्त था जब हमारा देश 'आसिन्धु' सिन्धु पर्यन्त था और सिन्धु से ही हमने हिन्दू नाम लिया था। लेकिन हमारे देश के चार टुकड़े बने और अब पाँचवाँ टुकड़ा बनाने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। गुरुकुल के गुरुजन और आर्यजनों को सोचना है कि इसका किस प्रकार से प्रतिकार किया जाय तथा राष्ट्र की मूल भूत एकता पर मंडराते हुये साम्प्रदायिक खतरों का कैसे मुकाबला किया जाये।

इस सन्दर्भ में मैं श्री वी० के० आर० वी० राव द्वारा वी० टी० कृष्णामाचारी स्मृति व्याख्यान माला में दिये गये व्याख्यान को दोहराना चाहूंगा जिसमें उन्होंने कहा कि हमें राष्ट्र निर्माण की सर्वांगीण प्रक्रिया में भारतीय तत्त्व चिन्तन और मूल्यों के आधार पर ही विकास का ढांचा स्थिर करना है। भारत में भिन्नता होते हुये भी एक राष्ट्रीयता का स्वरूप विद्यमान है। अत: न केवल

शासन तन्त्र को अपितु स्वयंसेवी संस्थानों को भी इस महान् राष्ट्रीय यज्ञ में इकट्ठे मिलकर कार्य करना है जिससे देश में फैली हुई संकुचित विचार धारा और व्याप्त पाखण्ड का नाश हो, प्राचीन और आधुनिक जीवन मूल्यों का समन्वय हो और राष्ट्र हर दृष्टि से अभ्युदय तथा कल्याण की ओर अग्रसर हो सके।

उपस्थित भद्रजनों !

वार्षिक दीक्षान्त समारोह गत वर्ष की गतिविधियों को भी उपस्थित करने का एक सुखद अवसर होता है।

अपने स्थापना काल से लेकर ८४ वर्षों की सुदीर्घ यात्रा में इस विश्वविद्यालय ने युग की कई करवटें देखीं। आँधी और तूफान के अनेक झटके महसूस किये। लेकिन सुदृढ़ और अडिग चट्टान के सदृश कुलपिता के आदर्शों से पोषित यह विश्वविद्यालय आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त शिक्षा संस्थान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है और सम्पूर्ण विश्व की दृष्टि आज गुरुकुल पर केन्द्रित है।

कॉमनवेल्थ विश्वविद्यालयों के बरमिंघम सम्मेलन में गुरुकुल के कुलपति के रूप में अगस्त १९८३ में मुझे आमन्त्रित किया गया था। इस सम्मेलन में विश्व के प्रमुख शिक्षा शास्त्रियों ने भाग लिया। इसमें मैंने निरन्तर शिक्षा एवं सर्वांगीण ग्राम सुधार में गुरुकुल विश्वविद्यालय की भूमिका पर प्रकाश डाला। मैंने आयरलैण्ड, फ्रांस, हालैंड, पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम आदि देशों के प्रमुख विश्वविद्यालयों का अवलोकन भी किया। मैंने अनुभव किया कि वहाँ के शिक्षा शास्त्री गुरुकुल शिक्षा स्वरूप को समझने और ग्रहण करने में जिज्ञासा तथा रुचि लिये हुये हैं। मैंने अनेक कुलपतियों को गुरुकुल में आकर शिक्षा की भारतीय परम्परा को देखने का निमन्त्रण दिया है।

१९८० के जिला जज सहारनपुर के निर्णय के बाद गुरुकुल में पुनर्निर्माण का युग आरम्भ हुआ। किन्तु गत तीन वर्षों में आशा के विपरीत कतिपय अप्रत्याशित दिशाओं से गुरुकुल की प्रगति में बाधायें डालने के अनेक प्रयत्न किये गये। फिर भी मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि बावजूद इन बाधाओं के मान्य परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार और कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी के नेतृत्व में गुरुकुल निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर हुआ है। संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप नियमित रूप से शिक्षा-पटल, कार्य परिषद् एवं शिष्ट परिषदों की बैठकें सम्पन्न हुईं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार तथा उत्तर-प्रदेश सरकार के प्रतिनिधि इन बैठकों में सम्मिलित हुये। उनके सहयोग एवं परामर्श से विश्वविद्यालय को उज्ज्वल स्वरूप प्राप्त हुआ है।

गतवर्ष विश्वविद्यालय के गुरुजनों और अधिकारियों ने समय-समय पर अनेक शिक्षा सम्मेलनों, परिचर्चाओं एवं संगोष्ठियों में भाग लिया।

५ जून १९८३ को विश्वविद्यालय में पर्यावरण दिवस पर एक विद्वद् संगोष्ठी का आयोजन हुआ। देश के अनेक विद्वानों ने इस संगोष्ठी में भाग लिया। भारत सरकार के पर्यावरण मन्त्रालय के उपमन्त्री माननीय श्री दिग्विजय सिंह इस संगोष्ठी के उद्घाटन के लिये पधारे।

देवियों एवं सज्जनों !

मुझे आपको सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि भारत सरकार के पर्यावरण विभाग ने गंगा के समन्वित अध्ययन की योजना के अन्तर्गत इस विश्वविद्यालय को लगभग १० लाख रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया है। इस कार्य हेतु हमें ऋषिकेश से लेकर गढ़मुक्तेश्वर तक का गंगा का भाग मिला है। डा० विशयशंकर अध्यक्ष, वनस्पति-विज्ञान इस प्रयोजना के निदेशक हैं।

२५ जुलाई १९८३ को विश्वविद्यालय में वृक्षारोपण का कार्यक्रम बड़े भव्य रूप से मनाया गया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के मन्त्री श्री शिवनाथ सिंह कुशवाहा, चिपको आन्दोलन के प्रणेता पद्मश्री सुन्दरलाल बहुगुणा, मेरठ मण्डल के आयुक्त श्री बी० के० गोस्वामी, जिलाधीश श्री एल० के गुप्ता ने पर्यावरण सम्बन्धी अपने विचार अभिव्यक्त किये। गत वर्षा ऋतु में विश्वविद्यालय परिसर एवं कांगड़ी ग्राम में हजारों वृक्षों का आरोपण किया गया।

२५ से २७ दिसम्बर तक अखिल भारतीय कृषक समाज ने इस विश्वविद्यालय में डॉ० बलराम जाखड़, अध्यक्ष लोकसभा के नेतृत्व में अपना वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया। इस अवसर पर देश भर से हजारों कृषकबन्धु इस विश्वविद्यालय में आये। उन्होंने इसे देखा और इसकी प्रगति की सराहना की।

९-१० मार्च १९८३ को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की बिजिटिंग कमेटी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की छठी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने के लिये गुरुकुल में आयी। इसके सदस्य थे-श्री रमारंजन मुखर्जी, भू०पू० कुलपति वर्दवान विश्वविद्यालय, प्रो० आर० सी० गौड, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, प्रो० एम० एल० रैना, पंजाब विश्वविद्यालय, श्री बी० आर० क्वाटरा उप-सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, इस समिति के सचिव थे।

इस सन्दर्भ में जो प्रश्न उभर कर सामने आया वह था कि क्या गुरुकुल की कोई निजी विशेषता है अथवा गुरुकुल भी अन्य विश्वविद्यालयों की तरह ही है जो बी० ए० की परीक्षायें लेते हैं और डिग्रियां बांटते हैं।

इस अवसर पर मैंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८० वें दशक का कार्यक्रम उपस्थित करते हुये कहा कि गुरुकुल सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह नहीं, अपितु विश्व की समस्याओं के समाधान की दिशा में भी उपयोगी हो सकता है। वह सन्देश है आध्यात्मिक मूल्यों का प्रचार, विज्ञान का प्रसार और पाखण्ड का खण्डन, अर्थात् श्रेयस् और प्रेयस् का संगम। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जानते थे कि देश तभी सशक्त होगा जब सभी देशवासी सशक्त, सबल, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी, ओजस्वी और विचारवान् होंगे। वह देश की निर्बल असहाय, असमर्थ जनता को बलवान्, स्वावलम्बी तथा समर्थ बनाना चाहते थे। अत: जहां एक ओर उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रम पर बल दिया, वहां व्यक्तिगत सुधार पर भी उन्होंने यथेष्ट बल दिया।

इसी हेतु स्वामी श्रद्धानन्द से आज से ८४ वर्ष पूर्व गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की, ताकि यहां से निकले हुये ओजस्वी स्नातक अच्छे ब्राह्मण, अच्छे वैश्य बनें और देश के उद्धार में अपना योगदान दें, लेकिन जिस पौराणिकता पाखण्ड और पोपलीला के विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने युद्धभेरी बजाई थी वह अभी भी देश में व्याप्त है। अत: उनके कार्यक्रम को गतिमान करने हेतु तथा अज्ञान और रूढ़ियों के इन गढ़ों को मिटाने हेतु व्रत-संकल्प नवयुवक समुदाय की, दयानन्द के वीर सैनिकों की, बहुत आवश्यकता है और उनको तैयार करने का कार्य गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का है।

इस सन्दर्भ में आचार्य सत्यकाम विद्यालंकार ने गुरुकुल को वैदिक संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी के सम्मुख रखी थी, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया।

विजिटिंग कमेटी ने हरिद्वार की शैक्षणिक आवश्यकताओं का भी जायजा लिया तथा विश्वविद्यालय की गतिविधियों का गहराई से अध्ययन किया और इसकी कमजोरियों एवं क्षमताओं का मूल्यांकन किया। आशा की जाती है कि उनकी सिफारिशें गुरुकुल के विस्तार में बहुत उपयोगी सिद्ध होगीं।

१९ मार्च, १९८४ को गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गोवर्धन ज्योति की छठी रश्मि का विमोचन करते हुये महात्मा आर्य भिक्षु ने कहा कि "आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालकों में गुणों की वृद्धि करें तथा अवगुणों को दूर करें।'

इन दिनों आर्य समाज गुरुकुल काँगड़ी ने भी अंगडाई ली है। संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर की आर्थिक सहायता से आर्य समाज गुरुकुल काँगड़ी ने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश'

के दूसरे तीसरे एवं छठे समुल्लास के सरलीकृत एवं संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किये। इसी प्रकार उन्होंने 'व्यवहार भानु' के सरलीकृत संस्करण का प्रकाशन किया। इन तीनों पत्रिकाओं का प्रकाशन इस आशा से किया गया है कि स्वामी जी के विचार घर-घर तक पहुँचें।

मुझे यह कहते हुए भी प्रसन्नता हो रही है कि पद्मश्री विनयचन्द्र मौदगिल्य, प्राचार्य गन्धर्व महाविद्यालय, नई दिल्ली, जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल में हुई थी, ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को संगीत शिक्षा की ओर प्रेरित करने हेतु अपनी अमूल्य सेवायें प्रदान की हैं। इस श्रृंखला में उन्होंने पिछले दिनों तीन दिन तक गुरुकुल में प्रवास किया तथा चुने हुये ब्रह्मचारियों को सस्वर वेदमन्त्र एवं अन्य गीत सिखाये।

मुझे आपको यह सूचना देते हुए हर्ष हो रहा है कि पिछले दिनों इस विश्वविद्यालय में अमेरिकन अध्ययन के अखिल भारतीय संगठन का १८ वाँ वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर उ०प्र० के पर्यटन मन्त्री श्री गुलाब सेहरा ने अपने सन्देश में कहा कि ऐसी संस्थाओं ने देश विदेश में एकात्मकता प्रतिष्ठित करने में लाभदायक भूमिका निभाई है। अवध विश्वविद्यालय के कुलपति श्री मेहरोत्रा ने कहा कि इस प्रकार के सम्मेलनों से गुरुकुल कांगड़ी की छवि निखरेगी। इस सम्मेलन का उद्घाटन हमारे मान्य परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने अपने ओजस्वी भाषण से किया। उन्होंने कहा कि किपलिंग तो कहता था, पूर्व पश्चिम का संगम सर्वथा असम्भव है। मैं भारतीय किपलिंग कहता हूं पूर्व और पश्चिम अभिन्न हैं और सदा ही एक दूसरे से जुड़े रहेंगे।

देवियों तथा सज्जनों !

आप जानते ही हैं कि गुरुकुल का मातृ-ग्राम काँगड़ी ग्राम है। इस विश्वविद्यालय द्वारा इस गाँव को पूर्ण रूप से अंगीकृत कर लिया गया है। २६ दिसम्बर १९८३ को लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ का इस गाँव में पदार्पण हुआ तथा वे इस गाँव की प्रगति से काफी प्रभावित हुये। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ज्वालापुर ने ग्रामवासियों को कुटीर उद्योग धन्धों के लिए ऋण देने का व्यापक कार्यक्रम शुरू किया है जिससे यहाँ के निवासियों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है।

गत वर्ष श्रद्धानन्द सप्ताह के दौरान डा० बी०डी० जोशी के निर्देशन में पुण्य भूमि में राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत कैम्प लगाया गया, विश्वविद्यालय के ५० छात्रों ने अत्यन्त लगन और निष्ठा से काँगड़ी ग्राम में कार्य किया।

अन्य विशिष्ट अतिथिगण के अलावा माननीय बलराम जाखड, श्री आर० वैंकटनारायण, कृषि उत्पादन आयुक्त उत्तर प्रदेश, श्री दर्शन सिंह जिलाधीश, बिजनौर ने कैम्प का अवलोकन किया। इसका उद्घाटन भारत सरकार के यू०पू० सलाहकार श्री शाह ने किया था।

डा० त्रिलोक चन्द के निर्देशन में गुरुकुल काँगड़ी द्वारा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम के अन्तर्गत ३० प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का सफलतापूर्वक संचालन किया जा रहा है।

गुरुकुल पुस्तकालय ने भी आशातीत प्रगति की है। गत वर्ष पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की लगभग ५,००० पुस्तकें मंगाई गईं। इस समय विभिन्न विषयों की ३५० पत्रिकायें नियमित रूप से आ रही हैं। पुस्तकालय में इस वर्ष गुरुकुल से प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य एवं गुरुकुल के स्नातकों के विपुल प्रकाशन को पृथक् रुप से 'गुरुकुल प्रकाशन संग्रह' के नाम से संगृहीत किया गया है। इसके लिये पुस्तकालयाध्यक्ष श्री जगदीश विद्यालंकार धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रो० विनोद चन्द्र सिन्हा के नेतृत्व में गुरुकुल का संग्रहालय राष्ट्रीय ख्याति की ओर अग्रसर हो रहा है। इस सत्र से यहाँ अष्टधातु कक्ष और चित्रकला कक्ष की भी स्थापना की गई है। पंजाब विधान सभा के अध्यक्ष माननीय श्री मेहरोत्रा ने, जो पिछले दिनों गुरुकुल आये थे, गुरुकुल के संग्रहालय हेतु १०,००० रु० विशेष अनुदान के रूप में स्वीकृत किये।
मित्रों !

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय में शोध तथा प्रकाशन का कार्य आलोच्य वर्ष में उत्साहवर्धक ढ़ंग से बढ़ा है। आपको ज्ञात ही है कि गुरुकुल से नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली पाँच पत्रिकाओं के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी पर गुरुकुल काँगड़ी ने अपने श्रद्धासुमन प्रस्तुत करते हुये 'ऋषि दयानन्द की साधना और सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। निर्वाण शताब्दी के अवसर पर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के सौजन्य से डा० गंगा राम गर्ग ने अंग्रेजी में 'वैदिक पर्सपैक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस पुस्तक की भूमिका सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्रो० कैनिथ जॉन्स द्वारा लिखी गई।

वेद एवं कला महाविद्यालय के वेद, संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा हिन्दी विभागों में अनुसंधान–कार्य प्रगति पर है। इस वर्ष वेद–विभाग में ५ छात्रों के पंजीकरण किये गये इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि अब तक केवल चार विभागों में ही अनुसंधान कार्य की अनुमति थी इस वर्ष दर्शन–विभाग में भी अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने की अनुमति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रदान कर दी है। तदनुसार दर्शन विभाग में भी ५ छात्र पंजीकृत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने हेतु मनोविज्ञान, अंग्रेजी तथा विज्ञान महाविद्यालय के वनस्पति–विज्ञान, जीव–विज्ञान तथा रसायन–विज्ञान आदि विभागों में भी अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से पत्राचार चल रहा है।

विश्वविद्यालय अपने स्थापना काल से ही उच्चतर अध्ययन तथा अनुसंधान कार्य में अग्रणी रहा है। महर्षि दयानन्द को केन्द्र बनाकर शोध के विविध परिदृश्य प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। वैदिक मानवतावाद, वेद वर्णित संस्थायें, दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में समाज का स्वरूप, प्राचीन भारत में धर्म निरपेक्षता, जनमत, भारत–कुम्बुज सम्बन्ध, बाली द्वीप में भारतीय संस्कृति का विकास, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वैदिक परम्परा, सत्यदेव परिव्राजक तथा आर्य समाज और प्रेम चन्द ऐसे कार्य हैं जो विश्वविद्यालयीय शोध कार्य की तुलना में प्रतिबद्ध किन्तु लोकोपयोगी कार्य का दिशाबोध कराते हैं। वैदिक शिक्षा दर्शन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विनियोग करना ही हमारा लक्ष्य है और भावी अनुसंधान कार्य की रूपरेखा भी इसी दिशा में स्थिर की जा रही है

आज की नई पीढ़ी स्वतन्त्रता के ऊंचे महलों में उपलब्ध सुख सुविधाओं की तो आकांक्षा करती हैं और उनके अभाव में उग्र आन्दोलन चलाने की बात भी करती है, पर वह नहीं जानती कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये उनके पूर्वजों ने क्या कुर्बानियां दीं, क्या यातनायें भोगीं ? स्वतन्त्रता के लिए लड़ी गई लड़ाई तथा उसकी बुनियादी विशेषताओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से आकलन कर, भारतीय इतिहास की पुनर्रचना के लिए योजनाबद्ध अध्ययन करने की आवश्यकता को ध्यान में रख कर विश्वविद्यालय ने अपनी छठी योजना में लाजपतराय अनुसंधान पीठ प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव अनुदान आयोग के समक्ष रखा। विजिटिंग कमेटी के सदस्यों ने इस प्रस्ताव का हार्दिक अनुमोदन किया है। मुझे विश्वास है कि भारत की स्वतन्त्रता एवं पुनर्जागरण के इतिहास की नवसंरचना में यह पीठ अप्रतिम योगदान करेगी।

विश्वविद्यालयीय संकायों के विद्यार्थियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की विशेष उपलब्धियों से परिचित कराने के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों के विद्वानों के व्याख्यानों का आयोजन किया गया। मगध विश्वविद्यालय, गया के इतिहास के प्रोफेसर डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, जवाहर लाल नेहरू वि० वि० के सेन्ट्रल एशिया स्टडीज के अध्यक्ष डॉ० रामराहुल, दिल्ली वि० वि० के मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ० एच० सी० गांगुली, रांची विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ० आर० एस० श्रीवास्तव तथा मुजफ्फरनगर के प्रोफेसर डॉ०विश्वनाथ मिश्र ने विजिटिंग फैलो के रूप में आकर व्याख्यान दिए। इनके आगमन से वि० वि० की सार्थकता बढ़ी है।

प्राध्यापकों की नियुक्तियों के निमित्त विषय-विशेषज्ञ के रूप में जगन्नाथ वि० वि०, पुरी के कुलपति डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, वर्दवान वि० वि० के कुलपति प्रो० रमारंजन मुखर्जी, गुजरात विद्यापीठ के कुलपति डा० रामलाल पारिख तथा कश्मीर वि० बि० के कुलपति श्री वहीद मलिक यहाँ पधारे। उन्होंने वि० वि० की प्रगति को देखकर हार्दिक सन्तोष व्यक्त किया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के श्री के० एन० सिंह, कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा लाओस, वियतनाम और कम्पूचिया के मान्य राजदूत भी इस वर्ष गुरुकुल पधारे और यहां की प्राचीन गुरु-शिष्य प्रधान प्रणाली को देखकर अभिभूत हो गये।

भारत की भावात्मक एकता की पुष्टि तथा नवनिर्माण की अद्यतन जानकारी के लिए जहां, यहां के विद्यार्थी बम्बई, कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, मद्रास, अजमेर, जयपुर, आगरा तथा मथुरा की सरस्वती यात्रा पर गये, वहां अन्तर्विश्वविद्यालय खेल परिषद् की सदस्यता प्राप्त कर हमारे विद्यार्थी खेल-कूद के क्षेत्र में भी उतरे। इस वर्ष अलीगढ़ वि०वि० में आयोजित अन्तर्विश्वविद्यालयीय हाकी प्रतियोगिता में हमारे छात्रों का उल्लेखनीय प्रदर्शन रहा।

विद्यार्थियों की शारीरिक क्षमता की वृद्धि के लिए जिमनेजियम की व्यवस्था को भी सुधारा गया, यद्यपि इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है। इसका उद्घाटन श्री टी० एन० चतुर्वेदी तत्कालीन शिक्षा सचिव, भारत सरकार ने किया।

विश्वविद्यालय के छात्रों को परिसर में ही उचित व्यवसाय मार्ग निर्देशन तथा व्यवसाय जगत् की पूरी जानकारी देने के लिए एक विश्वविद्यालय सेवा योजना एवं मंत्रणा-केन्द्र की स्थापना की गई है, जो व्यवसायोन्मुख शिक्षा के व्यवहारीकरण में यह एक ठोस कदम है और इस दिशा में इस अंचल के छात्रों को आगे बढ़ने का पूर्ण अवसर मिल सकेगा। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त इस योजना के लिए हम हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

शिष्ट परिषद् तथा कार्यपरिषद् में शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आगामी तीन वर्षों के लिए मनोनीत सदस्यों डा० एल० पी० सिन्हा, कुलपति हिमाचल विश्वविद्यालय, डा० एम० आराम, कुलपति, गांधी रुरल इन्स्टीट्यूट मदुराई, जस्टिस श्री आई० डी० दुआ, श्री गुरुबख्श सिंह, उप-सचिव, शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार, डा० रामलाल पारीख, कुलपति, गुजरात विद्यापीठ, तथा श्री आर० एस० चितकारा का मैं इस अवसर पर हार्दिक स्वागत करना चाहूंगा। ये अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं और इनके दीर्घ अनुभवों से हमें भरपूर लाभ मिलेगा।

यदि इस अवसर पर मैं कन्या गुरुकुल की उपलब्धियों का जिक्र न करूं तो बात अधूरी ही रहेगी। यहां की आचार्या बहन दमयन्ती कपूर कन्याओं को वेद, वेदांग, व्याकरण, संस्कृत तथा गृह-कलाओं में पारंगत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। कन्याओं को अतीत के राष्ट्रीय आदर्शों से प्रेरणा लेकर जीवन संग्राम में विवेक तथा उत्साहपूर्वक चल पड़ने के लिए तैयार करना ही इस संस्था का लक्ष्य है। कन्या गुरुकुल की स्नातिकाओं में ललित कला, उद्योग तथा शिक्षा के क्षेत्र में

नये आयाम स्थापित किये हैं। यहां की छात्रायें चरखा कताई, काव्य तथा वाद-विवाद-प्रतियोगिता, खेल, विज्ञान-प्रतियोगिता तथा गृह-विज्ञान प्रदर्शनी में प्रथम रहती हैं। खेलों में प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर यहां की छात्राओं का चयन हुआ है।

निर्माण कार्यों की श्रृंखला में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त धनराशि से ८ प्रोफेसर-क्वाटर्स का निर्माण सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा किया जा रहा है। इसका शिलान्यास १ फरवरी १९८४ को कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी के सान्निध्य में हमारे परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने किया।

विश्वविद्यालय विभाग गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली की जीती जागती प्रयोगशाला है। ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर नित्य-क्रिया से निवृत होकर श्री ईश्वर भारद्वाज के नेतृत्व में ब्रह्मचारी वेदमन्त्रों का सस्वर पाठ तथा योगाभ्यास करते हैं। वरिष्ठ ब्रह्मचारियों को प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी द्वारा प्रतिदिन एक वेद-मन्त्र अर्थ सहित कंठस्थ कराया जाता है। ब्रह्मचारियों की नियत वेश-भूषा, भोजन-व्यवस्था तथा आवासीय व्यवस्था में इस वर्ष विशेष सुधार हुआ है। पण्डित सत्यकाम जी के सुदक्ष आचार्यत्व में ब्रह्मचारियों का दल अपने कार्य में निरन्तर अग्रणी होता चलेगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

मैं एक बार पुनः गुरुकुल की गत वर्ष की उपलब्धियों के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार, आकाशवाणी नजीबाबाद, विश्वविद्यालय की शिष्टपरिषद्, कार्यपरिषद् तथा शिक्षा पटल के मान्य सदस्यगण के प्रति आभार प्रकट करना चाहूँगा, जिन्होंने समय-समय पर हमें अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया तथा हमारा मार्ग प्रदर्शन किया। इसके साथ ही मैं स्थानीय प्रशासन को भी धन्यवाद देना चाहूँगा, जिन्होंने इस दौरान परिसर में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

मैं इस अवसर पर अपने अध्यापकों, कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों को भी साधुवाद देना चाहूँगा, जिन्होंने मेहनत और लगन से ये सब उपलब्धियां प्राप्त कीं।

मान्यवर स्वामी जी !

इस वर्ष पी-एच० डी० की १, एम० ए० की ६२, एम०एस० सी० की ४२, बी० एस० सी० की ३२ तथा अलंकार की १७ उपाधियां प्रदान की गई हैं।

अब आपसे निवेदन है कि नव-स्नातकों को आशीर्वाद देने की कृपा करें।

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर आर्य जगत् के उद्‌भट विद्वान् स्वामी श्री सत्य प्रकाश जी सरस्वती का नवस्नातकों को–

दीक्षान्त भाषण–

नव दीक्षित सौम्य युवास्नातक वृन्द !

आपके गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, कुलपति एवं अधिकारियों ने मुझे दीक्षान्त भाषण देने के लिए स्नेह पूर्वक आमंत्रित किया है, इसके लिये मैं आभारी हूं। मैं भी एक विश्वविद्यालय का अन्तेवासी रहा और उसी में १९२५, १९२७ और १९३२ में मैंने तीन उपाधियां पायीं और तीन दीक्षान्त भाषण सुने। मैं भारत की पराधीनता के युग का स्नातक हूं। मेरे समय में देश में इतने विश्व विद्यालय नहीं थे, जितने आज हैं। मेरा विश्वविद्यालय १८८८ के लगभग (१८५७ की क्रांति के ३१ वर्ष बाद) स्थापित हुआ था। १८५८ में पहली श्रृंखला के तीन विश्वविद्यालय स्थापित हुए–कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के। लगभग ३० वर्ष बाद दो और बने–प्रयाग और लाहौर के। आज विश्वविद्यालय स्तरीय उपाधि देने वाली संस्थायें १०० से ऊपर हैं। आपका विद्यालय २ अन्तेवासियों और एक आचार्य से प्रारम्भ हुआ–हरिश्चन्द्र, इन्द्र और मुंशीराम। मुझे उन दिनों की याद है जब हरिश्चन्द्र और इन्द्र स्नातक हुए थे। मैं नहीं जानता कि उस समय १९१२ के प्रथम दीक्षान्त भाषण में क्या कहा गया था। आपका गुरुकुल देश का गौरव था और आर्य जगत् को उस पर अभिमान था। कहा जाता है कि २ मार्च १९०१ को हरिद्वार में एक विद्यालय का शुभारम्भ हुआ–जिसमें १ आचार्य और विद्यार्थी थे। हरिश्चन्द्र की आयु १३ वर्ष की रही होगी और इन्द्र कुछ और छोटे थे। महर्षि दयानन्द की मृत्यु के दो वर्ष बाद १८८५ में आर्यजगत् ने महर्षि की स्मृति में दयानन्द स्कूलों की श्रृंखला प्रारम्भ की जिनकी शती धूमधाम से मनाने की तैयारियां प्रारम्भ हो गयी हैं। हंसराज और मुन्शीराम–ये दो व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में देश के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। इन दोनों संस्थाओं के प्रारम्भिक युग में पार्थक्य अधिक था। मुन्शीराम जी का गुरुकुल राष्ट्रीय था और हंसराज जी द्वारा प्रेरित दयानन्द विद्यालय भारत की पराधीनता के प्रतीक थे और सरकारी स्कूलों के सामञ्जस्य में थे।१९४७की स्वतन्त्रता के बाद आज सभी विद्यालय और विश्वविद्यालय राष्ट्रीय और राष्ट्र के गौरव हैं। विद्यालयों के दो ही उद्देश्य हैं–पूर्वार्जित ज्ञान का संरक्षण, और नवीन ज्ञान अर्जन। इसे ही वैदिक परिभाषा में क्रमशः क्षेम और योग कहेंगे। गुरुकुलों से भी हमें यही आशा का है और नवीन पद्धति के विश्वविद्यालयों से भी। पुराने ऋषियों ने परम्परा से ज्ञान के विभिन्न

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती दीक्षान्त भाषण देते हुए।

क्षेत्रों में हमें जो सामग्री दी, वह भी सुरक्षित रहे और साथ ही साथ अपने स्नातकों से हम यह भी पूछने का अधिकार रखते हैं कि इस ज्ञान सागर में उन्होंने नया क्या दिया। हमारे पुराने ऋषियों ने अपने अपने क्षेत्र में पुराना भी सुरक्षित रखा और नया भी दिया था। गौतम, कपिल, कणाद, यास्क और पाणिनि के ग्रन्थ देखिये, सबने अपने पूर्वजों के ज्ञान को आगे की पीढ़ियों तक बढ़ाया भी और अपना नया भी दिया। मानव योनि की यह विशेषता हैं। पशुओं का ज्ञान श्रुति है, न शास्त्र। मनुष्य से ही यह अपेक्षा की जाती है, कि पुराना भी पढ़े, और आगे उसमें कुछ वृद्धि भी करे, गुरुकुल के नवीन स्नातकों से भी मैं यह कहूंगा। आपके ऊपर ऋषि-ऋण है। आपका पढ़ा हुआ और आपके आचार्यों का पढ़ाया गया तभी तेजस्वी होगा, जब हम यह कह सकेंगे, कि आपने अपने अध्ययन के फलस्वरूप ज्ञान-भण्डार का और पुराने वाङ्मय को, पूर्व विचार धारा को, कला को, शिल्प को, कौशल को, जनजीवन के प्रवाह को भी कुछ नया दिया है। नवीनता के पर्यावरण में प्राचीनता भी गौरवान्वित होती है और इसी प्रसंग में ऋग्वेद प्रारम्भ में ही **पूर्वेभिः** और **नूतनैः ऋषिभिः**- दोनों प्रकार के ऋषियों की कल्पना की है। ऋषि दयानन्द की परिभाषा में पहले समय के विद्वानों को पूर्व-ऋषि और आप जैसे नवीन अध्येता ब्रह्मचारी और विद्वानों को जो नवीन तर्कों के विशेषज्ञ हों, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्रों में नये मार्ग प्रशस्त करने का संकल्प किया हो, वेद प्रतिपादित नूतनऋषि कहा गया है। पूर्व ऋषियों के प्रति समादर की भावना रखना, और नूतन-ऋषियों की बातों को निष्ठा पूर्वक सुनना तथा मानना इस प्रकार की भावना जिस समाज में जाग्रत रहती है, वह समाज उन्नति की ओर अग्रसर रहता है, अन्यथा समाज में रुढ़िवादिता व्याप्त होने लगती है। आप सब स्नातक नूतन-ऋषि हैं और इसलिए मेरे जैसे वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा आप नवस्नातकों का स्वागत, अभिनन्दन और विनम्र अभिवादन।

विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में मेरी दृष्टि में यह अन्तर है कि हम विश्वविद्यालय के प्राचार्यों और विद्यार्थियों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे शास्त्र का विकास करेंगे; किन्तु महा-विद्यालय के विद्यार्थी और आचार्यों का कर्तव्य है, कि वे पढ़कर पूर्वार्जित ज्ञान को जीवित रखेंगे और आगे आने वाली पीढ़ियों को यह ज्ञान सौंप देंगे। आज जो स्नातक शिक्षित होने के अनन्तर दीक्षित हो रहे हैं, उनसे मैं यही कहूँगा, कि जो कुछ आपने गुरुओं के समीप रहकर सीखा है, उसको समाज में जीवित रखें और मुझे आशा है कि आप में से कुछ स्नातक उस शास्त्रीय ज्ञान को प्रशस्त करने में भी उद्यत रहेंगे। मैं पुरानी यज्ञशाला को ज्ञान-विज्ञान के बिकास की वेधशालाएं, अनुसंधान शालाएं और प्रयोगशालाएं मानता हूँ। उन्हीं यज्ञशालाओं में बैठकर प्राचीन ऋषियों ने वेदांग, उपांग और उपवेदों का विकास किया था। महर्षि दयानन्द ने यज्ञ की जो परिभाषा अपने ग्रन्थों में की है, वह आज के स्नातकों को सर्वदा याद रखनी चाहिये। महर्षि यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार करते हैं—

'यज्ञ' उसे कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या, उसके उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र, जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम मानता हूँ। आर्य समाज के विद्वानों ने स्वामी दयानन्द की इस परिभाषा की सर्वदा उपेक्षा की है। आज गायत्री यज्ञ, पारायण यज्ञ, शांति यज्ञ, हमारे विद्वानों को सद् उद्देश्यों से बहुत दूर विचलित कर रहे हैं। हिन्दू वातावरण में और महर्षि दयानन्द द्वारा अनुप्राणित वातावरण में यही तो अन्तर है। हमने यज्ञ को रूढ़ि अर्थों में लेना आरम्भ किया है। जो लोग वैज्ञानिक प्रयोग शालाओं में, शिल्प में, कारखानों में, अनुसन्धान–शालाओं में और चिकित्सा संस्थानों में कार्य कर रहे हैं, हमने उन्हें याज्ञिक समझा ही नहीं। आपके गुरुकुल में तो कम से कम यज्ञ की वास्तविकता परिभाषा का स्वरूप निखारना चाहिए, प्रसन्नता की बात है, कि आपकी गुरुकुल भूमि से कुछ ही दूरी पर रानीपुर में भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स का विशाल उद्योग है, ऋषिकेश में भी उपयोगी कार्य हो रहा है। यह सब यज्ञ हैं। क्या आपने इन यज्ञों के ऋत्विजों का आह्वान, आदर सत्कार किया ? आप अपने स्नातकों को इन यज्ञों के प्रति निष्ठावान् बनाएं। नहीं तो आपकी यज्ञों के प्रति श्रद्धा हिन्दुओं की कोटि की अन्धश्रद्धा ही कहलावेगी (वस्तुत: श्रद्धा शब्द का जो यौगिक अर्थ है, उनके साथ अन्ध शब्द का प्रयोग हो ही नहीं सकता)। अभी अजमेर में जो महर्षि निर्वाण शताब्दी मनाई थी, उसमें हमने पहली बार महर्षि द्वारा प्रतिपादित यज्ञ की परिभाषा चरितार्थ की–देश के ८–९ वैज्ञानिकों को और कतिपय अन्य विशेषज्ञों को स्वर्ण पदक से सम्मानित किया था, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्रों में कार्य करके भारत को गौरवान्वित किया है। वह समारोह ऋषि से शब्दों में यज्ञ था। यजुर्वेद के अध्याय १८ में प्रथम सत्ताइस मंत्र ऐसे हैं, जिनके अन्त में 'यज्ञेन कल्पताम्' ये दो शब्द बराबर प्रयुक्त हुए हैं। इन दोनों को भाष्य करते समय महर्षि दयानन्द ने लगभग प्रत्येक मंत्र का अर्थ अलग अलग किया है। मैं आज के स्नातकों से कहूँगा कि इस पुण्य–स्थली में यज्ञ द्वारा तुम सबने विद्या प्राप्त की है। आप अपना आगे का जीवन भी यज्ञ द्वारा निर्मित करें। आपका समस्त जीवन यज्ञमय हो। देवहित आपकी आयु अर्पित हो, आपके यज्ञ भी यज्ञ पर आधारित हों—आयुर्यज्ञेन कल्पताम्, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। आप याज्ञिक बनें। किन्तु जब मैं ऐसा उदबोधन आपको दे रहा हूँ, तो मेरा अभिप्राय यह नहीं है, आप प्रात: से सायं तक काष्ठाग्नि पर स्वाहोच्चार के साथ हव्य द्रव्य की आहुति डालते या डलवाते रहें। स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के अष्टादश अध्याय के मन्त्रों में यज्ञेन शब्द का प्रसंगानुसार अलग अलग अभिप्राय लिया है। मैं कुछ उदाहरण दूंगा। आप में से कइयों ने आचार्य के चरणों में बैठकर शायद यजुर्वेद पढ़ा हो।

१– पृथिवी, नक्षत्र, द्यौ, दिशा के प्रसंग में–यज्ञेन पृथिवीकाल-विज्ञापकेन (१८)

२- अंशु, उपांशु, मैत्रावरुण, मन्थी, आदि के प्रसंग में-यज्ञेन अग्निपदार्थोपयोगेन (१९)

३- स्रुच, कलश, ग्रावाण, वेदि, बर्हि आदि के सम्बन्ध में-यज्ञेन हवनादिना (२१)

४- अग्नि, धर्म, अंक, सूर्य के प्रसंग में-यज्ञेन संगतिकरण योग्येन परमात्मना (२२)

५- एक, तीन, पांच आदि संख्याओं के प्रसंग में यज्ञेन संगतिकरणेन योगेन दानेन वियोगेन बा, अर्थात् जोड़, गुणाव, घटाना, भाग देना आदि अंकगणित द्वारा (१४)

६- त्र्यवि, दित्यवाट्, त्रिवत्स आदि गाय, भेड़, बकरी आदि के प्रसंग में - यज्ञेन पशुपालन-विधिना (२६), और इसी प्रकार षष्ठवाट्, षष्ठौही, उक्षा आदि के प्रसंग में-यज्ञेन पशु शिक्षाख्येन (२७)

७- व्रीहि, यव, माष, तिल, गोधूम आदि के प्रसंग में-यज्ञेन सर्वान्नप्रदेन परमात्मना (१२)

८- अश्मा, मृत्तिका, हिरण्य, लोह, सीस, त्रपु आदि के प्रसंग में- यज्ञेन संगतिकरणयोग्येन (१३)

स्वामी दयानन्द जब यज्ञ का अर्थ संगतिकरण करते हैं तो उनका अभिप्राय रसायन विद्या, धातु विद्या, शिल्प, भौतिकी आदि से होता है।

आर्य जगत में स्वतन्त्रता के बाद सुन्दर यज्ञशालाओं के भवन तैयार करने की परिकल्पना उठी, तो हमने देश-देशान्तर में भव्य और रमणीक यज्ञ शालाएं बना डाली-मन्दिर, मस्जिद और गिरजे भी बहुत बने, परन्तु आर्य समाज की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द के अभिप्राय की एक भी यज्ञशाला नहीं बनी। किन्तु भारत राष्ट्र तो इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। आज हमारा आर्यसमाज कुछ गिर कर हिन्दु बनता जा रहा है; किन्तु यह अच्छा हुआ कि भारत राष्ट्र न तो हिन्दू राष्ट्र बना, न मुस्लिम राष्ट्र। हमारा राष्ट्र अभी तक आर्य (भारतीय) राष्ट्र बना हुआ है। आज हमारे देश में १०० के लगभग विभिन्न कार्यों की राष्ट्रीय प्रयोगशालायें हैं। सैकंड़ों कारखाने हैं, चिकित्सा, कृषि, शिल्प और विज्ञान को प्रोत्साहन देने वाली यज्ञशालायें हैं। इन पर हमें गर्व है। ये संस्थान और संस्थायें राष्ट्रीय यज्ञस्थली हैं। किन्तु रुढ़िग्रस्त हिन्दुत्ववादी आर्य समाज आज भी इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है।

मैं अपने आज के स्नातकों से आग्रह पूर्वक संकेत करूंगा कि आपकी शिक्षा-दीक्षा आर्य जगत् के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा-संस्थान में हुई है। इसके लिए आपको बधाई है। आपके कुलपति और कुलाधिपति और अधिकारियों से भी कहूँगा, कि आप अपने अन्तेवासियों को दयानन्द के सपनों को पूरा करने की प्रेरणा दें। इन्हें राष्ट्रवादी बनाएं। ये राष्ट्रीय संस्थानों में यशस्वी स्थान प्राप्त करें।

इस संबंध में एक घटना का उल्लेख करूं। कई वर्षों की बात है, मैं गृहस्थी था। अपनी पत्नी के साथ स्पेन के प्रसिद्ध नगर बार्सिलोना गया वहां मरियम के नाम पर एक गिरजाघर कई दशकों से

बन रहा है। आयोजकों की कल्पना है कि वह संसार का सबसे ऊंचा गिरजाघर होगा। अभी केवल आगे की ऊंची दीवार तैयार हुई है। गिरजे के जिस श्रद्धालु पादरी ने मुझे गिरजा घर घुमाकर दिखाया, उसने वेदना भरे भावुक शब्दों में कहा—आज लोग यूनिवर्सिटियों को तो धन देते हैं, किन्तु भगवान् के नाम पर बनने वाले गिरजों के लिये नहीं। यही तो ईसाईयत है, मुसलमान भी ऐसा ही समझता है, अधोगति प्राप्त हिन्दु की भी यही मनोवृति है और आर्यसमाज का व्यक्ति भी इसी मनोवृति में साथ दे रहा है। यह सम्प्रदाय वादिता है आर्य समाज को इसी से बचाना है। स्वामी दयानन्द इसी मनोवृति से हमें बचाना चाहते थे। वैदिक धर्म यथार्थ जीवन का है, यज्ञमय जीवन का निर्माण वेद की शिक्षा है। उन्नीसवें शतक में वेद के परमोद्धारक ऋषि दयानन्द एकमात्र ऐसे धर्माचार्य थे जिन्होंने यूरोप में विकसित ज्ञान विज्ञान एवं नये शिल्प का स्वागत किया। आज का यूरोपीय या अमरीकी विद्वान् बाइबिल की दुहाई नहीं देता। उसका ज्ञान-विज्ञान मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए है। ईसाइयों नें वैज्ञानिकों का विरोध किया, मुसलमानों ने भी विरोध किया। पौराणिक हठाग्राहियों ने भी विरोध किया। हममें से भी कछ रूढिवादी हिन्दु आर्य समाजियों ने भौतिकतावाद की गन्ध विज्ञान और शिल्प में पायी, पर विज्ञान के चरण आगे बढते गये। वेद, वेदाँग, उपवेद सबको मिलाकर वर्तमान नाम विज्ञान है। विज्ञान ही मानव मात्र का समान धर्म है। विज्ञान प्रतिपादित–अपौरुषेयत्व में निष्ठा रखना ही सच्ची आस्तिकता है और इसी अपौरुषेयत्व के प्रति नतमस्तक होना मनुष्य का सहज स्वाभाविक धर्म है। अपौरुषेय सृष्टि में विराट् पुरुष का दर्शन करना और इस पुरुष के साक्षात्कार से व्यक्ति और समाज को शाश्वत नैतिकतत्त्व की ओर अग्रसर करना मनुष्य का स्वाभाविक सहज धर्म है। हम अपने विगत मध्यकालीन इतिहास में हिन्दू गणित, ग्रीक ज्योतिष, अरब की रसायन-इन संकुचित भावनाओं के शब्दों का प्रयोग करते थे; किन्तु आज मानव मात्र का एक गणित है, एक रसायन है, एक शिल्प शास्त्र है। ऋषि दयानन्द ने इसी प्रकार की एक कल्पना तथाकथित धर्म के क्षेत्र में की थी। वे समस्त मानव को एक धर्म मंच पर, एक आस्तिकता पर और एक नैतिकता पर लाना चाहते थे। आपके गुरुकुल के स्नातकों मे भी इस दिशा में कार्य करने की पूरी आशा हमें थी। हम कभी-कभी आपको ही लक्ष्य करके आवेश में खुशियों के साथ गाया करते थे कि गुरुकुल का ब्रह्मचारी अरब देश में वेद-घोष ले जावेगा, भारत से दूर वेद का प्रचार करेगा। इस सब का एक अर्थ था कि राष्ट्र या देश की, जातपांत की, सम्प्रदायों की सीमायें लांघ कर एक मानवता को हमारा स्नातक प्रश्रय देगा, सभी देशों के अन्धविश्वासों और अज्ञानों को दूर करेगा।

हम २२-२४ वर्ष के वसु-ब्रह्मचारी से बहुत आशा नहीं करते। आप सब स्नातक जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। आप वैवाहिक गृहस्थ जीवन में रुद्र और आदित्य ब्रह्मचारी बनने की चेष्टा करें। ज्ञान के विस्तारक का नाम ब्रह्मचारी है। ब्रह्म और वेद शब्द समानार्थक हैं। सृष्टि ज्ञान का

नाम ही विद्या है। इसके दो भेद हैं—परा और अपरा। मूर्त सम्बन्धी ज्ञान सृष्टि का नाम अपराविद्या है। अपराविद्या ईश्वर में निष्ठा उत्पन्न करती है, किन्तु पराविद्या सृष्टि से हमें ऊपर उठाकर सृष्टि रचयिता तक ले जाती है। अमूर्त सृष्टि का ज्ञान पराविद्या है। इस पराविद्या के पांच अध्याय हैं। पांचों के विषय अमूर्त हैं—पहले अध्ययन का विषय इन्द्रियाँ हैं, दूसरे का प्राण, तीसरे का मानस क्षेत्र या अन्तःकरण, चौथे का जीवात्मा और पांचवें का विराट् पुरुष या ब्रह्म। ये पराविद्या अध्ययन के शीर्षक हैं। उपनिषदों में इसी विद्या का उल्लेख है। ये पांचों तत्त्व निराकार हैं। भौतिक या रसायन शास्त्र के क्षेत्र से बाहर इनका क्षेत्र है। इन क्षेत्रों में न्यूटन का सिद्धान्त नहीं लगेगा, न आइन्स्टीइन का। इनका विषय काल्पनिक नहीं है, यथार्थ है। इन पांच की सहायता के बिना कोई ज्ञान अर्जित नहीं हो सकता। इनके तत्त्व दर्शन के प्रति कोई उपेक्षा की भावना नहीं रख सकता। वेद का अध्ययन इस दिशा में भी आपका मार्ग प्रशस्त करेगा। आप अपनी ज्ञानपिपासा को बढ़ाते जायें। आपका गृहस्थ धर्म इस जीवन में बाधा नहीं डालेगा। ऋषियों की भी पत्नियां थीं। ऋषि स्वयं भी ऋषि थे और उनमें से कतिपय की सन्तानें भी ऋषि थीं। कुछ ऋषि-पत्नी भी थी, और ऋषिकायें भी थीं। सर विलियम ब्रैग नोबुल पुरस्कार विजेता हुए और उसका पुत्र ब्रैग (जूनियर) भी साथ ही साथ इस पुरस्कार में उसका साझी हुआ। सर जे० जे० थॉमसन ने नोबुल पुरस्कार पाया और उसके पुत्र जी० पी० थॉमसन ने भी। मेडम क्यूरी ने अपने पति पीरे क्यूरी के साथ भौतिकी के क्षेत्र में नोबुल पुरुस्कार पाया और दुबारा उसकी पत्नी क्यूरी ने रसायन के क्षेत्र में यही पुरस्कार पाया। क्यूरी-परिवार की पुत्री आइरीन क्यूरी और उसके दामाद जोलियों ने भी साथ-साथ नोबुल पुरस्कार पाया। इस अर्थ में मैं आपसे कह रहा हूँ कि गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होकर भी आप ऋषित्व प्राप्त कर सकते हैं। आज आप वसु हैं। मेरी आकांक्षा है कि आपका ब्रह्मचर्य, आपका वेद प्रेम आगे भी बढ़े, जीवन भर आपका वेदाध्ययन बना रहे, गृहस्थ रहकर भी आप रुद्र ब्रह्मचारी बनें तथा आपका पढ़ा-लिखा तेजोवान् बने। अभी तो आपने ज्ञान का 'अ, इ, उ, ण्' सीखा है, श ष स र, हल् तक पहुँचते पहुँचते कई जीवन लगेंगे। ज्ञान की कोई सीमा नहीं। परमात्मा की थाह नहीं, परमात्मा की रची सृष्टि की भी थाह नहीं। परमात्मा अज्ञेय है और उसकी रचना का प्रत्येक कण भी अज्ञेय है। अज्ञेय से अज्ञेय को समझने की पात्रता केवल ज्ञानियों में है। अज्ञानी अपने तुच्छ ज्ञान में ही अपनी सर्वज्ञता समझता है। आदित्य ब्रह्मचारी ही यह जानता है कि जो कुछ उसने जाना, वह कितना कम है, शून्य के बराबर। केनोपनिषद् का ऋषि, सुकरात ऐसा तत्त्ववेत्ता, न्यूटन ऐसा वैज्ञानिक ही इस सत्य के आस्वादन का अधिकारी था।

आप सम्भवतया समझते हों, कि गुरुकुल या आचार्य—कुल की परम्परा आपकी ही संस्था में है। उपनिषदों में गुरु-शिष्यपरम्परा की कतिपय नामावलियां हैं। सुकरात, प्लेटो और अस्तूर की

परम्परा प्रसिद्ध है। विज्ञान के क्षेत्र में, यूरोप के विश्वविद्यालयों में विज्ञान के क्षेत्र में यह परम्परा तीन सौ वर्षों की है। हममें प्रत्येक व्यक्ति जिसने विज्ञान के क्षेत्र में कुछ भी यशस्वी काम किया है, अपने गुरु के नाम पर गौरवान्वित होता है। मेरे गुरु अभी जीवित हैं, ९३ वर्ष की आयु के। मैं और मेरे गुरु भाई आज तक भी (८० वर्ष की आयु में भी) उनकी आंख से आंख मिलाकर बातचीत करने की उद्दण्डता नहीं करते उनके भी गुरु थे, उनके समय में गुरु की भी यही स्थिति थी। मैं अपनी वंशा वली बताऊं तो ७००-६०० वर्ष पहले के जगत्–प्रसिद्ध जर्मन रसायन से अपना नाता जोड़ सकता हूं। पर यह गुरु-शिष्य सम्बन्ध प्रथम स्नातक उपाधि के समय स्थापित नहीं होता। जिस गुरु ने अनु-संधान और उच्च अध्ययन के क्षेत्र में हाथ पकड कर कुछ सिखाया, वह अन्तिम गुरु हमारा गुरु है। मेरा एक गुरु और अनेक शिष्य। मेरे एक माता पिता उनके पुत्र। गुरु और शिष्य में इतना गहरा सम्बन्ध इन गुरुकुलों में हआ है, कि गुरु अपने शिष्य को न केवल अपने ज्ञान क्षेत्र में आलोक देता है वह उसके मानों परे जीवन का उत्तर दायित्व लेता है कहां नौकरी लगे, कहां आगे के कार्य के लिए सुविधायें प्राप्त हों और कभी-कभी कहां शादी विवाह हो, इन सबकी उसे चिन्ता है। मालूम नहीं कि आपके गुरुकुल में यह परम्परा कहां तक स्थापित हुई है पहले गुरु के गौरव से शिष्य गौरवान्वित होता है और बाद को शिष्य के गौरव से गुरु भी अपने को यशस्वी समझता है। कभी किसी बात में गुरु की अपकीर्ति हुई, तो शिष्य को उस अपकीर्ति का परिणाम भी भोगना पड़ता है।

विगत ८० वर्षों में आपके गुरुकुल ने शिक्षा और आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के संबंध में अच्छी सेवा की थी, आपके अनेक स्नातकों के विद्यानुराग से हम सभी परिचित हैं। हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में इन स्नातकों ने अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की। दिल्ली नगरी में १००, २०० आप के स्नातक अच्छा काम कर रहे हैं। किसी एक का नाम नहीं लेना चाहता। देश देशान्तर में मिशनरी का काम भी इन्होंने अच्छा किया। आज के स्नातकों को अपने इन बड़े गुरु भाइयों के चरणों पर चलने का हौंसला बढाना चाहिए। नौकरियां हम बड़े-बड़े विश्वविद्यालय–स्नातकों को भी नहीं दे पाते, पुनः आपको भी हम आश्वास्त नहीं कर सकते। जब कभी मैं आपके गुरुकुल के पुराने स्नातकों के सम्पर्क में आया हूँ। उनमें एक विशेषता पायी है, वह है आत्मविश्वास की। यह आत्मविश्वास उन्हें नित्य नूतन संघर्षों के लिये साहस और सामर्थ्य देता है आपके स्नातक यशस्वी हुए हैं और पी.एच.डी. एम.ए. आचार्य या शास्त्री की उपाधियाँ ले लेने में इन्हें कोई कठिनाई मालूम नहीं होती। वाद प्रतिवाद प्रतियोगिता में मैं इन स्नातकों की कुशलता प्रायः विश्वविद्यालय में भी देख चुका हूं।

मैं न तो स्नातकों को उपदेश देने का साहस करूंगा और न अधिकारियों को सुझाव। पर कुछ बातें अवश्य कहूँगा। तैत्तरीय उपनिषद् के उद्बोधन से उत्तम और उद्बोधन हो ही क्या सकता

है ? स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय वातावरण में सभी भारतीय विश्वविद्यालयों ने पूर्णतया या अंशतः इसे अपना लिया है। यह उद्बोधन किसी सम्प्रदाय की बपौती नहीं हैं। यह उस समय का है जब मानवता संकीर्ण सम्प्रदायों में बंटी थी न हिन्दू था न बौद्ध, न ईसाई और न मुसलमान।

आज युग विशेषज्ञता का है। आपके विश्वविद्यालय महाविद्यालय या गुरुकुल की कुछ विशेषता होनी ही चाहिये। प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने पाठ्यक्रम, पठन-पाठन पद्धति आदि विवरणों में स्वतन्त्र है (सीमा या बाधा केवल अर्थ तन्त्र की है, अनुदानों की है) आप पूर्ण स्वतन्त्रता पूर्वक अपने संस्थान की विशेषता का विकास करें। ऊंचे स्तर पर पहुँच कर कोई भी शिक्षा संस्थान सभी विषयों के अध्ययन का भार नहीं ले सकता। मेरा सुझाव है, कि अन्य संस्थानों का आप न तो अनुकरण करें और न उनसे प्रतियोगिता। आप अपने लिये सीमित क्षेत्र का वरण करें। स्मरण रक्खें कि विज्ञान विषयक शोध संस्थान आप नहीं चला सकते। आज यह क्षेत्र इतना व्ययसाध्य है कि इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के पुराने विश्वविद्यालय भी अपने को इस कार्य के लिए दरिद्र पा रहे हैं।

आप स्नातक कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने की आतुरता न दिखावें। आप अपनी पद्धति के गुरुकुलों से देश की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या के शिक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते।

आप अपने गुरुकुलों में ऐसे स्नातक तैयार करें, जो वैदिक वाङ्मय के ऊंचे विद्वान् हों। अष्टाध्यायी, निरुक्त, महाभाष्य के महाविद्वान् हों इन्हें आप भाषाशास्त्र के विद्वान् बनायें। इस क्षेत्र में काम करने के लिए तपस्या करनी पड़ेगी। एकाध आचार्य और दो चार शिष्य लैटिन, ग्रीक और प्राचीन भाषाओं के विशेषज्ञ बनें और भारत के इतिहास के मर्मज्ञ हों। चीन की पुरानी संस्कृति का ये अध्ययन करें और धीरे-धीरे इस क्षेत्र को विकसित करें। आपका संग्रहालय और पुस्तकालय इन सीमित क्षेत्रों में सम्पन्न हो।

आपके प्राच्य-विभागीय छात्रों को भी संसार की गति विधि से परिचय होना चाहिए। पाठ्यक्रम से बाहर इनके लिये कुछ विशेष व्याख्यानों का प्रबंध करना होगा। चुने हुए कुछ आचार्यों और कुछ शिष्यों को ऐसे कामों के लिए आपके अधिकारियों को प्रोत्साहन देना होगा।

आर्य समाज के प्रति भी आप के गुरुकुल का एक कर्त्तव्य है। मैं आपसे पुरोहित तैयार करने के लिए नहीं कहता। निष्ठावान् तपस्वी उच्चस्तरीय मिशनरी आपको तैयार करने होंगे। देश के अनेक प्राञ्चलों में आपके स्नातक काम करने का अवसर प्राप्त करें, आर्य समाज की संस्थायें इनका भरणपोषण कर निकटवर्ती एवं दूरस्थ देशों में इन्हें भेजें। ये सेवा-व्रती अपने कार्य के योग्य आपके

माध्यम से शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करें और फिर कार्यरत हों, तो आर्य जगत् को भी गुरुकुल पर भरोसा होगा।

बहुत दिनों से मेरी कल्पना रही है कि उच्चस्तरीय अनुसन्धान या शोधपत्रिका आर्यजगत् की भी होनी चाहिये। होशियारपुर से एक पत्रिका निकलती है। आपके गुरुकुल से वैदिक मैगजीन निकालता था, एक वैदिक पाथ निकलता है। ये पत्रिकायें आज की दृष्टि से स्तरीय या मानक नहीं हैं। यदि इन पत्रिकाओं का जीवन क्षणिक है, तो ये यशस्वी नहीं हो सकती। मैं स्वयं प्रयाग के विज्ञान परिषद् से विज्ञान शोध सम्बन्धी एक पत्रिका ('विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका') लगभग २७ वर्ष से निकाल रहा हूँ–यह हिन्दी भाषा की एक मात्र अधिकृत शोध पत्रिका है। यदि गुरुकुल को ऐसी पत्रिका निकालनी है। तो गुरुकुल के पास कम से कम ५ लाख रुपये की एक स्थायी निधि होनी चाहिये। इतनी धनराशि से पचास– साठ हजार रुपया वार्षिक ब्याज आवेगा। तब आश्वस्त होकर उसके ब्याज से त्रैमासिक उच्चस्तरीय पत्रिका निकाली जा सकेगी। आज अनेक विश्व-विद्यालयों ने दयानन्द पीठ की स्थापना की है। इनकी संख्या बढ़ती जायेगी। बिना स्तरीय शोध पत्रिका के इन पीठों का काम भी अधूरा रहेगा। क्या आर्यसमाज के क्षेत्र में गुरुकुलों में निष्ठा रखने वाले ५–१० धनी मानी ऐसे व्यक्ति नहीं मिल सकते जो इस काम के लिए एक–एक लाख रुपया दे दें? शोध संस्थान खोलने की बात मैंने कलकत्ता में भी सुनी, बम्बई में भी, दिल्ली में भी अजमेर में भी। शोध संस्थान का नाम तो लोगों ने सुना है, किन्तु शोध कार्य के लिये शोधकर्ता को जो शोध स्वतन्त्रता चाहिये, उसे कोई देने को तैयार नहीं है। हमारा समाज भी रूढ़ियों से बंधा हुआ है। शोधकर्ता अपने क्षेत्र में कल्पना की मुक्त उड़ान लेता है। दूसरों को भी उसकी प्रत्यालोचना करने का अधिकार है, पर विचारों के स्वातंत्र्य और उनके प्रकाशन में कोई बाधा नहीं डाल सकता। आपका गुरुकुल संस्थान इस कार्य को उदारता से प्रारम्भ करे तो बहुत अच्छा होगा। आप नहीं करेंगे तो कोई करेगा ही। सम्भवतया यूनिवर्सिटी वालों को करना पड़े। गुरुकुलों और यूनिवर्सिटियों में अब निकट का सम्पर्क बढ़ाना चाहिए।

स्वतन्त्रता के बाद हमारे सम्मुख विगत कई वर्षों से दुःखद कहानियाँ भी आयीं। उत्तर भारत में यह विषाक्तता तेजी से फैली। हमारी समस्त शिक्षा - संस्थायें इसके कलुषित प्रभाव से ग्रस्त हो गयीं। अभी यह प्रभाव मिटा नहीं है। विद्यार्थियों में यह विष ऐसा फैला कि उनके लिए अभि-शाप बन गया। इसमें सबसे अधिक हानि युवकों और छात्रों की हुई। ये संयम खो बैठे, दूसरों ने अपने स्वार्थ के लिए उन्हें मूर्ख बनाया। आज गुरुकुल भी उस प्रभाव से बच न पाया। मैं अनैतिक तत्त्वों की बात नहीं करना चाहता, जिन्होंने यह स्थिति पैदा कर दी गुरुकुल को प्रतिष्ठा की हानि हुई है, और विश्वविद्यालयों की भी।

१९४७ से पूर्व देश परतन्त्र था, उस परतन्त्रता में भी विश्वविद्यालयों को स्वतन्त्रता प्राप्त थी और उस समय का शासक उस स्वतन्त्रता का सम्मान करता था। देश स्वतन्त्र हो गया; किन्तु हमारी परतंत्रता बढ़ती गयी। आर्थिक स्वतन्त्रता आयी–राष्ट्रीयकरण हुआ, जिसका अर्थ था सरकारीकरण। सरकारीतंत्र की अस्थिरता ने देश में उच्छृंखलता पैदा की। उत्तरदायित्वों से शून्य अधिकारी की मांग बढ़ी और इसका अवश्यंभावी परिणाम युवकों को भोगना पड़ा। युवक आज की भयंकर परिस्थिति के जनक भी हैं और भोक्ता भी। ऐसे पर्यावरण में मैं गुरुकुलों के आदर्शों की बात ही नहीं करना चाहता।

नव स्नातकों को बहुत बहुत आशीर्वाद और शतशः बधाइयां आप और आपके गुरुकुल के गौरव में देश का गौरव है। मेरी समस्त शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। मैंने वही कार्य किया। उनकी एक एक ईंट पर मुझे गर्व है और प्यार है। पर जब आज उसकी धरती पर चलता हूँ, तो आंखों को नीचे किये हुए, सशंकित सा, जहां वर्षों से दीक्षान्त समारोह ही न हो पाया।

□□□

यज्ञाग्नि के दिग–दिगन्त हो, सुरभित व्याधि विपद भय क्षय हो।
वैदिक विचार धारानुकूल प्रिय जन-जन का परिपूर्ण हृदय हो ।।
ओम पताका घर–घर फहरे ऋषिवर दयानन्द की जय हो।
सत्पथ प्रेरक अटल व्रत, आर्यों का ध्रुव सम दृढ़ निश्चय हो ।।
निन्दक वेद पराजित हों, वैदिक धर्म की अविचल जय हो।
अज्ञाततम का नाश हो, तमसो मा ज्योतिर्गमय हो ।।
रहो स्वस्थ सानन्द प्रसन्नचित, जिओ सुखी शत वर्ष अभय हो।
सब विधि यह नव वर्ष सभी को सुखद शांति मंगलमय हो ।।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता–वेद प्रचार विभाग, दिल्ली
आर्य प्रतिनिधि सभा, १५–हनुमान रोड,
नई दिल्ली–११०००१

गुरुकुलों की समस्याओं का एक ही हल है

–डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले गुरुकुलों की बाढ़ सी आ गयी थी। जगह-जगह गुरुकुल खुल रहे थे। कोई राज्य ऐसा नहीं था जिसमें गुरुकुल नाम की कोई न कोई संस्था नहीं थी। महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री राजेन्द्र प्रसाद ये सब राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र अगर कहीं देखते थे, तो उनकी दृष्टि गुरुकुलों की तरफ जाती थी। नाम चाहे गुरुकुल हो, चाहे विद्यापीठ हो–सबका मतलब एक ही था–राष्ट्रीयता, भारतीयता, इस देश की संस्कृति में प्रेम। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह स्वाभाविक था कि इन संस्थाओं को सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होती, क्योंकि देश के अन्धकार के युग में ये ही राष्ट्रीयता, भारतीयता तथा देश की संस्कृति को बनाये रखने वाले केन्द्र थे, जिन्होंने बिदेशी संस्कृति के इस देश की संस्कृति पर हो रहे आक्रमण का डटकर मुकाबला किया था।

स्वतन्त्रता आयी और सरकार ने १९६२ में गुरुकुल पद्धति के मूल स्रोत गुरुकुल कांगड़ी को विश्वविद्यालय की मान्यता प्रदान की। यह मान्यता इस कारण नहीं दी गयी थी कि जहां गुरुकुल स्थापित था उसके आस-पास अंग्रेजी, गणित, फिलॉसफी, सोशियोलोजी आदि की उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाएं नहीं थीं। स्कूल-कॉलेज जगह-जगह शहर-शहर खुले हुए थे जहां प्रचलित शिक्षा पद्धति के अनुसार जो चाहता शिक्षा प्राप्त कर सकता था। गुरुकुल को विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता देने का लक्ष्य यह था कि जिन सिद्धान्तों को लेकर गुरुकुलों की स्थापना की हुई थी उन सिद्धान्तों को सुरक्षित रखा जाये। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के कुछ आधारभूत सिद्धान्त हैं। उदाहरणार्थ, ब्रह्मचर्य, तपस्या का सादा जीवन, गुरु-शिष्य का दिन-रात का सम्बन्ध, आश्रम-व्यवस्था, प्रातःकाल उठकर संध्या-हवन करना, संस्कृत तथा वैदिक संस्कृति का ज्ञान एवं उसे जीवन में उतारना, सह–शिक्षा का न होना, जन्म की जात-पांत को न मानना इत्यादि ये गुरुकुल शिक्षा पद्धति के आधारभूत सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों का यह अर्थ नहीं है कि गुरुकुल में पढ़े बालकों को वर्तमान बिज्ञान से वंचित रखा जाये। जब गुरुकुल कांगड़ी अपने यौवन पर था तब यहां के विद्यार्थी उक्त सिद्धान्तों को जीवन में

घटाते हुए शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिकतम विज्ञान का पूर्ण ज्ञान रखते थे, साथ ही संस्कृत के भी पूर्ण पंडित होते थे। थोड़े शब्दों में कहा जाए तो कहा जा सकता है कि गुरुकुल के विद्यार्थी प्राचीन भारतीय संस्कृति में ओत-प्रोत होने के साथ-साथ पूर्व तथा पश्चिम के विज्ञान में भी निष्णात होते थे और इसी संमिश्रण को गुरुकुल शिक्षा पद्धति का नाम दिया गया था। १९६२ से जब गुरुकुल काँगड़ी को सरकार द्वारा विश्वविद्यालय की मान्यता तथा आर्थिक सहायता दी जाने लगी तब गुरुकुल का यही चित्र सरकार के सामने था, यही उसका स्वप्न था। यह मान्यता गुरुकुल विश्वविद्यालय को नहीं, परन्तु गुरुकुल कांगड़ी जैसा भी वह था उसे दी गयी थी।

दुर्भाग्यवश, अब स्थिति वह नहीं है। अब जो छात्र विश्वविद्यालय की कक्षाओं में पढ़ते हैं उन्हें गुरुकुल की परम्पराओं का न तो ज्ञान है, न उन परम्पराओं को जानने की उनमें उत्सुकता है। अब गुरुकुल के विद्यालय विभाग में तो वह परम्परा मौजूद है, परन्तु गुरुकुल विश्वविद्यालय विभाग में अपनी वह विशेषता नहीं रही जिसके कारण इस संस्था को विश्वविद्यालय की पदवी दी गई थी। ९-१० मार्च ८४ को युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन की एक विजिटिंग कमेटी गुरुकुल विश्वविद्यालय की कुछ आर्थिक योजनाओं का अध्ययन करने वहां गई थी। मैं भी उनके साथ गुरुकुल गया था। बातचीत के दौरान इस कमेटी के एक मुख्य सदस्य ने मुझे कहा कि सुना है वहां यज्ञशाला में कोई यज्ञ नहीं करता, वह सूनी पड़ी रहती है। मैंने उन्हें कहा कि असली गुरुकुल है, छोटे बच्चों का गुरुकुल, जिसमें बाल्यावस्था में बच्चे लिये जाते हैं, उसमें तो प्रातः सायं दोनों समय सन्ध्या हवन होता है। जब हम लोग गुरुकुल पहुँचे, रात को सोने के बाद उठने पर प्रातः चार बजे ब्रह्मचारी वेदों के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे और पांच बजे के लगभग शौचादि से निवृत्त होकर योगासन कर रहे थे। यह सब देखकर कमेटी के सदस्य प्रभावित अवश्य हुए, परन्तु मेरा मन कहता रहा कि दिखाते हम इस बच्चों के गुरुकुल को हैं और इसका लाभ मिलता है गुरुकुल के उस भाग को जिसमें न गुरुकुलीयता है, न गुरुकुलीय संस्कृति है और जिसमें 'गुरुकुल' इस नाम के सिवाय ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे यथार्थ रूप में गुरुकुल कहा जा सके, ऐसा गुरुकुल जो गुरुकुलीय सिद्धान्तों पर आधारित हो।

मैंने यह सारी समस्या कमेटी के सामने नग्न रूप में रखी। गुरुकुल को अनुदान के रूप में जो मान्यता मिली है वह उसके गुरुकुलीय रूप को, गुरुकुलीय संस्कृति को कायम रखने के लिये मिली है, परन्तु इस ग्रान्ट से लाभ मिल रहा है गुरुकुल के उस भाग को जो गुरुकुलीय रूप या गुरुकुलीय संस्कृति नहीं है। होना तो यह चाहिए था कि गुरुकुल विश्वविद्यालय में वे विद्यार्थी दिखलायी देते जो अन्य शिक्षा संस्थाओं से अपनी विशेषता के कारण भिन्न हैं, परन्तु हो यह रहा है कि इसका विकास अन्य चालू शिक्षा संस्थाओं का प्रतिबिम्ब होता जा रहा है। उसी के लिये लाखों रुपयों की माँग हो

रही है, और उसी के लिये यू० जी० सी० लाखों दे रही है। इस संस्था में वे विद्यार्थी भरती हो रहे हैं जो गुरुकुलीयता या गुरुकुलीय संस्कृति से शून्य होते हैं, अधिकांश संख्या उन्हीं लोगों की है। इस समस्या का हल ढूढ़ना आवश्यक है क्योंकि अगर यह समस्या हल हो जाती है तो भारत भर के सब गुरुकुलों की समस्या इस विश्वविद्यालय का विकसित अंग होने के कारण हल हो जायेगी। इस समय वृक्ष का तना बढ़ता जा रहा है, उसकी जड़ सूखती जा रही है। गुरुकुलीयता या गुरुकुलीय संस्कृति को पनपाने के लिए उसकी जड़ में पानी देना होगा ताकि अपने ढंग का यह वृक्ष हरा-भरा हो, इसके पत्तों में चमक हो, फूलों में सुगन्ध हो और फलों में रस हो।

कमेटी के सदस्यों में से उन सज्जन ने जिन्होंने शंका की थी कि यहां की यज्ञशालाएं सूनी पड़ी रहती है इस समस्या का हल सुझाया। उन्होंने कहा कि गुरुकुल को विश्वविद्यालय की मान्यता उसकी अपनी बिशेषता के कारण दी गयी थी। यह विशेषता वहां से शुरु होती है जहां से बालक गुरुकुल में प्रवेश करता है। गुरुकुल का विद्यालय विभाग उसी प्रकार विश्वविद्यालय का अङ्ग है जिस प्रकार गुरुकुल का कॉलेज विभाग अङ्ग है या जिस प्रकार पैर सम्पूर्ण शरीर का अंग है। गुरुकुल विश्वविद्यालय को दी जाने वाली ग्रान्ट के लिये आपको यह प्रयत्न करना चाहिये कि गुरुकुल का विद्यालय विभाग तथा कन्या गुरुकुल इन दोनों को गुरुकुल विश्वविद्यालय का अभिन्न अंग माना जाय ताकि दोनों विभागों को आर्थिक अनुदान से इतने उच्च स्तर पर लाया जा सके जिस कारण आपके गुरुकुल के वातावरण में पढ़े हुए छात्रों तथा छात्राओं से सारा विश्वविद्यालय भर जाये और आपको बाहर से छात्र लेने की आवश्यकता न रहे, इसी प्रकार आप अपनी संस्कृति तथा अपनेपन को कायम रख सकते हैं अन्यथा बाहर से छात्र भरती करते-करते किसी समय आप नाम मात्र के गुरुकुल कहलायेंगे, आपका अपनापन नष्ट हो जायगा, अनुदानों से आप एक बड़ी युनिवर्सिटी बन जायेंगे, परन्तु भीतर से खोखले हो जायेंगे।

इस सिलसिले में उन्होंने अलीगढ़ यूनिवर्सिटी तथा जामिया मिलिया का दृष्टान्त दिया। ये संस्थाएं स्वतन्त्र रूप से केन्द्र द्वारा शासित हैं। इनके विद्यालय-विभाग भी केन्द्र द्वारा विश्वविद्यालय को प्रदत्त अनुदानों से चलते हैं। इनकी अपनी-अपनी विशेषता है जिसे प्रजातान्त्रिक राज्य में बनाये रखना राजनीतिक सिद्धान्त है। राजनीति में अल्प संख्यक लोगों या संस्थाओं को राज्य से पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता हैं। गुरुकुल पद्धति में लड़के-लड़कियों का एक साथ रहकर पढ़ना निषिद्ध है। यह हमारे सिद्धान्त का अंग है। इसमें किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है। इसलिये अगर गुरुकुल के संचालक सिद्धान्त के आधार पर लड़कियों के गुरुकुल को एक अन्य परिवार में रखते हैं तो इस आधार पर निरन्तर मिलने वाली सरकारी सहायता से वंचित किया नहीं जा सकता। गुरुकुल विश्वविद्यालय को सैद्धान्तिक रूप से एक 'यूनिट' मानकर उसे विद्यालय--विभाग, कन्या गुरुकुल विभाग

तथा कॉलेज विभाग के तौर पर युनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन से अथवा केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से अन्य केन्द्रीय विद्यालयों की तरह गुरुकुलीय पद्धति को शिक्षा तथा जीवन विधि को ध्यान में रखते हुए भरपूर आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये ताकि भारत भर के गुरुकुल एक दृढ़ नींव पर खड़े होकर एक सूत्र में बंध सकें। हमें गुरुकुल विश्वविद्यालय के लिए हमारे "फ्रीडिंग गुरुकुल" सहायक होंगे ताकि हमारा विश्वविद्यालय उन गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त छात्रों से इतना भर जाये कि हमें बाहर से छात्रों को लेने की आवश्यकता ही न रहे।

इस दिशा में गुरुकुल के संचालकों को सक्रियता से, तत्परता से तथा बार-बार आवेदन पत्र देकर और मिलने-जुलने से प्रयत्न करने की आवश्यकता है ताकि गुरुकुल शिक्षा पद्धति शिक्षा के जगत् में अपना स्थिर स्थान बना सके। इस समस्या को हल करने के लिये एक साधिकार कमेटी बना देनी चाहिए जो सिर्फ इस समस्या को हल करे, क्योंकि गुरुकुलों के अध्यापकों का असन्तोष दूर करने का यही एक मार्ग है कि उन्हें विशेष पद्धति का अनुसरण करने के कारण गुरुकुल विश्वविद्यालय के यूनिट का अंग स्वीकार किया जाय।

वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति

—डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

वृहत्तर भारत प्राचीन भारतीय इतिहास के गौरव की गाथा है। हमारे सांस्कृतिक प्रचार की एक रोचक कहानी है और विश्व को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने का एक प्रबल प्रयास है। इसीलिये प्रस्तुत विषय पर आप के समक्ष कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को रखने का प्रयास किया है।

इतिहास साक्षी है कि विश्व में भारतीय संस्कृति के प्रसार की कहानी बेजोड़ है। ईसाईयत के प्रचारक जब अपने धर्म प्रचार के लिये निकले तो उनके एक हाथ में बाईबिल और दूसरे हाथ में शराब की बोतल थी। ईसाई धर्म को फैलाने के लिये वे बाईबिल मुफ्त बांटते थे और प्रलोभन के रूप में अंग्रेजी शराब की बोतल भी दी जाती थी। शराब तो प्रतीक है। कहने का अभिप्राय है कि ईसाईयत को फैलाने के लिये प्रलोभन के समस्त मार्ग खोल दिये गये थे। ठीक इसी प्रकार से इस्लाम के बन्दे जब अपने धर्म प्रचार के लिये निकले तो उनके एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार थी। कुरान के अपनाने से जो इनकार करता था, दूसरे साथ में लटकी हुई तलवार से उसकी गर्दन काट दी जाती थी। यह बात प्रायः सर्वविदित है कि हजरत मुहम्मद साहब के पश्चात् उनके खलीफाओं के समय में इस्लाम धर्म का प्रचार और प्रसार बलपूर्वक किया गया। सातवीं शती में अरब प्रायद्वीप में इस्लाम धर्म का अभ्युदय हुआ था और आठवीं शती के मध्य तक विश्व के एक विशाल भूखण्ड पर इस्लाम की विजय वैज्यन्ती फहराने लगी थी। इस्लाम की विश्वव्यापी लहर शीघ्र ही सीमान्तों से भारत में प्रवेश करने लगी थी। किन्तु सुदीर्घ काल तक मुस्लिम शासकों द्वारा शक्ति प्रयोग तथा शान्ति पूर्वक प्रचार से भी इस्लाम धर्म को भारत में उल्लेखनीय सफलता मिली। भारत में आने से पूर्व इस्लाम जिन देशों में गया था, उसे विलक्षण सफलता मिली थी, किन्तु इस देश में काफी प्रयास के बाद भी इस्लाम भारत के एक बहुत थोड़े से भाग को अपना अनुयायी बना सका था।

ईसाई और इस्लाम धर्म के प्रचार की तुलना जब भारतीय संस्कृति के प्रचार के साथ जाती है, तो एक अजीब ही दृश्य हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। ईसा मसीह और हजरत मुहम्मद साहब से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब भारतीय पण्डित अपनी संस्कृति के प्रसार के लिये भारतीय सीमाओं से

बाहर निकले तो उनके हाथ न कोई विशेष पोथी थी और न शराब की बोतल या तलवार। वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रसार की कहानी तो निराली है।

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति भारतीय सीमाओं को पार करके जिस विशाल प्रदेश में फैली, उसे ही हम वृहत्तर भारत कहते हैं। इसमें साइबेरिया से सिंघलद्वीप और ईरान से प्रशान्त महासागर के बोर्नियों और बालि टापू तक का फैला हुआ विशाल भूखण्ड सम्मिलित है। भारत की इस सांस्कृतिक विजय की कहानी बड़ी ही अद्भुत है। रक्त की बूंद भी बहाये बिना भारतीय पण्डितों ने जो कार्य किया विश्व के इतिहास में उसका सानी नहीं है। ईसा के जन्म से सैकड़ों वर्ष पूर्व भारतीय पण्डित भारतीय सीमाओं को पार करने लगे थे। मन में कोई प्रलोभन नहीं था। शक्ति की बात कभी उठी ही नहीं। एक ही संकल्प था कि विश्व को मानवता का सन्देश देना है। बदले में लेने की कोई भी भावना नहीं थी। आने जाने की बात आज बड़ी सरल है। यातायात के द्रुतगामी साधनों ने दूरियों को लगभग समाप्त कर दिया है। किन्तु प्राचीन काल में सीमाओं को पार कर बाहर जाना एक कठिन बात थी मार्ग के पर्वत जंगली जानवर और मरुस्थल बहुत बड़े अवरोधक थे। पैदल यात्रा में जाड़ा, गर्मी और बरसात की समस्यायें भी आती थीं। इनकी कोई भी चिन्ता न करते हुए भारतीय पण्डितों ने जो कार्य किया है उसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

भारतीय संस्कृति के प्रसार के दो प्रधान प्रेरक कारण थे। प्रथम तो आर्थिक है। वित्रेषण मनुष्यों को दूर दूर के देशों में जाने और भारी संकटों के उठाने की प्रेरणा देता है। हिन्द महासागर में भारत की केन्द्रीय स्थिति होने से वह प्राचीन विश्व के सभ्य देशों के समुद्री रास्तों के मध्य में पड़ता था। अतः भारतीय पश्चिम के सिकन्दया और पूर्व में चीन के समुद्र तक व्यापार के लिये जाया करते थे। उन दिनों यह समझा जाता था कि वर्मा, मलाया, जावा तथा सुमात्रा आदि देशों में सोने की खानें हैं। इन्हें सुवर्ण भूमि और सुवर्ण द्वीप से नाम से पुकारा जाता था। धन की आशा में भारतीय व्यापारी जहां गये वहां स्वाभाविक रूप से भारतीय संस्कृति भी ले गये। असभ्य जातियों को सभ्य बनाने में भारतीय व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन व्यापारियों से प्राथमिक जानकारी मिलने के फलस्वरूप, भारतीय संस्कृति प्रसार का दूसरा कारण भी निर्मित हो गया। यह दूसरा कारण लोक कल्याण की कामना और धर्म प्रसार को भावना थी। इससे अनुप्राणित होकर भारतीय ऋषि और चित्रक मानव जाति को सभ्य और उन्नत बनाने के लिये निकल पड़े। कभी-कभी महत्त्वाकांक्षी सरदारों तथा क्षत्रिय राजकुमारों ने भी वृहत्तर भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रसार के तीन मुख्य साधन व्यापारी, धर्म प्रसारक और उपनिदेशक थे। हमारे उपनिदेशक का आशय दूसरे देशों में भारतीयों का स्थायी रूप से बस

जाना था। सुवर्णद्वीप में इस प्रकार के अनेक भारतीय राज्य स्थापित हुए। कहा जाता है कि अशोक के काल में निर्वासित भारतीयों ने मध्य एशिया की एक प्रमुख बस्ती खौतन का उपनिदेशक कुणाल की हृदयस्पर्शी कथा ने संबन्धित है। कुणाल अशोक का प्रिय पुत्र था। उसकी आखें बहुत सुन्दर थी। युवा होने पर उसका विवाह काँचनमाला के साथ हुआ। अशोक ने बुढ़ापे में तिष्यरक्षिता नामक एक सुन्दरी ने विवह किया। यह स्त्री कुणाल की मनमोहक आंखों पर मुग्ध थी उसने कुणाल से प्रणय की याचना की किन्तु पुत्र ने विमाता के साथ इस पाप को स्वीकार नहीं किया। अतः तिष्यरक्षिता उसकी कहर शत्रु बन गयी। कुछ समय बाद कुणाल को तक्षशिला का प्रान्तपति बनाकर वहां भेज दिया गया। इसी बीच अशोक बीमार पड़ा। उसकी चिकित्सा का भार सिष्यरक्षिता पर था। उसे अपना बैर चुकाने का अवसर मिल गया। उसने तक्षशिला के पौरों और जानपदों के पास एक जाली चिट्ठी भेजी। इसमें अशोक की ओर से यह आदेश था कि कुणाल की आंखें निकाल ली जाये। तक्षशिला के पौरजानपद इस आदेश को मानने को तैयार नहीं थे। किन्तु कुणाल को जब इस आदेश का पता लगा तो उसने बिना किसी हिचक से अपनी आंखे निकलवा दी और कांचनमाला के साथ पाटलिपुत्र लौटा। कहा जाता है कि अशोक को जब इस घटना का पता लगा तो उसने तिष्यरक्षिता को जीवित जलवा दिया। जो लोग इस षड्यन्त्र में सम्मिलित थे, उन्हें देश निर्वासन की सजा दी गयी। राज्य से निकले हुये ये व्यक्ति खौतन में जाकर बस गये। यह भी कल्पना की गयी है कि सम्राट अशोक मृत्यु दण्ड देना पसन्द नहीं करता था। उस समय राज–द्रोहियों को निर्वासन का दण्ड दिया था और सम्भवतः इस कार्य के लिये मध्य एशिया के क्षेत्र को चुना गया था। आठवीं शताब्दी तक मध्यएशिया में भारतीय संस्कृति के यहां इतने अधिक अवशेष मिलें हैं कि इसे उपरलाहिन्द कहा जाता है। उपरला हिन्द होते हुए भारतीय संस्कृति का प्रचार चीन और जापान में हुआ। पूर्वी देशों में भारतीय संस्कृति का फैलाव मानव जाति के विकास में भारतवर्ष की बहुत बड़ी देन है। मध्य एशिया इसमें महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। अतः इस क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का फैलना असाधारण महत्त्व रखता है। वर्तमान समय में साईबेरिया के दक्षिण में. तिब्बत तथा भारत के उत्तर में, कैस्पियन सागर के पूर्व में तथा गौवी मरुस्थल के पश्चिम में अवस्थित मध्य एशिया के विशाल भूखण्ड को तुर्किस्तान का नाम दिया जाता है। राजनीतिक दृष्टि से आज इसके तीन बड़े भाग हैं। चीनी—तुर्किस्तान, रुसी–तुर्किस्तान और अफगान–तुर्किस्तान। मुस्लिम आक्रान्ताओं के कारण यहां के अधिकांश प्राचीन अवशेष नष्ट हो चुके हैं। फिर भी पूर्वी अथवा चीनी तुर्किस्तान से पुरातत्त्व की प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है।

प्राचीन काल में वृहत्तर भारत के दो प्रधान क्षेत्र थे। प्रथम तो मध्य एशिया जिसकी संक्षिप्त चर्चा आप की गयी। दूसरा था दक्षिण पूर्वी एशिया ... पूर्वी क्षेत्र को परला हिन्द के नाम से पुकारा

जाता है। इसमें वर्मा, मलाया, कम्बुज, जावा, सुमात्रा, बालि, बोर्नियो और प्रशान्त महासागर के अनेक क्षेत्र सम्मिलित थे। बुद्ध और मौर्यकाल में पूर्व के इन प्रदेशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। परन्तु ईसवी सन् के प्रारम्भ से भारतीयों ने अपने वहाँ उपनिवेश बसाने प्रारम्भ कर दिये। शुंग-सातवाहन काल तक दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीयों की अनेक बस्तियां बस गयी थीं। गुप्त काल में तो यह दशा आ गयी कि इस क्षेत्र के प्रायः सभी देशों में ऐसे राज्य कायम हो गये। जिन्हें पूर्णतया भारतीय कहा जा सकता है। गुप्तकाल में भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी प्रसार प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।

जब भारतीयों ने दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रवेश करके अपने उपनिवेश स्थापित किये, तो उस समय यह भूखण्ड बर्बर जातियों द्वारा आवासित था। हिन्दू आवासकों ने इन्हें सभ्यता का प्रथम पाठ पढ़ाया। जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू बना हो, जो इनके प्रभाव से अछूता रह पाया हो। सुवर्ण द्वीप के आवासन का श्रेय हिन्दू राजकुमारों और ब्राह्मणों को है अतः यहां शैव और वैष्णव धर्मों की प्रधानता रही, जावा तथा बोर्नियो आदि स्थानों से हिन्दू देवताओं की सैकड़ों मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता क्राफोर्ड ने तो जावा के सम्बन्ध में लिखा है कि पुराणों का शायद ही कोई ऐसा देवता हो जिसकी प्रतिमा जावा में न पाई गई हो। आज भी बालि के शिल्पी, इन्द्र, विष्णु और कृष्ण को मूर्तियाँ बनाते हैं। यहां के अधिकांश निवासी आज भी हिन्दू हैं। जो भारतीय विधि से दुर्गा तथा शिव की पूजा करते हैं। आज बाली में दिखाई देने वाला यह हिन्दू प्रभाव प्राचीन काल में समूचे सुवर्णद्वीप में फैला हुआ था। इस प्रभाव की पुष्टि साहित्य और कला से भी होती है। सुवर्ण द्वीप में लिपि और संस्कृत भाषा का प्रसार था। चम्भा और कम्बुज से संस्कृत के सैकड़ों अभिलेख मिले हैं। कम्बुज के राजा यशोवर्मा ने पातञ्ज महाभाष्य पर टीका लिखी थी। (नवीं शती)

भारतीय धर्म और साहित्य के साथ-साथ सुवर्णद्वीप में भारतीय कला का भी प्रसार हुआ। कम्बुज की मूर्ति कला गुप्त कालीन काल से प्रादूर्भूत हुई थी। धीरे-धीरे यहां के शिल्पी इतने दक्ष हो गये कि उन्होंने पाषाणों में अमर काव्यों की रचना कर डाली। कम्बोडिया तथा जावा के मन्दिरों में रामायण, महाभारत और हरिवंश पुराण के दृश्य बहुत सफाई और सफलता के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं। जिस उत्तर भारत में मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा मन्दिरों का विनाश हो रहा था, उस समय कम्बुज में अंकोरवाट और अंकोर धाम के विश्वविख्यात मन्दिरों का निर्माण हो रहा था। (सूर्य वर्मा द्वितीय ११४३ ४५ और जयवर्मा सप्तम ११८१-१२००) वास्तुकला का उच्चतम विकास अंकोरवाट तथा बोरोबुदूर के अद्वितीय मन्दिरों में मिलता है। इस प्रकार के देवालय न भारत में पाये जाते हैं न

किसी दूसरे देश में वे विश्व की अद्भुत् वस्तुओं में गिने जाते हैं तथा इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति के अमर स्मारक हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय राज्य लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहे। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में इस्लाम धर्म और संस्कृति का प्रसार हुआ।

बृहत्तर भारत की कहानी तो आज पुरानी पड़ गयी है। किन्तु इसकी गौरवमयी गाथा आज भी सजीव है। आज भी आध्यात्मिक दृष्टि से भारत विश्व का गुरु है।

□

मुझे आगे बढ़ना है

चाहे शीतल हिम भी प्रचण्ड आग बन जाए,
चाहे 'पुष्प-माला' भी कराल नाग बन जाए,
चाहे अनन्त आनन्द भी 'नाश-राग' बन जाए,
संघर्ष को मुस्कान समझ, जी भरके खिलना है।
मुझे आगे बढ़ना है।

चाहे मेरी अनन्त खुशियां बनें अनन्त बाधाएं,
चाहे जलकर राख बने 'ओ' अनन्त आशाएं,
चाहे पल न आराम करें सब अटूट क्रूरताएं,
गम को भी सावन समझ, जरुर मुझे झूलना है।
मुझे आगे बढ़ना हैं।

मिले लाभ न चाहे पर पाना कुल मुझे है,
तीखे-तीखे शूलों को भी कहना फूल मुझे है,
परार्थ ही हो अभीष्ट स्वार्थ, अनुकूल मुझे है,
कुर्बानी को खुशी समझ, सदा गले मिलना है।
मुझे आगे बढ़ना है।

कविरत्न—महेन्द्रसिंह 'उत्साही'

आचार-शास्त्र एक तुलनात्मक अध्ययन

—डॉ० जयदेव वेदालंकार
रीडर एवं अध्यक्ष दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

आचार शास्त्र के विषय में भारतीय मनीषियों एवं पाश्चात्य दार्शनिकों ने पर्याप्त अन्वेषण किया है। आचार शास्त्र दर्शनशास्त्र का प्रमुख अङ्ग माना जाता है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार आचार शास्त्र दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। दर्शन शास्त्र हमें सैद्धान्तिक ज्ञान कराता है तो आचार शास्त्र शुभ और अशुभ का निर्णय करता है। आचार शास्त्र के अन्दर प्रमुखतः नैतिक निर्णयों का व्याख्यान होता है। हमने कोई कार्य किया तो लोग कहते हैं—उसने अच्छा किया। यह जो निर्णय है कि यह अच्छा किया–इसका निर्णय हम किसी की अपेक्षा से कहते हैं। कान्ट के अनुसार शुभ अपने में शुभ है। वह किसी की अपेक्षा नहीं रखता।[1] उसका कहना है कि एक भिखारी हमारे समक्ष भीख मांगने आता है, हम उसको टालने के लिये चवन्नी फेंक कर मारते हैं, वह होटल में जाकर उससे कुछ लेकर खा लेता है। कान्ट के अनुसार यह नैतिकता नहीं है। उसका कथन है कि डाक्टर आपरेशन करता है, उस आपरेशन करने से हमें उस समय दुःख होता है, परन्तु डाक्टर का उद्देश्य हमें दुःख पहुँचाना नहीं है। इसी प्रकार एक शेर किसी मनुष्य पर आक्रमण करता है, हम उस मनुष्य की रक्षा के लिए उस शेर पर गोली चलाते हैं परन्तु वह गोली शेर को न लगकर मनुष्य को लग जाती है। कान्ट का कहना है कि यद्यपि उस मनुष्य की मृत्यु हो गई परन्तु हमने यहां उस मनुष्य के उद्देश्य को देखना है जिससे उसने गोली चलाई। गोली चलाने का उद्देश्य उसका शुभ था अतः नैतिकता है अनैतिकता नहीं। कान्ट का कहना है कि उसी नियम का पालन करो जो सर्वव्यापक बन सके।[2]

आचार शास्त्र में कई प्रकार की मान्यता हैं उनमें से एक मान्यता है सुखवाद। यह सुखवाद दो प्रकार का होता हे—(१) स्वार्थ सुखवाद (२) परार्थ सुखवाद।

1 Good will is the only good that is good without qualification.
2 Act that principle which.........be an universal law.

सुखवादी दार्शनिक मिल, बेन्थम, स्पेंशर आदि हैं। परन्तु ये नैतिक सुखवाद को मान हैं। इनका कहना है कि—जैसे मैं सुखी होना चाहता हूँ, इसी प्रकार दूसरे प्राणी भी सु चाहते हैं इसलिये मुझे भी और को दुःख नहीं देना चाहिये क्योंकि मैं भी दुःखी नहीं होना चाहता इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन में मनोविज्ञान नैतिक सुखवाद का प्रादुर्भाव होता है। इससे पूर्व त स्वार्थ सुखवादी दार्शनिक दूसरों के सुख की उपेक्षा करते थे। उनका नीति सम्बन्धी सिद्धान्त चार्वा के समान है। चार्वाक का कहना है कि विषयजन्य जो सुख हैं वही हमारा अन्तिम उद्देश्य है। वह कहता है कि जब तक जिओ सुख से जिओ चाहे ऋण भी क्यों न लेना पड़े।1 यही विचारधारा स्वा सुखवादी पाश्चात्य दार्शनिकों की थी इस प्रकार पाश्चात्य नीतिशास्त्र में प्रकृतिवाद अर्थात् व्यवहा वाद, अन्तःप्रज्ञावाद, सुखवाद, विकासवाद अर्थात् पूर्णतावाद आदि वादों का प्रचलन हुआ। विका वाद के अनुसार सर्वाङ्गीण, विकास ही मनुष्य का उद्देश्य है। इसमें हेगल एलक्जेन्डर, स्पेंशर, हर्ब ग्रीन और डारविन आदि का नाम लिया जा सकता है। इनमें हेगल अध्यात्मवादी विकासवादी है आगे चलकर अरविन्द पर इसका प्रभाव पड़ा।

नीतिशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बुद्धिवाद है। इस विषय में स्पिनोजा का कहना है कि नीतिशास्त्र एक सोद्देश्यपूर्ण शास्त्र है। अर्थात् मनुष्य का सम्बन्ध जहाँ प्रकृति के साथ है वहाँ समाज के साथ भी है। मनुष्य को अपना उद्देश्य बनाना चाहिये कि वह प्रकृति और समाज के साथ सन्तुलन बना सके। उसे चाहिये कि वह ज्ञानमार्ग की सीढ़ियों द्वारा और शरीर के सन्तुलन को मन के साथ रखता हुआ मौक्तिका ज्ञान को प्राप्त कर लेवे।

बटलर का कहना है कि हमें अन्तर्मुखी और बाह्य निरीक्षण द्वारा यह पता लगता है कि नैतिक ज्ञान सहज ज्ञान है। मनुष्य के अन्दर परोपकार, दया, सहानुभूति आदि जन्मजात हैं। वह कहना है कि हमारी अन्तर्बोध की शिक्षायें स्वयं भगवान् की शिक्षायें हैं इस अन्तर्बोध के सिद्धान्त को मानकार बटलर ने स्वार्थवाद का खण्डन किया है। इस प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक भौतिकवाद से चलकर अध्यात्मवाद की ओर प्रवेश करते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि नैतिकता के सिद्धान्त कैसे बनते हैं? उनका मापदण्ड क्या हो? कुछ लोग परम्परा, रीतिरिवाज को ही नैतिकता मानते हैं। जिसमें परोपकार की भावना से कृत कार्य नैतिक माना जाता है। कुछ अन्य दार्शनिक एक लक्ष्य को सामने रख कर नैतिकता का निर्णय देते हैं। जैसे सुखवादी चार्वाक आदि हैं। कुछ लोग निरपेक्ष सिद्धान्त के रूप में नैतिकता को मानते हैं, जैसे–कान्ट।

---

१ "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।"

महर्षि दयानन्द जी के नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व यह विचार करना होगा कि वे नैतिक सिद्धान्तों को किन बातों पर आधारित मानते हैं अर्थात् उनका नैतिकता का मापदण्ड क्या है ? क्योंकि कोई भी दार्शनिक कुछ स्वतःसिद्ध सिद्धान्तों को मानकर उनके अनुसार अपने माप-दण्ड बनाता है। ऋषि दयानन्द जी के नैतिक सिद्धान्त निम्नलिखित बातों पर आधारित हैं—

१. आत्मा अभौतिक है, असृष्ट है, तथा अमर है।

२. यह चेतन है इसमें ज्ञान, संवेदना और प्रयत्न होते हैं।

३. आत्मा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता इसकी मौलिक सम्पत्ति है। इसको स्वतन्त्रता किसी बाहरी तत्व से प्राप्त नहीं हैं, परन्तु स्वतः प्राप्त है। परन्तु यह स्वतन्त्रता कर्म करने में है, फल भोगने में नहीं।

४. आत्मा असीमित नहीं है। इसका ज्ञान,कार्य सब सीमित हैं। इसकी उन्नति और अवनति दोनों संभव हैं उन्नति के लिये प्रयास करना चाहिये।

५. मनुष्य को बहुत ऊंचे उद्देश्य तक जाना है। अतः उसके उत्तरदायित्व का क्षेत्र बहुत बड़ा है। अनेक विकल्पों में से किसी एक को चुनना है। उस चुनाव के लिये आचार शास्त्र सहायक होता है।

६. केवल मनुष्य ही नहीं अपितु प्राणीमात्र के पीछे एक उद्देश्य है।

७. आत्मा सक्रिय तथा विकासशील है। इसी प्रकार संसार भी विकासशील है। संसार की गति से साथ अपनी गति को मिलाना यही नैतिकता सिखाती है।

महर्षि दयानन्द जी इन सिद्धान्त को मानकर चलते हैं। नीतिवाद के सम्बन्ध में वे यंत्रवाद, यथा उद्देश्यवाद दोनों का खण्डन करते हैं। उद्देश्यवादी सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण संसार का केन्द्रबिन्दु है। वह अपने लिए संसार रचता है। इस उद्देश्यवाद के अनुसार आत्मा सर्वथा परतन्त्र हो जाता है अथवा बन्धन में रहता है। पूर्ण स्वतन्त्रतावाद भी ठीक नहीं है क्योंकि इसके अनुसार ईश्वर जीव की रचना करता है और कृपा करके जीवों को स्वतन्त्रता प्रदान करता है। प्रथम सिद्धान्त के अनुसार तो जीवात्मा को अपने पथ निर्वाचन करने की स्वतन्त्रता नहीं रहती। जब कभी जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं है तो उन कर्मों के फल के भोगने में बाध्य नहीं होने चाहियें क्योंकि जो जैसा करता है वैसा ही भोगता है यह एक स्वतन्त्र सर्वतन्त्र सिद्धान्त है।[1] अतः इस सिद्धान्त के अनुसार तो नैतिकता का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे मत के अनुसार ईश्वर स्वतन्त्रता प्रदान करता है, इससे स्वतन्त्रता का मूल्य नहीं रह जाता है।[2] स्वामी जी के सिद्धान्त दोनों ही मतों के बिरोधी हैं। ऐसे

---

१ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

2 Brought freedom is not freedom.

ईश्वर का होना तो व्यर्थ ही है जो अपने स्वार्थ के लिए जीवों की सृष्टि करता है। जीव को खतरे में डाल देता है। यह मानना कि संसार एक जेलखाना है, ईश्वर इसका जेलर। यह भी मान्यता अनुचित है। ऐसा मानने पर तो नैतिकता का कोई स्थान ही नहीं रहता है। जो लोग ईश्वर और जीव की काल्पनिक सत्ता मानते हैं। उनका भी ऋषि खण्डन करते हैं। इस प्रकार दोनों प्रकार के मत, भौतिकवाद एवं परतन्त्रवाद जिसे अध्यात्मवाद भी कहा जाता है, दोनों का ही खण्ड़न करते हैं। स्वामी मध्यम मार्ग को अपनाते हैं। उनका सिद्धान्त है जैसा कि भारतीय दर्शन में माना गया है कि आत्मा अमर है। वह पुनः जन्म लेता है। जो भी अच्छे बुरे कर्मों को करता है, उस का फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। इन का कहना है कि जब मनुष्य अच्छे कर्मों को करता है तो उसे उत्साह, आनन्द आदि का अनुभव हृदय में होता है और बुरे कर्म करता है तो उसको अपने हृदय में भय, लज्जा, शंका आदि का अनुभव होता है। यहाँ पर वे एक प्रकार से अन्तरज्ञान[1] के सिद्धान्त को मानते हैं, जिसे बलटर भी मानता है। स्वामी दयानन्द जी के अनुसार मनुष्य नैतिक सिद्धान्तों का केन्द्रबिन्दु है। उनका कहना है कि व्यक्ति समाज के लिये और समाज व्यक्ति के लिए है। वे आर्य-समाज के दसवें नियम में लिखते हैं कि "सामाजिक,सर्वहितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें और प्रप्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र हैं। इससे स्पष्ट हो रहा है कि ऐसे नियम भी कुछ नहीं जो अधिक समाज का अहित करते हों और ऐसे नियम भी अनुचित हैं जिनमें व्यक्ति के पीछे समाज बलिदान हो जाता हो। यदि व्यक्ति न होंगे तो समाज भी नहीं होगा। इस प्रकार यदि व्यक्तियों का निर्माण हो जावेगा तो समाज का निर्माण भी अपने आप हो जायेगा। दूसरे दार्शनिक समाज का सुधार चाहते हैं। परन्तु महर्षि दयानन्द जी व्यक्ति और समाज दोनों का निर्माण करना चाहते हैं।

महर्षि दयानन्द जी हमें परिधियों में उस प्रकार नहीं बाँधना चाहते हैं जिस प्रकार समाज जाति, रंग और छोटी भावनाओं से बंधा हुआ है। यह मेरा, वह उसका यह भावना छोटे मनुष्यों की है। उदार मनुष्य विश्व को ही अपना परिवार समझते हैं।[2]

महर्षि दयानन्द जी का मन्तव्य है कि जब तक मनुष्य अपने-अपने धर्मों का पालन नहीं करते हैं तभी तक समाज में विश्रृंखलता आती है। धर्म से अभिप्राय किसी मत विशेष से नहीं। उन का कहना है कि ऐसा धर्म मनुष्यकृत नहीं अपितु ईश्वरकृत वैदिक परम्परायें हैं। जिन का उल्लेख वेदों में है। धर्म किसी वर्ग विशेष का नहीं अपितु सर्वमानवहितकारी होता है। जैसा कि मनु जी कहते हैं-

1 INTUTION

२ अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

धैर्य रखना, क्षमा करना, इन्द्रियों का दमन करना, मन वचन कर्म से चोरी न करना, आत्मा और मन को पवित्र रखना इन्द्रियों को विषयों में अत्यधिक लिप्त न करना, मनुष्यों का धीर होना, विद्या को प्राप्त करना, मन वचन और कर्म से सत्य का पालन करना और क्रोध कभी न करना ये धर्म के लक्षण हैं[1] अर्थात् इन के पालन का नाम धर्म है। यहाँ पर ये धर्म किसी वर्ग विशेष का धर्म नहीं हैं, अपितु इस धर्म का पालन संसार का प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है।

महर्षि दयानन्द जी यह मानते हैं कि मनुष्य का लक्ष्य अपने आप को जानना अथवा परमात्मा को प्राप्त करना है। इस आचार शास्त्र का अन्तिम उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त करना अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करना है, परन्तु इस के साथ-साथ सामाजिक उन्नति भी करना है। जैसा कि वैशेषिक दर्शन में कहा है—धर्म वह है जिससे इस लोक की उन्नति और मुक्ति की प्राप्ति हो।[2] अतः अभ्युदय साधन है और निश्रेयस् साध्य है। धर्म दो प्रकार का है। पहला सामाजिक दूसरा व्यक्तिगत जैसे हिंसा न करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और संग्रह अधिक न करना [3] ये पाँच यम कहलाते है, जो सामाजिक धर्म के अंग कहे जा सकते हैं। जिन का पालन अवश्यमेव करना चाहिये। इन को सार्वभौम महाव्रत कहा गया है। भारतीय आचार शास्त्र प्रणेताओं ने समस्त समाज को दो प्रकार से विभक्त किया है। प्रथम आश्रमों की दृष्टि से इस प्रकार है— (क्रमशः)

---

१ धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शोचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ मनु० ॥
२ यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धि स धर्मः। (वैशे० १-१)
३ तत्राहिसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ॥ (सत्यार्थप्रकाश समु० सात)।

फूलों की घाटी

–डॉ० काश्मीर सिंह भिण्डर
इतिहास विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्राचीन काल से ही पर्वतों का अपना अलग से आकर्षण रहा है, चाहे ग्रीष्म ऋतु हो, शरद् हो या वर्षा ऋतु, हर मौसम में पर्वत आनन्ददायक होते हैं। शरद् ऋतु के प्रारम्भ होते ही पर्वत अपनी श्रृंखलाओं पर हलकी जमती बर्फ की छटा से जहां मैदान में बैठे साधारण व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वहीं ग्रीष्म ऋतु के शुरु होते ही हिमालय का प्रत्येक आंचल अपने मदहोश जवानी से आकर्षित करता है। जिस समय सूर्यताप से पर्वतों की चोटियों का बर्फ पिघलने लगता है, उस समय का दृश्य अपना अलग ही स्थान रखता है। मनुष्य इस रोमांस से भरपूर आमन्त्रण को न कभी टाल पाया है और न कभी टाल पायेगा। हिमालय पर्वत की गोद ही ऐसी है जहां मानव की हर आवश्यकता पूरी हो सकती है, जैसे अध्यात्म का आकर्षण, प्राकृतिक सौन्दर्य देखने की लालसा, झर-झर करते झरनों का निनाद, आखेट के लिये घने जंगल, रोगियों के लिए ओषधि, भ्रमण के लिये रमणीक स्थल क्या कुछ नहीं है पर्वतों की गोद में। इसलिये रोनाल्ड ने कहा था कि सही मायने में इन्सान को यदि सब कुछ कहीं मिल सकता हैं तो वह केवल हिमालय की गोद में। पर्वत सदैव से अपना सब कुछ लुटाकर दूसरों को प्रसन्न करने मात्र में ही खुश रहा है।

मनुष्य सदैव से रमणीय स्थलों की तलाश में इधर से उधर खोज करने में मग्न रहा, इसी तरह की एक खोज में लगा हुआ कामथ कमीशन के अधीन १९३५ में ब्रिटिश लोगों का एक काफिला मैदानों से चलता हुआ हिमालय के शिखर पर जा पहुँचा, जहां उसे फूलों की सुगन्ध ने मदहोश कर दिया। इस सुगन्धमय वातावरण की जगह का नाम है फूलों की घाटी। फूलों की घाटी आज एक विश्व प्रसिद्धि लिये हुए है क्योंकि एक ओर सिक्खों का एकमात्र धार्मिक स्थल हेमकुण्ड और दूसरा है फूलों की घाटी, जिनका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। फूलों की घाटी को जाने के लिये केवल मात्र गोविन्दघाट से ही रास्ता है। गोबिन्दघाट से यह घाटी १९ किलोमीटर की दूरी पर है जिसको पैदल चलकर या छोटे घोड़ों पर सवार होकर तय किया जा सकता है। गोविन्दघाट से फूलों की घाटी एवं हेमकुन्ड तक पगडन्डोनुमा रास्ता है जिसमें एक ओर विशाल पर्वत और दूसरी सिंहनाद करती हुई बाण गंगा, जो प्रत्येक दर्शनार्थियों को प्रेरणा देती है एवं इस दुर्गम रास्ते को तय करने के लिये साहस बढ़ाती है। इस रास्ते को तय करने में स्वस्थ आदमी तक हांफ जाता है। रास्ते की दूरी महसूस न हो इसलिये

प्रत्येक दो किलोमीटर पर चाय की दुकाने यात्रियों को सहारा देने के लिये अपने गन्तव्य पर पहुँचने में सहयोग देती हैं। गोविन्दघाट से घघरिया तक प्रकृति की छटा को देखने वाला तथा हेमकुण्ड की यात्रा को जाने वाला यात्री एक दूसरे का साहस बढ़ाता हुआ आगे चलता है और घघरिया पहुँचने पर अपनी-अपनी दिशा ले लेता है। घघरिया नामक स्थान से दायीं ओर हेमकुण्ड है और बायीं ओर फूलों की घाटी। गुरु गोबिन्द सिंह से देश व धर्म की रक्षा में दुनिया के समक्ष अपने पुत्रों का तथा अपना बलिदान देकर उदाहरण प्रस्तुत किया कि देश व धर्म की रक्षा ही मनुष्य का धर्म है।

इसी स्थान के पास महाकाल का ऐतिहासिक मन्दिर भी स्थित है। हेमकुण्ड का दर्शन करने वाला यात्री इस मन्दिर के दर्शन कर अपने को भाग्यशाली मानता है घघरिया से दर्शनार्थी चलता है तो तरह-तरह की फूलों की गन्ध तथा वातावरण की मादकता उसको छेड़ना शुरु कर देती है। कोई तो इस छेड़खानी से रास्ते में ही इतना मदहोश हो जाता है कि कोई पुष्प आकर अपना वह गीत सुनाये जिससे दोनों का भेद एवं अन्तर भी समाप्त हो जाय। यहां पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर दूध की भांति श्वेत झरने सौन्दर्य में और निखार ला देते हैं और इन्सान को आत्मविभोर कर देते हैं। फूलों की घाटी बारह हजार पांच सौ फिट की ऊंचाई पर स्थित है। मध्य हिमालय में नर-पर्वत और जंस्कार पर्वत से घिरी यह घाटी है, जहां पर विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे फूल यहां की शोभा बढ़ाते हैं, वहीं यहां चारों और दूर-दूर तक फैले देवदार के वृक्ष यहां के सौन्दर्य को श्रीवृद्धि करते हैं। वास्तव में यह स्थान भी इन्सान के लिये आश्चर्यजनक है। यहां ना तो फूलों को कोई रोपता है न ही उनकी किसी प्रकार देखभाल होती है। लाखों फूल जो सैकड़ों प्रकार के हैं, केवल प्रकृति ही उनकी देखभाल करती है। यही वह स्थान है जहां पाण्डु ने तप किया था, यही वह स्थान जहां पाण्डव घटोत्कच पर चढ़कर पहुँचे थे। यही वह स्थान है जहां पुष्पों की शोभा को देखकर द्रौपदी मन्त्रमुग्ध हो गयी थी। इस घाटी का वर्णन द्रोण–पर्व में भी आता है कि जिस समय राजा जयद्रथ ने अभिमन्यु को मार गिराया था उससे पाण्डव पक्ष में जहां अभिमन्यु का दुःख था वहीं दूसरी और अर्जुन की प्रतिज्ञा का भय, क्योंकि अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयद्रथ का वध नहीं कर लूंगा तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूंगा। महाभारत में इस स्थान का बहुत ही सुंदर वर्णन है, जिसमें इस स्थान को देव व ऋषियों का स्थान कहा गया है—

अयं देव निवासो वै गन्तव्यो वो भविष्यति ।
ऋषिनां चैव दिव्यानां निबास पुण्यकर्मणा ।।

महाभारत में ही इस स्थान को सौगन्धिक वन कहा गया है—

एष पन्था कुरुश्रेष्ठ सौगन्धिक वनाय ते ।।

निरन्तर झरने वाले झरनों के जल उस पर्वत के कण्ठदेश में अवलम्बित मोतियों के हार से प्रतीत होते हैं । यहां छाया हुआ कोहरा, हल्की-हल्की बूंदों की बौछार, फूलों की कभी न समाप्त होने वाली खूशबू, रोम-रोम में रोमांस पैदा कर देती है। इतना सुन्दर दृश्य है यहाँ का कि जिसको शब्दों में नहीं बांधा जा सकता । इस प्रकृति के दैवी बगीचे को देखने के लिये जहां प्रकृति प्रेमी आते हैं वहीं पर बोटनिस्ट यहां पर कैम्प डाले रखते हैं और यहां पर खिले हुए फूलों को एकत्रित कर अपने-अपने लेबोटरीज में ले जाकर टैस्ट करते हैं । लेकिन आज तक कोई वैज्ञानिक यहाँ के रहस्य को नहीं जान पाया है । फूलों की घाटी के सुन्दर दृश्य मानव को इतना अधिक प्रभावित कर देते हैं कि वह दैवीय बगीचे की प्रशंसा में कह उठता है–यही है–स्वर्गलोक और देवलोक ।

स्वतन्त्र देश में अवसान और अवसाद ऐसा

स्वतन्त्र देश में अवसान और अवसाद ऐसा,
दरिद्रता और दैत्य का साम्राज्य जैसा ।
सामाजिक हीनता और उदासीनता का अन्धकार ऐसा,
पराभव और पराधीनता का अभिशाप जैसा ।
व्यथा और व्यग्रता का मेघ उमड़ता है ऐसा,
रौरव नरक की यातनाओं का सैलाब जैसा,
देश द्रोह का विटप पनपता है ऐसा,
अहिफण उठता है और झूमता है जैसा ।
क्रूर उग्रता का कराल कुकृत्य है ऐसा,
निर्दोष मानवता का संहार जैसा ।

१९५, जी ब्लाक
श्री गंगानगर, राजस्थान

के० लाल शर्मा

राष्ट्रोत्थान कौन कर सकता है ?

—श्री सुरेशचन्द्र त्यागी
प्रिंसिपल—विज्ञान महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय

चरित्र के विकास के लिए इच्छा—शक्ति का होना बहुत आवश्यक है। जो व्यक्ति ढुल-मुल होता है, उसमें इच्छा—शक्ति का अभाव होता है। अतः वह दुर्बल—चरित्र होता है। जो एक निश्चय करके उस पर दृढ़ नहीं रह सकता, जो प्रत्येक नवीन मत को ग्रहण कर लेता है, जिसका कोई स्थाई सिद्धान्त नहीं, जिसकी अपनी रुचि नहीं, उसके पास चरित्र का अभाव ही समझना चाहिए। ऐसे पुरुष भले हो अथवा बुरे किसी भी प्रकार के बड़े कार्य करने में अक्षम होते हैं। उनसे समाज का हित तो क्या होगा, वे अपना ही कल्याण नहीं कर सकते। एक चरित्रवान् व्यक्ति के लिए दृढ़ इच्छा—शक्ति की सख्त जरूरत है।

बालकों को अपना निश्चय स्वयं करने देना चाहिए। जो लोग बालकों को आत्मनिर्णय का मौका नहीं देते, ज़रा सी भी कठिनाई आने पर उनकी सहायता करने को उतावले हो जाते हैं, वे उनके चरित्र—विकास में सबसे बड़े बाधक हैं।

हठधर्मी भी दृढ़ इच्छा का ही एक स्वरूप है; किन्तु हमारा उद्देश्य हठधर्मी को प्रोत्साहित करने का नहीं है। हमारा अभिप्राय उन हालात से है जहां पर या तो व्यक्ति कुछ निश्चय कर ही नहीं पाता या अपनी इच्छा की दुर्बलता के कारण, झूठे दबाव में पड़कर अपना इरादा बदल देता है। लज्जा के कारण अथवा हीनता की भावना से, जो अपने निश्चय पर स्थिर नहीं रह सकता उसका व्यक्तित्व तथा चरित्र व्यर्थ है। वह कल क्या करेगा, कोई नहीं कह सकता। उसके चरित्र में स्थायित्व नहीं, और स्थायित्व ही चरित्र की विशेषता है। जो चरित्रवान् होता है वह अपने उचित निर्णय पर डटना जानता है। इस डटे रहने में उसे इच्छा—शक्ति से ही सहायता मिलती है। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥

संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं—उत्तम, मध्यम और नीच। नीच व्यक्ति विघ्नों के भय से किसी कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते। मध्यम प्रकार के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ तो कर देते

हैं परन्तु विघ्न आने पर उस कार्य को बीच में ही छोड़ देते हैं। उत्तम श्रेणी के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ करके तब तक नहीं छोड़ते जब तक कार्य सिद्धि नहीं हो जाती।

उत्तम प्रकार के व्यक्तियों की इच्छा–शक्ति प्रबल होती है। इस इच्छा–शक्ति के आधार पर ही वे संसार में महान् कार्य कर जाते हैं और अमर हो जाते हैं।

इच्छा–शक्ति एक बहुत बड़ी ताकत है। एक कहावत प्रसिद्ध है—"जहां चाह होती है, वहां राह निकल ही आती है। जिस परिस्थिति में बहुत बड़ी शारीरिक शक्ति से सम्पन्न, किन्तु दुर्बल इच्छा के व्यक्ति घबरा जाते हैं वहां इच्छा–शक्ति के प्रभाव से ही शरीर से दुर्बल पुरुष स्थिर, अचल होकर खड़ा रहता है। महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष बाबू इच्छा–शक्ति के आधार पर महान् कार्य करके इतिहास में अपना नाम अमर कर गये हैं। बिना दवा के ही, केवल इच्छा के जोर से अनेक लोग कठिन रोगों तक से मुक्त होते देखे गये हैं।

यह इच्छा–शक्ति है क्या? यह मनुष्य की कोई मूल शक्ति है अथवा इसका जन्म अकस्मात् हो जाता है और प्रबल से प्रबल विपत्तियों मे टकराने की विलक्षण शक्ति इसमें कहां से आ जाती है?

जीवन के अनेक अवसर आते हैं जब हमारे सामने निर्णय लेना कठिन हो जाता है और हमें कोई एक मार्ग चुनना होता है। हम तब एक अनिश्चय की दशा में होते हैं। क्या करें, क्या न करें यह हमारी समझ में नहीं आता। हम सोचते विचारते हैं, सभी प्रकार की युक्तियों का सहारा लेते हैं और तब अन्तर्द्वन्द्व के पश्चात् किसी एक निर्णय पर पहुँचते हैं। यह निर्णय हमारी इच्छा–शक्ति करती है।

युद्ध के लिये तैयार अर्जुन के सम्मुख एक बार ऐसा ही संकट उपस्थित हुआ था। उसके सम्मुख प्रश्न था कि वह धर्म–युद्ध करके आत्मीयों की हत्या करे अथवा आत्मीयता के मोह में पड़कर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाये। सोचा-समझा, पण्डित प्रवर भगवान् कृष्ण से उपदेश लिया और अन्त में अन्तर्द्वन्द्व के बाद यह निश्चय किया कि मैं युद्ध में भाग लेकर क्षात्र–धर्म का निर्वाह करुंगा। इस निर्णय में यह 'मैं' शब्द विशेष महत्त्व का है। इस निर्णय की प्रेरणा तथा उसको कार्यान्वित करने की प्रबल–शक्ति इस 'मैं' में ही छिपी हुई है, अर्जुन की इच्छा शक्ति का सम्पूर्ण रहस्य इस 'मैं' में ही निहित है।

'मैं'' कौन? अर्जुन, क्षत्रिय शिरोमणि, जगत् विख्यात, क्षात्र-धर्म विवेक सम्पन्न, ज्ञानी अर्जुन यह महान् लज्जा की बात होगी कि साधारण मनुष्यों सी दुर्बलता अर्जुन के आचरण में भी प्रकट हो,

नहीं ऐसा कभी नहीं होगा। मैं क्षात्र-धर्म पालन अवश्य करूंगा, उसके लिये मुझे कुछ भी क्यों न बर्दाश्त करना पड़े। यह 'मैं' अर्जुन के समस्त व्यक्तित्व का, चरित्र का, द्योतक है। इसमें उसका आदर्श 'स्व' है जो अनिश्चय की दशा में भली-भांति स्पष्ट नहीं हो सका था। अतएव इच्छा-शक्ति, चरित्र का बल है और इसी से किसी का व्यक्तित्व निखरता है।

सुन्दर चरित्र के लिए इच्छा-शक्ति की बहुत जरुरत है। जो व्यक्ति दृढ़ निश्चय नहीं कर पाता, जो अपने किसी कार्य पर डट नहीं पाता, उसका व्यक्तित्व प्रभावहीन तथा चरित्र दुर्बल होता है। मनुष्य का विगत जीवन एवं भावी योजनाएं जिस "आदर्श स्व" को बनाती हैं, इच्छा-शक्ति उसी की प्रबल प्रेरणा को कहते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि बालकों को आत्म-निर्णय का अवसर दें, जिससे उनकी इच्छा-शक्ति दृढ़ हो सके। वंशानुक्रम, प्रकृति, वातावरण सभी का हाथ चरित्र निर्माण में होता है और उन पर शिक्षकों का कोई नियंत्रण नहीं होता। किन्तु तब भी छात्रों की इच्छा-शक्ति को जगाने के लिए वे जो भी कुछ कर सकते हैं। उन्हें लगन तथा ईमानदारी से करना चाहिए। चरित्रवान् व्यक्तियों पर ही किसी देश का भविष्य निर्भर करता हैं और चरित्र का निर्माण बहुत कुछ शिक्षकों के हाथ में होता है।

आज देश के नवयुवक विज्ञान, इंजीनियरिंग, कृषि आदि क्षेत्रों में उन्नति कर रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश चारों ओर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और बेईमानी का राज हैं। देश तेजी से पतन की ओर जा रहा है। उसका एकमात्र कारण यही है कि नवयुवकों के चरित्र निर्माण की ओर किसी का ध्यान नहीं। हम एक ऐसा देश बना रहे हैं जिसकी नीव रेत के ढेर पर खड़ी है और यह नींव कभी भी बुरी तरह ढह सकती है।

एक अंग्रेजी कहावत है कि "जब किसी का धन नष्ट हो जाये तो समझो कि कुछ नष्ट नहीं हुआ। जब स्वास्थ्य नष्ट हो जाये तो समझो कि कुछ हो गया और जब चरित्र नष्ट हो जाये तो समझो कि सब कुछ नष्ट हो गया। अतः आज देश के गिरते हुए नैतिक स्तर को उठाने के लिए बालकों का उच्च चरित्र बनना परमावश्यक है और यह तभी सम्भव है जबकि माता-पिता तथा प्रत्येक गुरु बालकों की इच्छा-शक्ति को दृढ़ करें, क्योंकि बिना दृढ़ इच्छा-शक्ति के उच्च चरित्र ही नहीं बन सकता।

□

विश्वविद्यालय के प्रांगण से–

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
उप–कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पिछले दिनों विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की छठी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने के लिये गुरुकुल में आयी।

इस सन्दर्भ में जो प्रश्न उभर कर सामने आया वह यह था कि क्या गुरुकुल की कोई विशेषता है अथवा गुरुकुल भी अन्य विद्यालयों की तरह ही है जो बी० ए०, एम० ए० की परीक्षायें लेता है और डिग्रियां बांटता है? सौभाग्य से इस अवसर पर विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा महोदय डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार तथा गुरुकुल के पुराने स्नातक, धर्मयुग एवं नवनीत के भूतपूर्व सम्पादक और अब गुरुकुल के आचार्य प्रो० सत्यकाम विद्यालङ्कार भी उपस्थित थे।

कुलपति जी ने अपने स्वागत भाषण में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८० वें दशक का कार्यक्रम उपस्थित करते हुए जोरदार शब्दों में कहा कि गुरुकुल सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह नहीं है। गुरुकुल का एक विशेष लक्ष्य है। गुरुकुल के पास एक विशेष सन्देश है जो गुरुकुल ने न केवल राष्ट्र को अपितु सारे संसार को देना है। वह सन्देश है आध्यात्मिक मूल्यों का, विज्ञान का प्रसार और पाखण्ड का खण्डन अर्थात् श्रेयस् और प्रेयस् का संगम।

इसी उद्देश्य को लेकर सन् १६०० में स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल की स्थापना की थी।

महर्षि दयानन्द राष्ट्र को मजबूत बनाना चाहते थे। वह जानते थे कि देश तभी सशक्त होगा जब सभी देशवासी सशक्त, सबल, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी-ओजस्वी होंगे। वह देश की निर्बल, असहाय असमर्थ जनता को बलवान् स्वावलम्बी, समर्थ बनाना चाहते थे। अत: जहां एक ओर उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रम पर बल दिया, वहां व्यक्तिगत सुधार पर भी उन्होंने यथेष्ट जोर दिया।

उन्होंने ब्रह्मचर्य की महिमा समझी और आजन्म ब्रह्मचर्य के कठिन व्रत का पालन किया। सिद्ध को प्रमाण क्या? तभी वह ब्रह्मचर्य पालन पर सदैव जोर दिया करते थे। आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करना सबके लिये सम्भव नहीं। इसलिये उन्होंने कहा पहले २५ वर्ष तक प्रत्येक युवक को और १६ वर्ष तक प्रत्येक कन्या को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। इस अवस्था के बाद ही शादी होनी चाहिये।

वह चारों ओर देख रहे थे, छोटी उमर की शादियों का अभिशाप, नर पंगुओं की संख्या में

वृद्धि, बच्चों के कच्चों की उत्पत्ति। इसका उन्होंने कड़ा विरोध किया।

आज भी अभी बाल विवाह बन्द नहीं हुये। उनके शिष्य हरविलास शारदा ने कानून बनवाया कि लड़की की शादी १८ वर्ष से पहले और लड़कियों की १४ वर्ष से पहले नहीं होनी चाहिये। लेकिन जनमत ने इसे पूर्णतः स्वीकार नहीं किया। बाद में शादी की आयु पुरुषों के लिये २१ और लड़कियों के लिये १८ कर दी गई; किन्तु जनमत की तैयारी न होने के कारण यह अभी कोरे कागजी कानून ही हैं। हां, कानून का कुछ न कुछ असर तो होता ही है। लेकिन कानून को सफल करने हेतु भविष्यद्रष्टा, आदर्शवादी, अग्रगामी समुदाय को सचेष्ट होकर जनमत तैयार करना होता है।

स्वामी दयानन्द ने अपने कार्यक्रम को बढ़ाने हेतु आर्यसमाज को एक सक्रिय संस्था के रूप में जन्म दिया था। आर्यसमाज ने शुरु-शुरु में दयानन्द के कार्यक्रम को तेजी से आगे बढ़ाया। इसी हेतु स्वामी श्रद्धानन्द ने आज से ८४ वर्ष पूर्व गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की ताकि यहां से निकले हुये ओजस्वी स्नातक अच्छे ब्राह्मण, अच्छे क्षत्रिय और अच्छे वैश्य बनें तथा देश के उद्धार में अपना योगदान दें। लेकिन विहंगम दृष्टि से देखा जाय तो जिस पौराणिकता, पाखण्ड और पोपलीला के विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने युद्धभेरी बजाई थी वह अभी भी देश में प्रचुर मात्रा में व्याप्त है। अतः उनके कार्यक्रम को गतिमान करने हेतु और अन्धकार के इन गढ़ों को मिटाने हेतु कृत संकल्प नवयुवक समुदाय की दयानन्द के वीर सैनिकों को बहुत आवश्यकता है और उनको तैयार करने का कार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का है।

एक अन्य बात जिस पर स्वामी जी ने जोर दिया था, वह थी स्त्री शिक्षा। आज भी देहात में चले जाइये या दलित वर्ग के लोगों को देखिये, स्त्री शिक्षा का कतई अभाव है। स्त्रियां सुशिक्षित होंगी तभी देश का उद्धार होगा। इसी हेतु १८९५ में जालन्धर में आर्य कन्या महाविद्यालय एवं १९२३ में देहरादून में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना हुई थी।

बाल विवाह बन्द हो, स्त्री शिक्षा भरपूर हो, तो राष्ट्र क्यों न मजबूत होगा?

ब्रह्मचर्य के साथ ही ऋषि दयानन्द ने यम-नियम के पालन पर भी जोर दिया था। यम पाँच है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह। नियम भी पांच है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश प्रणिधान।

ठीक है इनको धारण करना आसान नहीं है। लेकिन लक्ष्य सुनिश्चित हो, ध्येय स्पष्ट हो तो साधक साधना और अभ्यास करते करते लक्ष्य की ओर अग्रसर होता ही है। इसमें तो दो राय हो नहीं

यही है गुरुकुल कांगड़ी का सन्देश जिसके प्रचार की देश बिदेश में आवश्यकता है। इस सन्देश को देश विदेश में पहुँचाने हेतु हमें दुभाषिये ही नहीं त्रिभाषिये,चतुर्भाषिये कर्मठ विद्वानों की आवश्यकता है, जो देश की अन्य भाषाओं में, विदेशी भाषाओं में वेद के इस अमर सन्देश का प्रचार करें।

इसी सन्दर्भ में आचार्य सत्यकाम विद्यालङ्कार ने गुरुकुल को वैदिक संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी के सम्मुख रखी, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया।

स्वामी दयानन्द ने १८७५ में उद्घोष किया था, सुराज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो, स्वराज्य से अच्छा नहीं हो सकता। इसी उद्घोष को १८९६ में लोकमान्य तिलक ने दोहराया जब उन्होंने कहा, स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है—मैं इसे लेकर रहूँगा। बस इसके बाद ५० वर्ष तक भारत स्वतन्त्रता संग्राम में जूझ गया और इस महायुद्ध में हजारों वीरों ने अपना सर्वस्व बलिदान किया। उन्होंने खून दिया, स्वतन्त्रता देवी प्रसन्न हुई। १५ अगस्त १९४७ को देश में स्वराज्य स्थापित हुआ।

उसको मूर्त रूप देने हेतु भारत की जनता ने अपने लिये नया संविधान बनाया जिसके अधीन २६ जनवरी १९५० से भारत का प्रशासन कार्यरत है।

लेकिन यदि आज की पीढी के नवयुवकों से पूछा जाय कि स्वतन्त्रता प्राप्ति में उनके पूर्वजों ने क्या कुर्बानियाँ दीं क्या यातनायें भोगीं तो थोड़े बहुत को छोड़कर बहुत से तो शायद १० अमर शहीदों के नाम भी नहीं बतला सकते। इसी तरह २६ जनवरी का क्या महत्त्व है, इस प्रश्न का उत्तर भी बहुत लोग नहीं दे सकते।

इस कमी को दूर करने हेतु तथा भारत की स्वतन्त्रता एवं पुनर्जागरण के इतिहास को रचने हेतु गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने अपनी छठी योजना में लाजपत राय पीठ प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव उक्त समिति के समक्ष रखा। इस पर भी वह सहानुभूति से विचार करेंगे ऐसा प्रकट हुआ।

हम विजिटिंग कमेटी के सदस्यों के आभारी हैं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एवं विद्यालय की गतिविधियों का गहराई से अध्ययन किया तथा इन कमजोरियों एवं क्षमताओं का मूल्यांकन किया। उन्होंने हरिद्वार की शैक्षणिक आवश्यकताओं का भी जायजा लिया और आशा की जाती है कि उनकी सिफारिश गुरुकुल के विस्तार में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

१९ मार्च ८४ को गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय में आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति मन्त्रोच्चारण

आर्य भिक्षु जी ने कहा कि आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालक में गुणों की समृद्धि करें तथा अवगुणों को दूर करें, यही आचार्य गोर्वधन जी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। ज्ञातव्य है कि यह प्रतियोगिता प्रतिवर्ष संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर की ओर से आयोजित की जाती है। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा द्वितीय स्थान कन्या गुरुकुल कनखल ने प्राप्त किया।

इन दिनों आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी ने भी अंगड़ाई ली है। संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट की आथिक सहायता से आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी ने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे, तीसरे एवं छठे समुल्लास के सरलीकृत एवं लघुकृत संस्करण प्रकाशित किये। इसी प्रकार उन्होंने व्यवहारभानु के सरलीकृत संस्करण का प्रकाशन किया। इसमें राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, तथा गुरु, शिष्य नागरिकों के परस्पर व्यवहार की मर्यादाओं का दिग्दर्शन किया है। इन तीनों पुस्तिकाओं का प्रकाशन इस आशा से किया गया है कि स्वामी जी के विचार हर घर तक पहुँचे। इसी ध्येय को लेकर स्वामी जी ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज गुरुकुल काँगड़ी का प्रयास प्रशंसनीय है और आशा है अब यह समाज नवचेतना की ओर अग्रसर होगा।

यह प्रसन्नता का विषय है कि पद्मश्री विनयचन्द्र मौद्गिल्य, प्राचार्य गन्धर्व महाविद्यालय नई दिल्ली जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल में ही हुई थी ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को संगीत शिक्षा की ओर प्रेरित करने हेतु अपनी अमूल्य सेवायें गुरुकुल को प्रदान की हैं, इस श्रृंखला में उन्होंने गत सप्ताह तीन दिन का गुरुकुल में प्रवास किया तथा गुरुकुल के चुने हुये ब्रह्मचारियों को सस्बर वेदमन्त्र एवं अन्य गीत सिखाये।

यह भी प्रसन्नता का विषय है कि आचार्य सत्यकाम जी जिन्होंने ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया है को गुरुकुल की कार्यपरिषद् ने मानद प्रोफेसर के रूप में कार्य करने हेतु आमन्त्रित किया है और आर्य विद्या सभा ने भी उन्हें गुरुकुल विद्यालय के आचार्य पद पर नियुक्त कर दिया है। उनके आगमन से ब्रह्मचारियों की शिक्षा दीक्षा के कार्यक्रम को यथेष्ट बल मिला है।

इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय ने उन्हें विद्यामार्तण्ड की मानद उपाधि से विभूषित किया है और संघड़ विद्या सभा जयपुर ने उन्हें आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार १९८४ से अलंकृत किया है।

राष्ट्रीय सेवा योजना वृत्तांत

(द्वितीय शिविर, १९८३-८४)

–डॉ० बी० डी० जोशी,
विभागाध्यक्ष, जन्तु विज्ञान
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

शिविर स्थल– पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम, जि० बिजनौर।
शिविर काल– दिनांक २२ दिसम्बर ८३ से ३१ दिसम्बर ८३ तक।

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी रा० से० यो० का विशेष वार्षिक शिविर पुण्य भूमि, कांगड़ी ग्राम में लगाना निश्चित हुआ था। वस्तुतः मातृ ग्राम कांगड़ी अब गुरुकुल विश्वविद्यालय की रा० से० यो० ईकाई द्वारा वार्षिक एवं सामान्य कार्य कलापों के लिए एक अंगीकृत ग्राम है। इस कैम्प में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या निम्नवत् थी—

(१)	विज्ञान महाविद्यालक छात्र	सं०	४३
(२)	वेद तथा कला महावि०	,,	०४
(३)	स्थानीय युवक	,,	०६
(४)	अध्यापक गु० कां० विश्वविद्यालय		०१
		योग	५४

दिनांक २१-१२-८३ को डॉ० बी० डी० जोशी के नेतृत्व में रा० से० यो० के छात्रों का दल पुण्य भूमि काँगड़ी ग्राम पहुँचा इसी दिन सायंकाल प्रोग्राम को ओर्डीनेटर श्री वीरेन्द्र अरोड़ा जी भी व्यवस्था देखने हेतु वहां आए। २१ दिसम्बर ८३ को कैम्प स्थापित हुआ। २२-१२-८३ को छात्रों ने नियत कार्य–क्रमानुसार प्रातःकाल से ही अपना कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। छात्रों ने गंगा की धारा के ऊपर नदी के पत्थरों का अस्थायी मार्ग निर्माण किया और सायंकाल को छात्र जंगल में लकड़ी बिनने के लिये गये पर यहां पर पाया कि जंगल मुख्यतः खैर का है। अतः तब यह निश्चय किया गया कि लकड़ी लकड़हारों से ही खरीदी जाएगी। दिन भर छात्रों ने शिविर स्थल की सफाई अभियान सा चला दिया। सायंकाल को विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बी० के० हूजा, प्रो० एल० आर० शाह

गत दिनों पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम में आयोजित राष्ट्रीय सेवा योजना शिविर में लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ का आगमन हुआ-

बलराम जाखड़ कुलपति श्री हूजा जी से पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम विकास के विषय में जानकारी प्राप्त कर रहे हैं, साथ में डॉ० विजयशंकर, (अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग एव निदेशक, कांगड़ी ग्राम विकास योजना) तथा डॉ० बी० डी० जोशी (अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग)
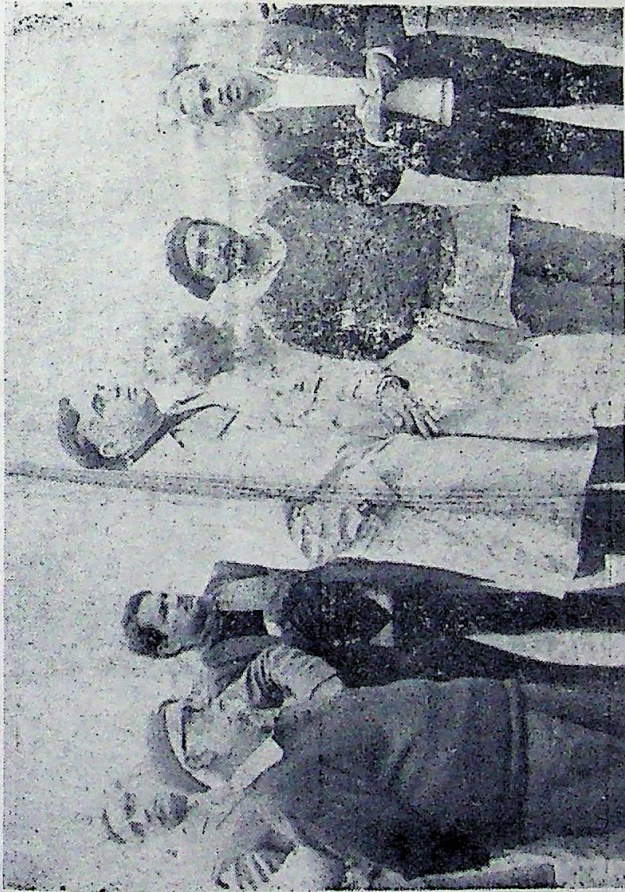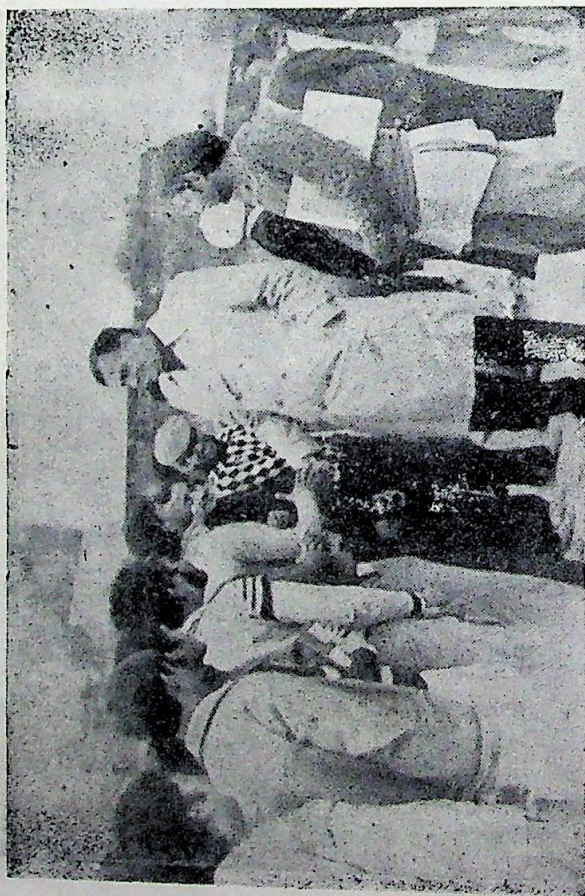
बलराम जाखड़ छात्रों से व्यक्तिगत परिचय करते हुए साथ में डॉ० बी० डी० जोशी (प्रोग्राम ऑफिसर-राष्ट्रीय सेवा योजना)

किया गया। श्री वीरेन्द्र अरोड़ा ने प्रो० एल० आर० शाह भू० पू० निदेशक रा० से० यो०, भारत सरकार का छात्रों को परिचय दिया। गोष्ठी को प्रो० शाह एवं श्री हूजा जी ने भी सम्बोधित करते हुए छात्रों को कक्षाओं से बाहर की दुनियां विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में आकर कार्य करने की प्रेरणा दी। अन्त में डॉ० बी० डी० जोशी ने अतिथियों का धन्यवाद किया।

२३-१२-८३ को शिविर का औपचारिक उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ। प्रो० शाह मुख्य अतिथि ने समारोह का शुभारम्भ वैदिक हवन द्वारा किया। समारोह को प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, डॉ० जबरसिंह सेंगर कुलसचिव, नजीबाबाद के बी० डी० ओ० श्री राव, डॉ० विजयशंकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान विभाग, छात्र प्रतिनिधि श्री मनोज कुमार, डॉ० बी० डी० जोशी, कुलपति श्री हूजा जी, आयुर्वेद महावि० के प्राचार्य डॉ० सुरेशचन्द्र शास्त्री एवं मान्य मुख्य अतिथि प्रो० शाह द्वारा सम्बोधित किया गया। प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा ने गुरुकुल में रा० से० यो० को स्थापित कराने में कुलपति जी एवं प्रो० शाह द्वारा की गयी प्रेरणाओं का उल्लेख किया। डॉ० बी० डी० जोशी ने शिविर के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। डॉ० शास्त्री ने छात्रों को शिविर के अलावा भी कार्य करते रहने की प्रेरणा दी। प्रो० शाह ने छात्रों को ग्राम्य पर्यावरण, वन संरक्षण एवं समाज सेवा के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहने के लिए कहा। कुलपति जी ने मान्य मुख्य अतिथि को धन्यवाद दिया। समारोह के समस्त कार्यों का संचालन प्रो० बी० डी० जोशी द्वारा ही किया गया।

समारोह में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्राध्यापकगण, छात्रों, कांगड़ी ग्रामवासियों एवं जिला बिजनौर के अनेक अधिकारियों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। समारोह का अन्त वैदिक शान्ति पाठ के मन्त्रों द्वारा हुआ। अन्त में सभी आमन्त्रित एवं सम्मिलित जनता को जलपान कराया गया। दि० २३-१२-८३ को माननीय कुलपति श्री हूजा जी ने रात्रि में शिविर स्थल में ही रहने का प्रोग्राम बनाया। रात को कुलपति जी ने छात्रों के साथ ही मिलकर भोजन किया और तब रात्रि को छात्रों एवं ग्रामवासियों द्वारा मिल-जुलकर मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

दि० २४-१२-८३ को प्रात: दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने के बाद श्री कुलपति जी के निर्देशन में छात्रों ने ग्राम कांगड़ी में सेवा योजना का कार्य प्रारम्भ किया। गांव के कुएं (जो बन कर पिछले दो सालों से अपने चारों ओर मिट्टी भर जाने और चबूतरा बनने की प्रतीक्षा में आकाश ताक रहा था) के चारों ओर भरान का कार्य शुरु किया। कुलपति जी ने स्वयं पत्थर उठाकर खाली जगह भर कर कार्य का शुभारम्भ किया। छात्रों ने मिट्टी खोदकर बुग्गियों में मिट्टी ढो-ढो कर कुएं के चारो ओर गड्ढ को भरना आरम्भ किया। पूर्वाह्न में ही विश्वविद्यालय से डॉ० जबरसिंह सैंगर, प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, श्री देशराज जी (स० मुख्याधिष्ठाता) भी कार्य स्थल आ पहुँचे। ग्राम विकास अधिकारी श्री

शराफत अली ने ग्रामवासियों का वांछित सहयोग लेने की पूर्ण सहायता की। मध्याह्न में भोजन के समय जिला बिजनौर के विकास अधिकारी एवं बी० डी० ओ० श्री राव भी आए। उनका भी भोजन द्वारा स्वागत किया गया। कैम्प में दिये जा रहे भोजन व्यवस्था आदि से सभी बड़े प्रभावित रहे। सायं को प्रो० वीरेन्द्र अरोडा शिविर में ही रात भर रुकने का प्रोग्राम बना चुके थे कि रात ८ बजे उनके घर से सन्देश आया कि उनकी पूज्य सास स्वर्ग–सिधार गयी हैं। अत: उन्हें तुरन्त वापस आना पड़ा। सायंकाल को कुलपति जी ने छात्रों के साथ बैठकर एक विचारगोष्ठी का आयोजन करवाया। छात्रों से अनेक विषयों पर सीधा विचार विमर्श किया गया और कुलपति जी ने स्व धर्म क्या है ? हिन्दू धर्म क्या है ? छात्रों के क्या-क्या कर्त्तव्य हैं, जैसे गम्भीर विषयों पर छात्रों को बड़े रोचक ढंग से और सरल भाषा में उद्बोधित किया। रात्रि भोजन के बाद ही वर्षा प्रारम्भ हो गई। मौसम अत्यन्त शीत और कठिन हो गया।

२५-१२-८३ को प्रात:काल से ही वर्षा होती रही फिर भी छात्रों ने प्रात:कालीन व्यायाम आदि किया और फिर कुलपति जी के साथ बैठकर विचार गोष्ठी की। मध्याह्न में वर्षा में ही कुलपति जी गुरुकुल को प्रस्थान कर गये। अपराह्न में कुछ छात्रों ने ग्राम कांगड़ी में जाकर सामाजिक सर्वेक्षण का कार्य किया। श्री कुलपति जी ने उसी दिन विश्वविद्यालय के ही अन्य साथी प्रवक्ता श्री कौशल कुमार (रसायन शास्त्र) को भी शिविर स्थल आने की प्रेरणा दी और श्री कौशल जी वहां २५ एवं २६ दिसम्बर को रहे।

२६-१२-८३ का यह दिन बहुत महत्त्वपूर्ण था। दोपहर तक छात्रों ने गुरुकुल कांगड़ी में नियमित कार्य किया। मार्ग ठीक किये। गलियों में झाड़ू लगाया और कुएं पर भी कार्य किया। अपराह्न में ३-३० पर श्री बलराम जी जाखड़, अध्यक्ष लोकसभा, शिविर स्थल में आए। उनके साथ हरिद्वार एवं बिजनौर क्षेत्रों के अनेक जिला अधिकारी भी शिविर स्थल तक आए। श्री जाखड़ शिविर स्थल के चुनाव एवं वहां की सुन्दर व्यवस्था से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने छात्रों को विशेषत: शहरी छात्रों को ग्राम्याचलों में जाकर देश की समस्याओं को समझाने और सहयोग देने के लिये प्रेरणा दी। श्री जाखड़ की सहज मृदुलता से छात्र भी बहुत प्रभावित हुए। श्री जाखड़ ने प्रत्येक छात्रों का व्यक्तिगत परिचय लिया। श्री जाखड़ का पहले से ही ग्राम कांगड़ी में आने का कोई पूर्व निर्धारित कार्यक्रम नहीं था। हमारे कुलपति जी की ही उनको यह अत्यन्त शुभ प्रेरणा थी कि वह भी ऋषि श्रद्धानन्द जी की तपस्थली तक आए।

२७-१२-८३ को छात्रों ने तसलों और बुग्गियों मे रेत और मिट्टी ढोई और कुएं के चारों ओर भराई के कार्य को जारी रखा। सायंकाल को छात्रों ने ग्राम में घर-घर जाकर स्वास्थ्य एवं सामाजिक सर्वेक्षण का कार्यक्रम किया।

२८-१२-८३ शिविर एवं कांगड़ी ग्राम के इतिहास का एक विशेष दिन था। उ० प्र० सरकार के कृषि उत्पादन आयुक्त (ए० पी० सी०) श्री वेंकट नारायनन महोदय प्रातः ९-३० बजे शिविर स्थल में पधारे। कुलपति जी ने स्वयं घूम-घूम कर उन्हें शिविर स्थल का पूरा परिचय एवं इतिहास बताया। श्री नारायनन भी स्थल के चुनाव से बहुत प्रभावित हुए। उनके साथ बिजनौर जनपद के जिला अधिकारी, एस.डी.एम., बी.डीओ., विकास अधिकारी आदि अनेक प्रमुख अधिकारीगण भी पहुँचे थे। इसी दिन एक छोटी सी सभा का आयोजन किया गया। डॉ० जोशी ने रा० से० यो० द्वारा किये गये कार्यों पर प्रकाश डाला। इस दिन की व्यवस्था में डा० विजय शंकर जी एवं डॉ० कश्मीरसिंह भिण्डर का बड़ा योगदान रहा। डॉ० श्यामनारायणसिंह जी ने भी फोटोग्राफी आदि में अपना विशिष्ट योगदान दिया। सभी अतिथियों का सूक्ष्म जलपान से स्वागत किया गया। तत्पश्चात् छात्रों सहित सभी लोग ग्राम कांगड़ी के कार्य स्थलों तक गए। वहाँ ए. पी. सी. महोदय ने पूरे गाँव का भ्रमण किया और गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एवं रा०से०यो० के सहयोग से हो रहे कार्यों की सराहना की। गांव के प्राइमरी स्कूल के प्रांगण में एक सभा की गयी और डा० विजय शंकर जी ने सभा को संबोधित किया। इस कार्यक्रम के उपरान्त छात्रों ने गांव के अनेक कुओं के चारों ओर सफाई की। हौदियों को भी साफ किया और प्रयोग के योग्य बनाया। गांव में नालियों का भी निर्माण किया गया।

२९-१२-८३ को छात्रों का अधिकांश अवकाश रहा तथा छात्रों ने गांव में जाकर सामाजिक सर्वेक्षण कार्य किया।

३०-१२-८३ को छात्रों ने कुएं के चारों ओर की सफाई तथा अन्य कार्यों को अन्तिम रूप दिया और पूर्ण रूप से कुएं को भी प्रयोग योग्य बना दिया अब उसके ऊपर छत लगना और चबूतरे का पक्का करने का कार्य शेष रह गया है। ३०-१२-८३ को छात्रों ने लगभग २० बुग्गियां पत्थर नदी से ढोये और कुएं के चारों ओर भरे। उक्त तिथि को ही विज्ञान महाविद्यालय के दो प्राध्यापक प्रो० ग्रोवर एवं प्रो० गुलाटी जी भी दिन भर छात्रों के साथ रहें।

३१-१२-८३ को शिविर का अन्तिम दिन था। प्रातः १० बजे से ग्राम कांगडी की पाठशाला के प्रांगण में समापन समारोह प्रारम्भ हुआ। मुख्य अतिथि श्री दर्शनसिंह जी (आई० ए० एस०) बिजनौर के जिलाधीश महोदय थे। सभा का संचालन डा० विजय शंकर जी ने किया। समारोह का शुभारम्भ वैदिक हवन द्वारा हुआ। तत्पश्चात् माल्यार्पण द्वारा जिलाधीश महोदय का स्वागत किया। डा० जोशी ने शिविर में किए गए कार्यों का उल्लेख किया। नजीबाबाद के परगनाधिकारी श्री त्यागी, ग्राम सेवक प्रशिक्षण के प्राचार्य श्री श्रीवास्तव जीं, कुलपति जी, डा० काश्मीरसिंह जी, डा० सेंगर (कुलसचिव जी) ने सभा को सम्बोधित किया। जिलाधिकारी श्री सिंह ने कुलपति जी के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि देश को आज ऐसे ही कर्मठ और अत्यन्त

क्रियाशील बुजुर्गों की आवश्यकता है जिनके नेतृत्व में हम लोग बढ़े। उन्होंने छात्रों से कहा कि वह अपने बुजुर्गों एवं गुरुजनों का सम्मान करें। ग्रामवासियों को उन्होंने सजग होकर सहयोग देने को कहा। उन्होंने वायदा किया है कि वह कुलपति जी के आशीर्वाद को लेकर कांगड़ी ग्राम की हर योजना को अपनी पूरी-२ सहायता देगें। अन्त में डा० काश्मीरसिंह जी ने सभी के प्रति धन्यवाद किया। शान्ति पाठ और जलपान के बाद समारोह समाप्त हुआ। दोपहर का भोजन होते-२ दो बज चुके थे। तब छात्रों ने ट्रेक्टर ट्राली पर वापसी हेतु अपना सामान लादा और मातृ-भूमि कांगड़ी की पुण्य स्थली को नमन कर शिविर समाप्त कर लौट आये।

उपसंहार-

इस सत्र का यह शिविर अत्यन्त सफल रहा। शिविरार्थी छात्रों को राष्ट्र के अनेक उच्चतम एवं सफल प्रशसनिक एवं राजनैतिक व्यक्तियों को निकट से देखने सुनने का अवसर मिला। ग्राम की की समस्याओं को छात्रों ने करीब से समझा और अपने सहयोग से कुएं, चबूतरे, नालियों को अन्तिम रूप दिया। सफाई की गयी। सर्वेक्षण से ग्राम्य समस्याओं और ग्राम कांगड़ी की बढ़ती सम्पन्नता का सबको परिचय दिया। इस सबके प्रेरणा स्रोत निश्चय ही हमारे कुलपति श्री हूजा जी हैं।

आभार-

शिविर में जाना तो प्रोग्राम अधिकारी का कर्त्तव्य ही होता है पर शिविर को सफलता का श्रेय मेरा अपना नहीं अपितु मेरे शिविरार्थियों के उत्साह पूर्ण सहयोग एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय के प्रशासनिक अधिकारियों एवं अनेक सहयोगी प्राध्यापकों को जाता है। मुख्यत: मैं, कुलपति जी को, कुलसचिव जी, वित्ताधिकारी श्री बी० एम० थापर, विज्ञान म० वि० के प्राचार्य श्री सुरेशचन्द्र त्यागी उप-कुलसचिव श्री श्यामनारायणसिंह जी, क्रीड़ाध्यक्ष श्री ओ० पी० मिश्र, वनस्पति विज्ञान के विभागाध्यक्ष डा० विजय शंकर जी, कैप्टन की देशराज जी, डा० काश्मीरसिंह जी, प्रो० ग्रोवर जी, प्रो० गुलाटी जी, प्रो० कौशल कुमार जी एवं श्री करतारसिंह जी को अपने हार्दिक आभार प्रेषित करता हूं। इन सबके अमूल्य सहयोग के बिना मैं सफल न होता। अन्त में अपने प्रोग्राम को ओर्डीनेटर प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा के प्रति स्नेह आभार व्यक्त करता हूं जो हमेशा की तरह बराबर मेरा साथ देते रहे। हमें और हमारे सभी छात्रों एवं रा० से० यो० के शिविर से संबन्धित सभी अधिकारियों को दु:ख है कि उन्हें परिवार के संबन्धी की आकस्मिक निधन का शोक सहन करना पड़ा और फल स्वरूप वह शिविर के अंतिम दिनों में साथ न रह सके। रा० से० यो० के सदस्यों की हार्दिक संवेदना उनके साथ है।

ओ३म्-शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

गतांक से आगे

ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी

डॉ० रामेश्वर दयाल गुप्त

किसी ज्ञान के संचय को ईश्वरीय कहा जा सके उसके लिए उसमें निम्न विशेषताएँ होनी चाहियें—

१– सृष्टि के प्रारम्भ से ही वह ज्ञान होना चाहिये क्योंकि उसकी आवश्यकता हर समय है। मनुष्य जाति उसी से प्रेरणा लेती है।

२– उसमें इतिहास न हो अर्थात किसी काल विशेष के सत्य को ही स्थान नहीं वरन् त्रिकाल व्यापी सत्य का स्थान हो।

३– किसी देश विशेष से लगाव या उसका वर्णन न हो।

४– उनकी भाषा प्राकृत हो बनावटी नहीं।

५– उसमें सच्चा साहित्य हो तथा पूर्ण ज्ञान हो और वह मनुष्य जाति का उन्नायक हो।

६– उसमें पूर्वापर विरोध न हो।

७– उसमें सृष्टिगुण के विरुद्ध असंगतियाँ न हों।

८– उसमें प्रक्षेप न हों।

९– उसमें पुनरुक्ति न हो।

१०– उसकी अन्त: साक्षी हो।

११– आप्त जनों ने उसे ऐसा माना हो।

चूंकि आदि मानव अमैथुनी सृष्टि से बना था उसमें संस्कार (अन्य ज्ञान) नहीं था, उसके पथ प्रदर्शन के लिए वह तभी से होना चाहिए जब से आदि मानव पृथ्वी तल पर अवतरित हुआ हो।

सृष्टि के साथ नियम शास्त्र की आवश्यकता–

जिस प्रकार भूगोल और भूमि का चित्र भूमि के प्रत्येक भाग को समझने के लिए आवश्यक है उसी प्रकार सृष्टि रूपी चित्र के साथ वेद रूपी सृष्टि नियम शास्त्र हैं। जगत् निवासियों के जीवनों को ऊंचा बनाने वाले नियम भी हों जिन से न केवल जगत् की जानकारी हो, अपितु जगत् को अच्छा और शान्तिप्रद बनाने की मर्यादाओं का भी ज्ञान हो।

सम्मति

पुस्तक का नाम :—गोवर्धन ज्योति चतुर्थ रश्मि (दयानन्द का राजनैतिक दर्शन)
प्रस्तुत कर्ता :—श्री बलभद्र कुमार हूजा
प्रकाशक का नाम :—आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, प्रधान आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार। मूल्य—श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय

इस पुस्तिका में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में राज-धर्म के बारे में महर्षि के उपदेश अथवा व्याख्यान को संक्षेप में संकलित किया गया है जिसका श्रेय गुरुकुल काँगड़ी के वर्तमान कुलपति और जयपुर की संस्था संघड़ विद्या सभा के अध्यक्ष श्री बलभद्र कुमार हूजा को है। जैसा कि सब जानते हैं कि राजस्थान की रंगीनी वीरभूमि महर्षि दयानन्द के अन्तिम संघर्षमय जीवन की रंगभूमि रही थी। वो एक देशो राज्य से दूसरे देशो राज्य, एक घराने से दूसरे घराने, एक नगर से दूसरे नगर आते जाते रहे और अपने प्रवचनों तथा व्याख्यानों से उन्होंने सैंकड़ों—हजारों लोगों को अनुगृहीत किया। स्वाभाविक ही था कि राजा-महाराजाओं के सम्पर्क में आने के कारण और उस समय समन्त राजाओं के दरबार में, राजमहल में जो वातावरण उन्होंने देखा उसके बारे में वे अपनी अनुभूतियों को किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही प्रकाश में लाते।

दयानन्द के विचारों के स्रोत तो हमेशा ही रहे हैं इसलिए राज—धर्म की शिक्षा—दीक्षा देने के बारे में भी महर्षि दयानन्द ने वेदों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों की ही शरण ली और वहीं से ही प्रेरणा पाकर उन्होंने अपने उस समय के राजाओं के सामने उपदेश प्रस्तुत किये। इस प्रकार यदि हम देखें तो सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में संकलित वेद—वाणी तथा मनुस्मृति या अन्य ग्रन्थों की रचनाओं के द्वारा हमें प्राचीन युग के शासन की शैलियों, पद्धतियों और विचारधाराओं का परिचय तो मिलता ही है लेकिन साथ ही हमें ये अवसर भी मिलता है कि हम यह जानकारी प्राप्त कर सकें कि अपने जीवन काल में महर्षि दयानन्द ने समकालीन समाज और शासन में क्या कम—जोरियां अथवा विसंगतियां देखीं जिन्हें सुधारने या दूर करने के लिए उन्होंने राजा— महाराजाओं को प्राचीन आर्य युग की परम्पराओं और शिक्षाओं की याद दिलाई।

दयानन्द ने राज—धर्म की व्याख्या करते हुए इस बात पर काफी जोर दिया कि राजा को उस समय की सभा अथवा प्रजा के आधीन रहना चाहिए और सभा और प्रजा की मनोतियों या मान्यताओं की

ओर पूरा ध्यान देना चाहिये। राजा अथवा शासन न्याय का पालन करे, प्रजा का रक्षक हो। धर्म और काम की सिद्धि को बढ़ाये, दुखी और आपत् ग्रस्त पुरुषों की सहायता करे इत्यादि। इन बातों की ओर जब महर्षि दयानन्द ने ध्यान दिलाया तो ऐसा लगता है कि शायद उन्हें अपने समकालीन समाज और शासन प्रणाली में अपने राज अथवा अच्छे शासन के उपरोक्त गुणों की कमियां अखरती थीं। शायद यही उनकी मान्यता भी थी इसलिए उन्होंने प्राचीन वेद ग्रन्थों इत्यादि से ये शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त की और राजा या शासक पक्ष को समझाने को कोशिश की। राजा के मन्त्री कैसे हों, इसके बारे में भी महर्षि ने काफी विस्तार से लिखा और मनु-स्मृति के कुछ अंशों का विश्लेषण किया।

यदि हम महर्षि दयानन्द को केवल एक माध्यम के रूप में लें जिनके द्वारा प्राचीन आर्य काल के शासन के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों की गत शताब्दी के अन्तिम अर्द्ध में पुनरावृत्ति की गयी थी तो शायद हमें इस दिशा में उनको विशेष देन का अच्छा-खासा आभास मिल सकता है। दूसरे शब्दों में यद्यपि दयानन्द सरस्वती न तो राजनीतिज्ञ थे, न राजनीति के शास्त्री; लेकिन उनके मन में नवीन भारत और विशेष रूप से देशी राज्यों के विकास और भविष्य तथा लोक कल्याण पर आधारित शासन पद्धति की जो कुछ कल्पनाएं थीं वो इस समुल्लास में उभरकर सामने आती हैं। अनेक विषयों पर उनके उपदेश और शिक्षाप्रद मत आज भी अनमोल हैं और हमारे आज के शासकों का दिशा बोध करा सकते हैं। परोपकार, प्रजा की सेवा और रक्षा तथा प्रजा के प्रति उत्तरदायी होने के राजकीय कर्त्तव्यों की याद दिलाने के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द को इस बात का भी श्रेय मिलता है कि उन्होंने स्वदेश में "स्वराज्य" और "सुराज्य" दोनों ही के सिद्धान्तों का प्रतिपादन अथवा पुनः स्थापन सबसे पहले किया।

आशा है यह प्रयास जनसाधारण को स्वामी दयानन्द के विचारों से अवगत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देगा। कार्य महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है इस प्रकार की छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से स्वामी जी के विचारों को आज के समाज में प्रचार करने की महती आवश्यकता है।

—भूपेन्द्र हूजा

पुस्तक के सम्बन्ध में

पुस्तक का नाम—वर्ड पर्सपेक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती

लेखक का नाम—डॉ० गंगा राम गर्ग

सप्रेम नमस्ते ।

प्रियवर, डॉ० गंगाराम जी !

आजकल मैं आपकी लिखी पुस्तक Wold Perspectives on Swami Dayananda Saraswati पढ़ रहा हूं। आपने जो अगाध परिश्रम किया है और न जाने कहां-कहां से संग्रह किया है, वह आर्य समाज की ही नहीं, ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध के इतिहास की मूर्त झांकी है। आर्य समाजी अपने व्याख्यानों में जो सुने-सुनाये और रटे-रटाये उद्धरण दिया करते हैं, उन सबकी ही नहीं उससे अधिक की प्रामाणिकता आपके इस ग्रन्थ में मिल जाती है। ऐसा ग्रन्थ तैयार करने में आप सचमुच धन्यवाद के पात्र हैं।

आपका

सत्यव्रत

W–७७ A, ग्रेटर कैलाश (१)

नई दिल्ली—४८

२०–२–१९८४

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम—"वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त"

लेखक का नाम—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

प्रकाशक का नाम—मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

मूल्य —तीन खण्डों में पूरा सेट २४० रु०

वेद भारतीय धर्म एवं संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ हैं। सम्पूर्ण चिन्तन विशेष रुप से 'भारतीय चिन्तन' का आधार वेद ही रहे हैं। ज्ञान के आगार वेदों में मानव के लिए कल्याण प्रदान करने वाले आध्यात्मिक एवं भौतिक तत्त्वों का समावेश भी हुआ है। वस्तुतः वेद मात्र आध्यात्मिक ही संदेश नहीं देते अपितु सामाजिक विज्ञान के भौतिक तत्त्वों की ओर भी संकेत करते हैं। यद्यपि वेदों का विविध दृष्टि कोणों से भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अध्ययन एवं विश्लेषण हुआ है तथा हो रहा है तथापि आज के इस वैज्ञानिक युग में वेदों में सामाजिक विज्ञानों की दृष्टि से भी वेदों के अध्ययन की महती आवश्यकता है। राजनीति इस लोकतांत्रिक युग में मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति वेदों के उद्‌भट विद्वान् एवं मर्मज्ञ आचार्य प्रियव्रत जी ने 'वेदों में वर्णित राजनीतिक सिद्धान्त' नामक इस मौलिक ग्रन्थ का सृजन करके वैदिक अध्ययन की दिशा में एक नयी कड़ी को जोड़ा है। आचार्य जी ने इस ग्रन्थ में वेदों में वर्णित राजनीतिक सिद्धान्तों को मार्मिक एवं मौलिक रूप में पाठकों के सामने रेखा है। प्रयास स्तुत्य एवं अनुकरणीय है।

इस ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है—प्रथम खण्ड–संविधान काण्ड, द्वितीय–अभ्युदय काण्ड, तृतीय–प्रतिरक्षा काण्ड। प्रथम खण्ड ७४४ पृष्ठों में लिखा गया है जिसमें २४ अध्याय हैं। तथा राज्य संस्था का विकास, मातृभूमि की भावना राजा का चुनाव, उसका राज्यकाल, राष्ट्रीयता, स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति मन्त्रिमण्डल, न्याय–विभाग, राज्याभिषेक आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर वेदों के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन किया है। संक्षेप में यह खण्ड मांडलिक राज्यों के निर्माण से लेकर चक्रवर्ती राज्य के निर्माण के विषय में वेद के विचारों का प्रतिपादन करता है। द्वितीय खण्ड लगभग ५०० पृष्ठों में विस्तार को प्राप्त हुआ है। इस खण्ड को २६ अध्यायों में विभक्त करके वेद विषयक कृषि, नहरें, गोपालन, पशुपालन, सड़कें, पुल, व्यापार, उद्योग-धन्धे, शिल्पकला, स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार किया है। संक्षेप में इस खण्ड में प्रजा किस प्रकार

अपने जीवन को सुखी एवं समृद्धिशाली बनाये, इस विषय में वेद के विचारों को प्रतिपादित किया गया है। तृतीय खण्ड २५६ पृष्ठों में लिखा गया है। इस खण्ड में राज्य के महत्त्वपूर्ण अंग रक्षा विभाग–सेनाओं के संगठन, संचालन, शस्त्र-अस्त्र एवं युद्धनीति आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर २४ अध्यायों में वेद प्रतिपादित विचारों को प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य जी का यह प्रयास एक दो वर्ष का नहीं अपितु लगभग ४८ वर्षों के कठिन परिश्रम का फल है। वेदों में स्थान-स्थान पर सूत्र रूप में वर्णित राजनीति–विज्ञान के तत्त्वों का विश्लेषण करके इस मौलिक ग्रन्थ की रचना की गई है। यह ग्रन्थ वेदों के एवं राजनीति के प्रत्येक अध्येता के लिये संग्रहणीय है। कवर पृष्ठ, जिल्द तथा कागज भी अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है।

–राकेश शास्त्री

□

---

७५ वर्ष पूर्व गुरुकुल वृतांत–

स्वामी श्रद्धानन्द जी की लेखनी से

प्रस्तुतकर्ता—जगदीश प्रसाद विद्यालङ्कार

नये ब्रह्मचारियों के चुनाव के लिये निम्नलिखित नियम स्थिर कर दिये गये हैं जिन महाशयों के पास गुरुकुल कार्यालय से पत्र न भी पहुँचे और वे पहिले किसी बालक के प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र भेज चुके हों, तो उनको इन्हीं नियमों के अनुकूल कार्यवाही करनी चाहिये।

१. सब प्रार्थियों को अपने बालकों को साथ लेकर गुरुकुल भूमि में २४ से २७ दिसम्बर तक पहुँच जाना चाहिये। २४ दिसम्बर से प्रथम यहां उनके आराम का कोई प्रबन्ध न होगा और २७ दिसम्बर के पश्चात् आये हुये बालक का चुनाव में सम्मिलित होने का कोई अधिकार ही न होगा।

२. जिन बालकों को किसी शारीरिक तथा मानसिक त्रुटि के कारण अस्वीकार किया जावेगा उनको फिर कोई आशा न रखनी चाहिये, किन्तु जो बालक केवल मुकाबिले में अस्वीकार किये जावेंगे उनके लिये मुलतान के शाखा गुरुकुल में लिये जाने की आशा हो सकती है शाखा गुरुकुल मुलतान का

निर्वाचन मास जनवरी के अंतिम सप्ताह में या उसके लगभग होगा। ३. २८ दिसम्बर से बालकों की परीक्षा निर्वाचन उपसभा आरम्भ करेगी और ३० दिसम्बर तक निर्वाचन समाप्त हो जायेगा। ४. जो बालक प्रवेशार्थ चुने जायेंगे, यदि उनकी पढाई के लिये १५०० नहीं दिया गया, उनके संरक्षकों को ४० रु० पेशगी तथा एक मास का शुल्क ३१ दिसम्बर तक देकर लौटने की आज्ञा होगी ५. जो संरक्षक १५०० रु० देने को उद्यत हों उनको रुपया अपने साथ लाना चाहिये। ६. प्रत्येक संरक्षक को एक दरी, दो श्वेत चादरें तथा ओढने की रजाई अपने बालक के लिये साथ लानी चाहिये अन्य नये वस्त्र सब यहां से दिये जायेगें। वेदारम्भ के समय ओढने-बिछाने के सब वस्त्र भी नए दिये जायेंगे। ७. इस वर्ष सभा ने निश्चय कर दिया है कि ३० से अधिक एक छात्र पन्द्रह सौ रुपये एकदम दाखिल होने पर ही लिये जायेगें आशा है कि सर्व महाशय इन नियमों को ध्यान में रखकर आने का विचार करेंगें।

गुरुकुल का सातवां वार्षिकोत्सव:—फाल्गुन शुक्ला एकादशी अर्थात् २ मार्च सं० १९०९ ई० से आरम्भ होकर ७ मार्च अर्थात् पूर्णिमा तक रहेगा २, ३. ४. मार्च को साहित्य परिषद् का वार्षिकोत्सव होगा जिसके साथ ही सरस्वती सम्मेलन का उत्सव मनाया जावेगा। इस वर्ष दो निबन्ध संस्कृत में तथा एक निबन्ध आर्य भाषा में पढ़े जायेंगे निबन्ध कर्ताओं के नाम तथा विषयों की सूचना भी ज्ञात होने पर पहिले से ही मुद्रित की जायगी। ५-६ मार्च को व्याख्यानादि होंगे और ७ मार्च को वेदारम्भ संस्कार की विधि की जायेगी। गुरुकुल की कार्यकारिणी सभा (पंजाब आर्य प्रतिनिधि की अंतरंग सभा) ने यदि इस वर्ष भी किराये की रियायत लेनी आवश्यक समझी और ले ली तो सर्व साधारण को उस समय समाचार पत्रों द्वारा सूचित किया जायेगा।

साहित्य परिषद् का ऊपर कथन आ चुका है इसलिये यहां यह बतलाने की आवश्यकता है कि इस परिषद् को २५ ज्येष्ठ १९६५ के दिन स्थापन किया गया था। इस का उद्देश्य "ब्रह्मचारियों को विविध विषयों पर निबन्ध लिखना सिखाना उनकी ग्रन्थावलोकन में विशेष प्रवृत्ति कराना। उनकी समालोचना शक्ति को उत्तेजित करना और अन्य विद्वानों के लिखे हुए निबन्धों से ब्रह्मचारियों तथा अन्य सभ्यों को लाभ पहुँचाया जाये" इस परिषद् का साधारण अधिवेशन हर पन्द्रहवें दिन होता है। आरम्भ में एक निबन्ध पढा जाता हैं। निबन्ध आर्य भाषा तथा संस्कृत दो में पढ़े जाते है। निबन्ध पढ़े जाने के पश्चात उस पर वाद-विवाद के अनन्तर निबन्ध लेखक अपना प्रत्युत्तर देता है। अन्त में सभापति के वक्तव्य के साथ सभा समाप्त होती है। अधिवेशन में प्रत्येक महाशय उपस्थित हो सकते हैं, परन्तु परिषद् से सभासद बनने के लिये दो रुपये चन्दा निश्चित हुआ है। अब तक सभा के ३२ सभासद हुये हैं जिन में गुरुकुल के एतद् योग्य ब्रह्मचारी गुरुकुल से कई अध्यापक तथा अधिष्ठाता और कई अन्य बाहर के विद्वान् भी सम्मिलित हैं। अब तक इस परिषद् के अधिवेशनों में कई निबन्ध पढ़े जा चुके हैं। जिनके विषय तथा अध्येता निम्नलिखित हैं।

(सद्धर्म प्रचारक ४ मार्ग शीर्ष सं० १९६५ ता० १८ नवम्बर १९०८)

गुरुकुल-समाचार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव का संक्षिप्त विवरण

यजुर्वेद पारायण यज्ञ

१० अप्रैल १९८४ से यजुर्वेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार रहे। यज्ञ के संचालन का कार्य डॉ० जयदेव वेदालंकार (दर्शन विभाग) ने किया तथा ब्र० पीताम्बर दत्त शर्मा, ब्र० सूर्यप्रकाश पाठक, ब्र० पुण्य प्रसाद और ब्र० गुरु प्रसाद ने वेदपाठ किया।

ध्वजारोहण

१३ अप्रैल १९८४ को वार्षिकोत्सव का मुख्य कार्यक्रम मान्य कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी (अध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब) के ध्वजारोहण से प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर मान्य कुलाधिपति ने सम्बोधित करते हुए कहा कि हमें अपनी संस्कृति और वैदिक परम्परा तथा गुरुकुल के आदर्शों की रक्षा करने का व्रत लेना चाहिए।

वेद सम्मेलन

१३ अप्रैल को मध्याह्न ३-३० बजे डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा–गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) जी की अध्यक्षता में वेदसम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन पूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत 'वेदमार्तण्ड' ने किया। इसमें श्री वीरेन्द्र शास्त्री, डॉ० सत्यव्रत 'राजेश', पं० भगवतदत्त वेदालंकार, डॉ० रामनाथ वेदालंकार, सरदारी लाल वर्मा तथा ब्र० पीताम्बर आदि वक्ताओं ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण दिए। सम्मेलन का संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार ने किया और कहा कि वेद की उदात्त शिक्षाएं ही वर्तमान समय में मानव मात्र की रक्षा कर सकती हैं।

१३ अप्रैल की रात्रि के कार्यक्रम में प्रो० रत्नसिंह ने भारतीय संस्कृति पर सारगर्भित भाषण दिया तथा स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने वेद के अध्ययन पर बल दिया। इसका संयोजन डा० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद विभाग) ने किया।

दीक्षान्त-समारोह

१४ अप्रैल १९८४ को प्रातः १० बजे कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में दीक्षान्त समारोह सम्पन्न हुआ। मान्य कुलपति ने अपने स्वागत भाषण में विश्वविद्यालय की प्रगति से परिचय

कराया तथा नव स्नातकों के लिए आशी: वचन कहे। इसके मुख्य अतिथि स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने नव स्नातकों को सम्बोधित करते हुए अपने दीक्षान्त भाषण में कहा कि आपकी शिक्षा-दीक्षा आर्य जगत् के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा संस्थान में हुई है। इसलिए आप दयानन्द के सपनों को पूरा करें, राष्ट्र-वादी बनें तथा राष्ट्रीय संस्थानों में यशस्वी स्थान प्राप्त करें।

इसके अतिरिक्त स्वामी ओमानन्द सरस्वती, कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, पं० सत्यकाम विद्यालंकार आदि ने नव स्नातकों को आशीर्वाद दिया। इसका सयोजन डा० जबर सिंह सेंगर (कुल सचिव) तथा सह संयोजन डा० श्याम नारायण सिंह (उप कुल सचिव) ने किया।

राष्ट्रीय–सम्मेलन

१४ अप्रैल मध्याह्न ३-३० बजे मान्य कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकता सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन प्रो० रत्नसिंह ने किया इसमें डॉ० रामचन्द्र, हैदराबाद. डॉ० कृष्णदेव नेपाल, डॉ० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद विभाग) तथा ब्र० पीताम्बर शर्मा आदि वक्ताओं ने अपने सारगर्भित भाषण किए।

अपने अध्यक्षीय भाषण में मान्य कुलाधिपति जी ने कहा कि राष्ट्रीय एकता इस समय देश की ज्वलन्त समस्या के रूप में हमारे सामने है। आपने पञ्जाब समस्या का विस्तृत विवरण देते हुए उसके समाधान में अपने अनेक सुझाव दिए और सरकार से मांग की कि पञ्जाब समस्या का तुरन्त समाधान किया जाए अन्यथा यह रोग सभी सीमा प्रान्तों में फैल जाएगा।

सम्मेलन के संयोजक डॉ० जयदेव वेदालंकार ने प्रस्ताव रखा जिसमें सरकार से मांग की गई कि "पञ्जाब में हो रही हिंसा को तुरन्त रोका जाए तथा धार्मिक स्थलों से कातिलों को गिरफ्तार किया जाए।"

अन्त में मान्य कुलपति जी ने अध्यक्ष का धन्यवाद करते हुए कहा कि—'हम आपके आदेश की प्रतीक्षा में रहेंगे कि हम शान्ति सेना लेकर आएं ताकि पञ्जाब में राष्ट्रीय चेतना को उजागर किया जा सके और पञ्जाब की शान्ति स्थापना में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी उचित भूमिका अदा कर सके।'

सांस्कृतिक–सम्मेलन

१४ अप्रैल रात्रि ७-३० बजे गुरुकुल विद्यालय विभाग के छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया और अपने कार्यक्रम से सभी श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया। इसका संयोजन डॉ० दीनानाथ मुख्याध्यापक गुरुकुल विभाग ने किया।

यज्ञ की पूर्णाहुति

१५ अप्रैल प्रातः १० बजे यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार द्वारा सम्पन्न कराई गई तथा महात्मा आर्य भिक्षु और आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति ने आध्यात्मिक प्रवचन दिए।

आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार

हिन्दी जगत् के सुविख्यात लेखक, धर्मयुग तथा नवनीत के पूर्व यशस्वी सम्पादक पं० सत्यकाम विद्यालंकार को उनके वेद विषयक कार्य को देखते हुए संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर की ओर से उक्त पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।

उक्त पुरस्कार आचार्य गोवर्धन जी की जन्मशती के शुभ अवसर पर १९८१ से प्रतिष्ठित किया गया। गत तीन वर्षों में क्रमशः आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (उप-कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय), डॉ० भवानी लाल भारतीय (अध्यक्ष, दयानन्द पीठ पञ्जाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़) तथा पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, देहरादून को इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

८६ वर्षीय पं० सत्यकाम जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित स्नातक हैं तथा गत ४५ वर्षों से साहित्य सेवा में जुटे हैं। आपने सम्पादन के अतिरिक्त ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके वेद का संदेश विदेशों में पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

संघड विद्या सभा ट्रस्ट की स्थापना मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा के पूज्य पिताश्री स्व० श्री गोवर्धन शास्त्री जी ने १९३० में पञ्जाब में की। विभाजन के बाद यह ट्रस्ट जयपुर में कार्य करने लगा। अभी कुछ दिन पूर्व कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने परिश्रम से अर्जित धन में से ५४ हजार रुपये ट्रस्ट को दान दिए। ट्रस्ट ने इस वर्ष ५४००/ रुपये गोवर्धन ज्योति की तृतीय चतुर्थ और पञ्चम रश्मि के प्रकाशन के लिए आर्यसमाज गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को प्रदान किए।

विजिटिंग फैलोज़ का विश्वविद्यालय में आगमन

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अन्तर्गत अन्य विश्वविद्यालयों से दर्शन, हिन्दी तथा मनोविज्ञान विभाग में विजिटिंग फैलो के रूप में विद्वानों का आगमन हुआ। इन्होंने विभिन्न विषयों पर अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिये। जिससे विश्वविद्यालय के छात्रों तथा अध्यापकों को अत्यधिक लाभ हुआ। इन विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं:

(i) दर्शन-विभाग—डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, दर्शन विभाग रांची विश्वविद्यालय, बिहार।

(ii) हिन्दी-विभाग।—डॉ० विश्वनाथ मिश्र, पूर्व प्राचार्य, सनातन धर्म कॉलेज मुज़फ्फरनगर।

(iii) **मनोविज्ञान विभाग**—डॉ० एच० सी० गांगुली, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

मानद-उपाधि

इस वर्ष विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती तथा पं० सत्यकाम विद्यालंकार को "विद्यामार्तण्ड" की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

६ फरवरी, १९८४,—को हिन्दी विभाग के तत्त्वावधान में विजिटिंग फेलो डॉ० विश्वनाथ मिश्र, भू० पू० प्राचार्य सनातन धर्म कालेज मुज़फ्फरनगर का 'साहित्य की अपेक्षा' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। इसका संयोजन डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग ने किया।

११ फरवरी, १९८४,—को विश्वविद्यालय की सिंडीकेट की बैठक आर्य समाज हनुमान रोड, दिल्ली में सम्पन्न हुई।

१७–२० फरवरी, १९८४,—को मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा तथा डॉ० विजय शंकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान ने विज्ञान- भवन में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की 'फर्स्ट कॉनफ्रेंस ऑफ दॉ एशियन फोरम ऑफ पार्लियामेन्ट एटिक्स ऑन पॉपुलेशन एण्ड डवलपमेन्ट' में भाग लिया।

२२ फरवरी, १९८४,—को डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर और अध्यक्ष दर्शन विभाग, रांची वि. वि. बिहार का 'आधुनिक भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषताएँ' विषय पर दर्शन विभाग के तत्त्वावधान में विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। इसका संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार, अध्यक्ष दर्शन विभाग ने किया।

२९ फरवरी, १९८४,—को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय परिसर में 'ऋषिबोधोत्सव का पर्व धूमधाम से मनाया गया। इसमें मुख्य अतिथि पं० सत्यकाम विद्यालंकार रहे। इस अवसर पर विद्यालय के ब्रह्मचारियों ने ऋषि दयानन्द के विषय में अपने संक्षिप्त भाषण दिए तथा डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष इतिहास विभाग, डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष दर्शन विभाग, रांची वि. वि. बिहार, ने स्वामी दयानन्द के जीवन पर प्रकाश डालते हुये उनके द्वारा दिखाये गए मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। अन्त में मुख्य अतिथि पं० सत्यकाम विद्यालंकार तथा कुलपति जी ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि–आज ऋषिके पावन पर्व पर हमें अपने कर्तव्य का बोध होना चाहिए।

८ मार्च, १९८४—को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में वि. वि. के शिक्षक कक्ष में एक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें उन्होंने यू० जी० सी० से आने वाली विजिटिंग कमेटी के विषय में अध्यापकों से विचार विमर्श किया और उनका मार्ग प्रदर्शन किया।

९ मार्च, १९८४—को गुरुकुल कांगड़ी बिश्वविद्यालय द्वारा भेजी गयी छठी पञ्चवर्षीय योजना के सम्बन्ध में निरीक्षण करने तथा विश्वविद्यालय की प्रगति की अन्य सम्भावनाओं का पता लगाने के

लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी का गुरुकुल में आगमन हुआ।

इस समिति के अध्यक्ष प्रो० रमारंजन मुखर्जी, कुलपति वर्द्धमान विश्वविद्यालय (प० बं०) सदस्य प्रो० आर० सी० गौड, इतिहास विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, प्रो० एम० एल० रैना, पंजाब विश्वविद्यालय तथा सचिव श्री बी० आर० क्वाटरा, उप-सचिव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग थे।

इस समिति ने गुरुकुल कांगड़ी के अध्यापकों, कर्मचारियों तथा विद्यार्थियों से उपयुक्त योजनाओं के विषय में बात की। तत्पश्चात् उन्होंने कन्या गुरुकुल देहरादून का भी निरीक्षण किया। उन्होंने कहा कि गुरुकुल अपनी मौलिक परम्पराओं को उजागर करे। गुरुकुल के अध्यापकगण वेदार्थ के लेखन में तथा प्रकाशन में संलग्न रह कर स्वामी श्रद्धानन्द जी के संकल्पों को पूरा करें तथा गुरुकुल के मिशन को अग्रसर करते हुए देश-विदेश में गुरुकुल की कीर्ति फैलाएं।

१५ मार्च, १९८४—को वि० वि० के शिक्षक कक्ष में मनोविज्ञान विभाग के तत्त्वावधान में डॉ० एच० सी० गाँगुली, प्रो० तथा अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली का 'चेतना के परिवर्धित स्तर' विषय पर पं० सत्यकाम विद्यालंकार आचार्य गुरुकुल विभाग की अध्यक्षता में एक विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। इसके संयोजक प्रो० ओमप्रकाश मिश्र, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग रहे।

१६ मार्च, १९८४—प्रातः १० बजे दर्शन विभाग के तत्त्वावधान में डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव प्रो० रांची विश्वविद्यालय का 'पूर्णयोग श्री अरविन्द के संदर्भ में' विषय पर सारगर्भित भाषण हुआ। इसका संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार ने किया।

१९ मार्च, १९८४—अपराह्न ३ बजे संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के सौजन्य से 'मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता' का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् 'महात्मा आर्य भिक्षु' ने की। इसी सभा में 'गोवर्धन ज्योति' पुस्तिका का भी विमोचन किया गया।

प्रतियोगिता में प्रथम स्थान गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा द्वितीय स्थान कन्या गुरुकुल कनखल ने प्राप्त किया। दोनों को चलविजयोपहार तथा विशिष्ट पुरस्कार प्रदान किए गए।

अन्त में विशिष्ट वक्ताओं डॉ० जयदेव वेदालंकार, श्री ईश्वर भारद्वाज तथा डॉ० जबरसिंह सैंगर ने अपने संक्षिप्त भाषण में आचार्य गोवर्धन शास्त्री जी के जीवन से शिक्षा लेने का संकल्प दोहराया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए महात्मा आर्य भिक्षु ने कहा कि आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालकों में गुणों की वृद्धि तथा अवगुणों को दूर करने का तन-मन से प्रयास करें।

२२ मार्च, १९८४—को मनोविज्ञान विभाग के तत्त्वावधान में, मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में डॉ० एच० सी० गांगुली प्रोफेसर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय का 'मानसिक स्वास्थ्य' विषय पर विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। उन्होंने अपने शोधपूर्ण तथ्यों द्वारा मानसिक स्वास्थ्य के कारणों तथा उपायों पर प्रकाश डाला। इसका संयोजन प्रो० ओमप्रकाश मिश्र, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग ने किया।

२३ मार्च, १९८४—को पं० सत्यकाम विद्यालंकार जी की अध्यक्षता में डॉ० विश्वनाथ मिश्र, भू० पू० प्राचार्य सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर का 'महर्षि दयानन्द और हिन्दी साहित्य' विषय पर व्याख्यान हुआ। इसका संयोजन डॉ० बिष्णुदत्त 'राकेश' हिन्दी विभाग ने किया।

२३-२४ मार्च, १९८४—को प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र (उ० प्र० सरकार) गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में जिला स्तर के किसान मेला का आयोजन हुआ। जिसमें डॉ० विजय शंकर, अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान विभाग के निर्देशन में गंगा समन्वित योजना तथा वनस्पति विज्ञान बिभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण विषयों पर एक प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्‌घाटन श्री शैलेन्द्र सागर ने किया। इस प्रदर्शनी को सर्वोत्तम घोषित किया गया। गंगा समन्वित योजना के जूनियर रिसर्च फेलोज तथा अन्य कर्मचारियों ने प्रदर्शनी के आयोजन में सराहनीय कार्य किया।

२४ मार्च, १९८४—को विश्वविद्यालय की कार्य परिषद की बैठक आर्य समाज हनुमान रोड़ दिल्ली सम्पन्न हुई।

१ अप्रैल से ३ अप्रैल, १९८४—को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन स्टेडीज का १८ वाँ वार्षिक सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता डॉ० भूपेन कानूनगो, प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी तथा संयोजन प्रो० सदाशिव भगत, अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग गु० कां० वि० वि० ने किया। प्रसिद्ध मनीषी डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने इसका उद्‌घाटन करते हुए कहा कि पूर्व और पश्चिम सदा जुड़े रहेंगे। मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने स्वागत भाषण में विदेशी विद्वानों को अपने देश में भारत का अध्ययन करने के लिए संगठन बनाने की प्रेरणा दी और कहा कि वे पूर्व और पश्चिम को एक दूसरे के समीप लाने का कार्य करें। इस सम्मेलन में देश विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से लगभग १०० विद्वानों ने भाग लिया।

८ अप्रैल, १९८४—को इतिहास-विभाग में श्री एम० के० नारद की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "प्रतीहार वंश के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन" विषय पर शोध प्रबन्ध लिखा है।

९ अप्रैल १९८४—को डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार की अध्यक्षता में वि० वि० के शिक्षक कक्ष में एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें मान्य कुलपति जी ने सभी अध्यापकों से विश्वविद्यालय की प्रगति के लिए एक जुट होकर उत्साहपूर्वक कार्य करने के लिए कहा तथा सभी विभागाध्यक्षों ने मान्य कुलपति तथा परिद्रष्टा महोदय को अपने-अपने विभाग की प्रगति से अवगत कराया।

१० से १५ अप्रैल १९८४—तक विश्वद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर डॉ० जयदेव वेदालंकार के संयोजन में यजुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन हुआ। इसके ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार अध्यक्ष वेद-विभाग रहे। इसका विस्तृत विवरण दिया जा चुका है।

११ अप्रैल, १९८४—को डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा, अध्यक्ष इतिहास विभाग की अध्यक्षता

में इतिहास विभाग की शोध समिति की बैठक सम्पन्न हुई।

११ अप्रैल, १९८४—को डॉ० एल० पी० पाण्डेय, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ तथा उन्होंने संग्रहालय आदि देखा और गुरुकुल की प्रगति की सराहना की।

१२ अप्रैल, १९८४—को सिंडीकेट की विशेष बैठक विश्वविद्यालय के पुस्तकालय भवन में सम्पन्न हुई।

१२ अप्रैल, १९८४— को इतिहास–विभाग में कु० ऊषा भसीन की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "उत्तर भारत की शासन-संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया था।

१३ अप्रैल- १९८४—को विश्वविद्यालय की सीनेट की शिष्ट–परिषद् की बैठक पुस्तकालय–भवन में सम्पन्न हुई।

१३ अप्रैल, १९८४—को पुरातत्त्व संग्रहालय परिसर में विद्यालय-विभाग द्वारा एक विशेष प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने किया। इस प्रदर्शनी का विशेष आकर्षण पं. सत्यकाम विद्यालंकार, आचार्य गुरुकुल विभाग द्वारा बनाये वैदिक मन्त्रों के भाव–चित्र थे। श्री अग्रवाल (वी० एच० ई० एल०) के सहयोग से संग्रहालय की ओर से सिक्कों का भी विशेष कक्ष लगाया गया।

१३ अप्रैल, १९८४—को डॉ० सिन्हा, कुलपति हिमाचल विश्वविद्यालय तथा डॉ० आराम कुलपति गांधी ग्राम रुरल इंस्टीट्यूट मदुराई का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ।

१४ अप्रैल से १६ अप्रैल १९८०—को डॉ० त्रिलोक चन्द्र, दर्शन विभाग (संयोजक प्रौढ़ शिक्षा) ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा सारनाथ में आयोजित अखिल भारतीय सामुदायिक शिक्षा सम्मेलन में भाग लिया और सामुदायिक शिक्षा पर अपना पत्र पढ़ा। वहाँ उन्हें श्री एम० एल० मेहता उपसचिव ने बताया कि गुरुकुल कांगड़ी को प्रौढ़ शिक्षा के ३० केन्द्र और दिए गये हैं। इस प्रकार गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में अब साठ केन्द्र हो गये हैं।

१६ अप्रैल, १९८४—से विज्ञान महाविद्यालय की परीक्षाएं डॉ० बी० डी० जोशी (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० टी० आर० सेठ एवं श्री एच० सी० ग्रोवर (सहायक परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में शान्त एवं सुव्यवस्थित वातावरण में प्रारम्भ हुईं।

२६ अप्रैल, १९८४—सेकला महाविद्यालय एवं वेद महाविद्यालय की परीक्षाए प्रो० ओ० पी० मिश्र (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, डॉ० जयदेव वेदालंकार तथा काश्मीर सिंह भिण्डर (सहायक परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में विश्वविद्यालय भवन में वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ प्रारम्भ हुईं।

प्रस्तुतकर्ता—राकेश शास्त्री

पुस्तकालय की मेज से—

गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में वर्ष १९८३ में आयी नई पुस्तकें :—

वैदिक साहित्य

१ वीरेन्द्र कुमार वर्मा "ऋग्वेद प्रतिशाख्यम्"— काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
२ दैवरात "वेदार्थ कल्पलता" — " " "
३ रामनाथ दीक्षित "उह गानम् ऊहगानम्" — " " "
४ हरिशंकर जोशी "वैदिक विश्वदर्शन" — " " "
५ वीरेन्द्र कुमार वर्मा "ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्"— " " "
६ सूर्यकान्त "वैदिक कोश" — " " "
७ श्री नारायण शंकरानन्द "उपनिषद् समुच्चय"— " " "
८ डॉ० एस कुजूर "वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी"— वाराणसी वि. वि. प्रकाशन
९ रंगनाथ "उपनिषदों की वाणी"— मीनाक्षी प्रकाशन
१० सत्यप्रकाश शास्त्री "ऋग्वेद संहिता" (अंग्रेजी अनुवाद) वेद प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
११ गया चरण त्रिपाठी "वैदिक देवता उद्भव और विकास" दिल्ली भारतीय विद्या प्रकाशन
१२ बद्रीप्रसाद पंचोली "ऋग्वेद में गोतत्त्व" अजमेर, अर्चना प्रकाशन
१३ दमोदर सातवेलेकर "अथर्ववेद का प्रबोध भाष्य" स्वाध्याय मण्डल
१४ दामोदर सातवलेकर ',ऋग्वेद का सुबोध भाष्य— स्वाध्यायमण्ड़ल, पारडी
१५ दामोदर सातवलेकर "वेद का स्वयं शिक्षक" — " "
१६ दामोदर सातवलेकर "वैदिक व्याख्यान माला" " "
१७ हरिदत्त शास्त्री, कृष्ण कुमार "ऋक् सूक्त संग्रह"— साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ
१८ राजेन्द्र कुमार त्रिवेदी "उपनिषद् कालीन समाज एवं संस्कृति"— दिल्ली, परिमल पब्लिकेशन
१९ शर्मा उमाशंकर 'ऋषि' 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्'— वाराणसी, चौखम्वा भवन
२० आचार्य प्रियव्रत "वैदिक राजनीति में राज्य की भूमिका"— मीनाक्षी प्रकाशन
२१ हेमलता सिंह-"ऋग्वेद के अग्नि सूक्तों की उपमाओं का अध्ययन,,— अनुपम प्रकाशन
२२ योगेन्द्र पुरुषार्थी "वेदों में योग-विद्या,,— यौगिक शोध संस्थान (योगधाम)ज्वालापुर
२३ "सामवेद संहिता"— आर्ष कन्या गुरुकुल, नरेला
२४ डॉ० निगम शर्मा "ऋक्त् सूक्त मंजरी"— बरेली स्टूडेन्ट स्टोर। (क्रमशः)

प्रस्तुतकर्ता—जगदीश विद्यालङ्कार

रजिस्टर्ड सं० एल० १२७७

फार्म ४
(नियम ८ देखिये)

१—प्रकाशन स्थान— गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

२—प्रकाशन अवधि— मासिक

३—मुद्रक का नाम— डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)
क्या भारत का नागरिक है ? भारतीय
(यदि विदेशी है तो मूल देश)
पता—

४—प्रकाशक का नाम— डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)
क्या भारत का नागरिक है ? भारतीय
(यदि विदेशी है तो मूल देश)
पता—

५—सम्पादक का नाम— रामप्रसाद वेदालङ्कार, आचार्य एवं उपकुलपति
क्या भारत का नागरिक है ? भारतीय
(यदि विदेशी है तो मूल देश)
पता— गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

६—उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मैं डॉ० जबरसिंह सेंगर एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

प्रकाशक के हस्ताक्षर

दिनांक..................

डॉ० जबरसिंह सेंगर
(कुलसचिव)

प्रकाशक : कुलसचिव गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
मुद्रक : शर्मा प्रिण्टर्स, ज्वालापुर वार्षिक मूल्य १२ रु० मात्र

गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ : २०४०
मई : १९८४
वर्ष : ३६
अंक : ५
पूर्णांक : ३५६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

सम्पादक-मण्डल

विषय-सूची

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक पत्रिका]

ज्येष्ठ : २०४० | वर्ष : ३६ | अंक : ५
मई : १६८४ | | पूर्णांक: ३५६

श्रुति-सुधा

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ।। साम० ५६९ ।।

अन्वय :—सखायः ! वः मदाय तं पुनानम् अभिगायत् । शिशुं न हव्यैः गूर्तिभिः स्वदयन्त ।

सं० अन्वयार्थ :—हे उपासक मित्रो ! तुम हर्ष आनन्द के लिये उस पवित्र करने वाले प्रभु को गाओ । शिशु के समान तुम हव्यों और स्तुतियों से उसे तृप्त करो ।

अन्वयार्थ :—(सखायः !) हे एक ही राह के राही उपासक मित्रो ! (वः मदाय तं पुनानम् अभिगायत) [illegible] आन्तरिक तृप्ति के लिये उस सब प्रकार से शुद्ध-पवित्र करने वाले प्यारे प्रभु का गुणगान कर[illegible] (शिशुं न) बालक को जैसे पुष्ट मिष्ट सुगन्धित और रोग विनाशक स्वादिष्ट हव्य द्रव्यों से तृ[illegible]ते हैं–प्रसन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब (¹गूर्तिभिः स्वदयन्त) उस प्यारे शान्तस्वरूप प्रभु को अ[illegible]तुतियों से वा साधना के क्षेत्र में किये गये महान् उद्यमों–परिश्रमों से परितृप्त करो । उस की तृ[illegible] फिर तो तुम्हारी तृप्ति ही तृप्ति है ।

उ[illegible]ओं को चाहिये कि वे समान गुण कर्म स्वभाव वालों से मेल करें । अपनी आत्मा को निहाल क[illegible]से–परितृप्त करने के लिये–अनुपम आनन्द की प्राप्ति के लिये वे सदा हृदय मन्दिर को [illegible] करने वाले प्रभु का गुणगान करें । शिशुओं को जैसे हव्य द्रव्य खिलाते हैं और उनके [illegible] उद्यम कर उन्हें प्रसन्न करने का जैसे गृहस्थ लोग प्रयास करते हैं ऐसे ही उपासक हव्य अ[illegible] सुगन्धित और रोगविनाशक द्रव्यों का सेवन कर अपनी स्तुति–प्रार्थनाओं एवं शुभकर[illegible]क्षेत्र में किये गये अपने प्रयासों द्वारा किसी मानव को नहीं वरन् प्रभु को ही रिझा[illegible] ☐

---

१ गु[illegible]मि" उच्चैः स्तुतिभिर्वा ।

महापुरुष–वचनम्

(i) उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ।। (मनु० २-१४५)

दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य का, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता का और सहस्र पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक होता है ।

(ii) न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ।। (मनु० २-१५६)

सिर के बालों के सफेद हो जाने से कोई वृद्ध नहीं हो जाता । युवा होते हुए भी जो विद्वान् है, देवतागण अथवा विद्वान् लोग उसी को वृद्ध समझते हैं ।

(iii) नक्षत्रमति पृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ।। (अर्थ० ९-४)

जो मूर्ख (किसी काम को करने के लिए) नक्षत्र के विषय में अत्यधिक पूछ[illegible]ाछ करता है उसका कार्य उसके हाथ से निकल जाता है । वास्तव में कर्तव्य अर्थ स्वयं अपना नक्ष[illegible]ोता है, उसी को देखना चाहिये । तारे क्या कर सकते हैं ? अर्थात् कुछ नहीं ।

(iv) अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् ।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ।। (वा० रा०, ४-३०-[illegible]

अपने पास आये हुए प्रार्थी लोगों की तथा पूर्व में अपना उपकार करने व[illegible] आशा को, उसकी पूर्ति का वचन देकर, जो मार देता है, वह संसार में सबसे नीच व्यक्ति [illegible]

(v) अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम् ।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्यायैकसेविना ।। (योगवाशिष्ठ [illegible]

सामान्य पुरुष द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि वह युक्तियुक्त बात [illegible] ग्रहण करने योग्य है । इसके विरुद्ध जो शास्त्र है, वह ऋषि–प्रोक्त होने पर भी त्या[illegible]याय्य बात को ही मानना चाहिए ।

महापुरुष–चरितम्

गुरुवर विरजानन्द–

(i) आर्षग्रन्थाध्ययनविलोपो जातो भारतवर्षे सर्वत्रैवानार्षपुस्तकाध्ययने जना निमग्ना:।
दृष्ट्वानिष्ठ खलु परिणामं बद्धपरिकरो धीरो वन्दनीयकमनीयपदोऽसौ, विरजानन्दमहात्मा ॥१८

भारत में आर्षग्रन्थों के अध्ययन का लोप हो गया, सर्वत्र लोग अनार्ष ग्रन्थों के अध्ययन में निमग्न हो गये, इसके अनिष्ट परिणाम को देखकर उसके निवारणार्थ कटिबद्ध धैर्यशाली महात्मा विरजानन्द जी अत्यन्त वन्दनीय है।

महर्षि दयानन्द–

(ii) अधिकतम उदारो धर्मसम्बोधकेषु श्रुतिविहितविचारो लोकसंरक्षकेषु।
विदितनिगमसारो ब्रह्मचार्यग्रगण्यो, जयति स कमनीयो वन्दनीयो महर्षि: ॥ २७ ॥

धर्म का उपदेश करने वालों में जो सबसे अधिक उदार थे, लोक संरक्षकों में जो वैदिक विचारों के प्रचारक थे, ब्रह्मचारियों में अग्रणी वेदसार को जानने वाले उन वन्दनीय महर्षि दयानन्द की जय हो।

स्वामी श्रद्धानन्द–

(iii) येषां जीवितमेव सर्वमभवल्लोकोपकारेऽर्पितं,
दातुं वैदिकशिक्षणं गुरुकुलं, संस्थापितं यैः शुभम्।
अस्पृश्यत्वनिवारणार्थमनिशं, यत्नः कृतो यैः सदा,
श्रद्धानन्दमहोदयान् गुरुवरान् वन्देऽति भक्त्या युतः ॥ ३६ ॥

जिनका समस्त जीवन लोकोपकार के लिये अर्पित था, वैदिक शिक्षा देने के लिये जिन्होंने गुरुकुल स्थापित किया, अस्पृश्यता दूर करने का जिन्होंने दिन-रात प्रबल प्रयत्न किया, ऐसे गुरुवर्य स्वामी श्रद्धानन्द जी को अतिभक्ति से मैं नमस्कार करता हूँ।

(महापुरुषकीर्तनम्—पं० धर्मदेव)

□ □ □

वित्तेनैव न कौलिन्यम्

–श्री वेदप्रकाश शास्त्री
संस्कृत-विभाग गु० कां० वि० वि०

नाना-प्रपञ्च-पुष्कले, बहुविधमानवमण्डलमण्डिते, विशाले संसारे समये समये मानवा आयान्ति यान्ति च। मननशीला हि मनुष्यः सर्वं कर्मजातं स्वधिया परधिया वा विचार्य सम्पादयति। सर्वेषां जनानां स्वाभाविकः सुखाभिलाषः। अतएव प्रतिक्षणं सुखं यथाकामं कामयन्ते नराः। सुखोपकरणानि बहुविधानि सन्ति परं जनैस्तु सुखोपकरणशिरोमणित्वेन वित्तस्यैव वन्दनं विहितम्। अद्यतनीयाः सर्वेऽपि नरा यदि क्वचिद् गच्छन्ति तर्हि धनार्थमेव। यदि किमपि लिखन्ति बदन्ति वा सर्वं धनमभिलक्ष्यैव। सर्वेषामपि मनुष्याणां जीवनं धनावृतमेव। केनचिद् विदुषा "अर्थकारी विद्या" इत्युदीर्य विद्याया विद्यात्वं धनापेक्षयैव साधितं न तु तन्निरपेक्षया। मानवानां सर्वविधाभ्युदयार्थं प्रभुप्रदत्तेषु वेदेषु धनस्य महीयान् महिमा वर्णितः परं तत्र धनं केवलं साधनमेवास्ति न तु साध्यम्। अद्यत्वे जनानां जीवने केवलं धनस्यैव कथा कथ्यते, तस्यैव कथा श्रूयते, तत्परम्पराप्रसृतिरेव प्रसूयते। अतएव सर्वेषां गीर्वाणवाक्-कोविदानां परं परिचितः कश्चिद् विद्वान् "यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः" इत्युदीर्य साटोपं वित्तवैशिष्ट्यं समुदाहरत। परं मन्ये उक्तिरियं कस्यचिद् लौकिकाभ्युदयाञ्चितचित्तस्य, याथार्थ्यजगतो विदूरङ्गतस्य, अपर्यालोचितशास्त्रस्य, अज्ञानवृत्तिविधूतेन्द्रियस्य मूढाधिपस्य चास्ति। यो निकृष्टेन, मिथ्यासंसारप्रोद्भूतेन, सकलकलमषकारकेण, बन्धुताया अपहारकेण, प्रेमभाववारकेण, सदाचारसज्जसज्जनविगर्हिकेन वित्तेन युक्तं नरं कुलीनं मत्वा कामपि अक्षेमकरीं परिपाटीं प्रचारयन् अखिलमपि जगदतिसंधत्ते। केवलं वित्तेश्वर एव कुलीनो भवति वागियं महतीं विडम्बनामावहति। संसारेऽस्मिन् यैर्गुणैर्भूषितः पुरुषः कुलीनो भवति तेषु गुणेषु वित्तस्य क्वचिद् गणनापि न कृता। देवकल्पा ऋषयो मुनयश्च मानवजीवनमुन्नेतुं काले-काले मधुराणि सारगर्भाणि सरसानि गद्यपद्यमयानि गीतान्युज्जगुः। परं न तैः क्वचिदपि वित्तप्रशंसनं कृतम्। श्वेताश्वतरोपनिषदि गुणाष्टकप्रसङ्गे अष्टावात्मगुणाः परिगणिताः तत्र क्षान्तिर्दयानसूया शौचमनायसमाङ्गल्यमकार्पण्यमस्पृहाख्येषु च गुणेषु वित्तस्य नास्ति गन्धोऽपि किमुत महत्त्वम्। वित्तार्जनार्पितजीवनानां वित्ताधिपानां जीवनवृत्तं सर्वविदितमेव। प्रतिदिनं वयं धनिकानां कुकृत्यानि विलोकयामः, समाचारपत्रेषु पठामः परस्परमालोचयामश्च। प्रायशः संसारे सर्वत्रैव विलोक्यते यदेको मानवः सुतरां नास्ति धनिको नापि च तदन्तिके मुद्रायोगः परं तथाप्यसौ निर्मुद्रः सन्नपि सज्जनः स्वजीवने चरित्रशुद्धिमातनोति, उदात्तभावानभिरक्षति, प्रेमलतामभिसिञ्चति, सौमनस्यमादधाति, अन्योन्यं संगठनग्रन्थिं दृढयति च।

परं यो हि वित्तमधिगत्य धनाधिपसंज्ञावेद्यो भवति स तु धनमदिरां पायं पायं उन्मत्तः सन् दुष्टो वारण इव बान्धववृक्षानुत्पाट्य प्रक्षिपति, राहुरिव चरित्रचन्द्रं ग्रसति, सर्प इव दुग्ध दातृन् दशति, सिंह इव औदार्यमृगं परिभूय पीडयति, श्वा इव जघन्यकर्मनग्नः साधून् द्वेषयति, उलूक इव असत्कर्मतमसि दूरं विलोकयति, तस्कर इव स्वापरजनानां धनमपहरति, पिशाच इव क्रूरक्रियाखड्गेन दीनानाथानां सुखामिषं समाच्छिद्य साट्टहास हसननुदिनमत्ति च। अहो, यस्य पुरुषस्य विषये महतां हृदये भावनेयमा- विर्भवति यदसौ मनुष्यः संसारे देवकल्पः, ऋषितुल्यः, भगवद्भक्तः, योगिसमः, मुनिरूपो वा भूत्वा स्वात्मवैशिष्ट्यमाप्नुयात् स एव पुरुष क्षणनश्वरं वित्त प्राप्य महतां तपस्विनां, धर्मविदां, यशस्विनां, वेदविदाञ्च विनिन्द्यो भवति। तथापि यदि केषाञ्चित् मतमिदं प्रस्फुटति यत् सकलदोषयोनिं धनमवाप्य पुमान् प्रशस्यो भवति तर्हि मानवजालैर्मनस्वितायाश्चेतोऽधिकं किन्नाम् दुर्भगत्वम्। मानवानामभ्युदयार्थं विरचितेषु वेदेषु, उपनिषत्सु ब्राह्मणग्रन्थेषु, स्मृतिशास्त्रेषु, धर्मशास्त्रेषु, पुराणादिग्रन्थेषु च क्वचिदपि धनस्य नैतावन्माहात्म्यं स्वीकृतं येन जनाः पूज्याः सभजनीया वा स्युः। सत्साहित्ये सर्वत्र धर्मधनानां, कर्मकाण्डपराणां, सत्यान्वेषणक्षपितक्षणानां, नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित्तोपासनादिकर्मनिरतचित्तानां, वेदानुद्धर्तुं मापीतकालकूटानां, परोपकारव्यापृतानां च पुरुषाणां समचनं दृश्यते न तु कथञ्चित् कदाचित् कुतश्चित्कतिपयार्जितवित्तकणानां, पापिष्टजनोचिताचाराणां धनिकानाम्। अत एव महाभारते द्वैपायनो हस्तमुद्यम्य चत्वरमञ्चमार्गस्थान् सर्वान् मानवानुद्बोधयन् प्राह।

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नैव कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किन्न सेव्यते॥

एतेनैव प्रतीयते यद् जीवनतत्त्वविदा महर्षिणा व्यासेन मूलभूततत्त्वरूपेण धर्म एव प्रख्यापितो नार्थः। याज्ञवल्क्यं याज्ञिकं को न वेत्ति येन धनलोलुपा, सांसारिकसुखविमुग्धहृदया कात्यायनी नामधेया पत्नी तपस्तप्तुं स्वसार्धं न नीता, अपितु परित्यक्तधना, प्रभूतदाक्षिण्या, भक्तिरस सरस सहृदया मैत्रेयी स्वहृदयेप्रतिष्ठापदवीमारोपिता। अद्यत्वेऽपि कोऽपि जनो न केवलेन वित्तेन पूज्योऽपितु गुणगणेन कुलीनो भवति गणनीयो मान्यश्च भवति।

महाकविना बाणभट्टेन कादम्बर्याख्ये गद्यग्रन्थे चन्द्रापीडस्य राज्याभिषेकावसरे शुकनासमुखेन लक्ष्म्या विषये योऽनुपम उपदेशः प्रदत्तः स सर्वेषां संस्कृतज्ञानां केवलं नापितु साहित्याधिगमाहित- रुचीनां सर्वेषामेव सुविदितः तस्योपदेशस्य कतिपयानि सुतरां रम्याणि पदजातानि प्रस्तूयन्ते :— "इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पल-वन-विभ्रमभ्रमरीलक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्

इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम् इत्यैतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वेवोद्गता। इयं लक्ष्मीः पालितापि प्रपलायते, न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, नापि च कुलक्रममनुवर्तते।" एवं प्रकारेण बाणेन लक्ष्म्या सर्वोऽपि दोषनिचयः समुद्घाटितस्तथा पुरुषाणां कृते कोऽपि जीवनोल्लासकर उपदेशो दत्तः।

मुद्राराक्षसाभिधे नाटके महाकविना विशाखदत्तेनैकमेव पद्यमुपन्यस्य इयं लक्ष्मीरित्थं गर्हिता :—

तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न संतिष्ठते,
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्त विद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्त भीरुनहो,
श्रीर्लब्ध प्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम्॥

एवं सुपर्यालोचितशास्त्राणां, तत्त्वविदां महतां विदुषां प्रकाशकरं वाक्यजातं स्मारं स्मारं लौकिकैः सर्वैरेव जनैः स्वजीवन यात्रा विधेया नान्यथा।

□□□

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रञ्जयति॥ (नीतिशतक)

अज्ञानी को सरलता से सन्तुष्ट किया जा सकता है। विशेषज्ञ को और भी अधिक सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है; किन्तु जो ज्ञान के अंशमात्र को प्राप्त करके अपने को पण्डित समझता है, ऐसे मनुष्य का सन्तोष या रंजन तो ब्रह्मा भी नहीं कर सकता।

ऋग्वेद में 'हिन' निपात

--डॉ० राकेश शास्त्री

ऋग्वेद में 'हिन' निपात का प्रयोग 'निश्चय' अर्थ में हुआ है। सम्पूर्ण ऋग्वेद में इस निपात की एक बार आवृत्ति हुई है।1 वहां यह निपात अन्तोदात्त स्वर से युक्त प्रयुक्त हुआ है।2 मन्त्र के प्रथम चरण में प्रयुक्त इस निपात का सर्वनाम 'सः' के तुरन्त पश्चात् प्रयोग मिलता है।3 संहितोत्तरकालीन ऋग्वैदिकसाहित्य ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों में इस निपात का अभाव ही है।4 लौकिक संस्कृत साहित्य में भी इसका प्रयोग नहीं मिलता। अधिकांश लौकिक संस्कृत कोशों में भी इसका उल्लेख नहीं किया गया है।5 मोनियर विलियम्स ने इस निपात का 'फॉर और 'बीकॉज' अर्थ किया है तथा उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के प्रस्तुत स्थल का ही निर्देश किया है।6

अब देखना यह है कि ऋग्वेद में एक बार प्रयुक्त इस निपात की वस्तुतः क्या स्थिति है एवं यह निपात वहां वस्तुतः किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि जिस मन्त्र में यह निपात प्रयुक्त हुआ है उसकी व्याख्या में ऋग्वेद के सभी भाष्यकार एक मत नहीं हैं।

'हिन' की निपात रुप में स्थिति--

'हिन' निपात के सम्बन्ध में प्रथम तो यह विचारणीय है कि इसकी स्वतन्त्र निपात के रूप में क्या स्थिति है, क्योंकि आचार्य सायण के मत में यह दो निपातों 'हि' एवं 'न' का समुदाय है।7 परन्तु विचार करने पर आचार्य सायण का यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि हम इस निपात को 'हि' तथा 'न' निपातों का समुदाय मानते हैं तो शङ्का होती है कि मन्त्र की व्याख्या में 'न' निपात को किस अर्थ में प्रयुक्त माना जाए। 'न' निपात ऋग्वेद में लगभग दो सहस्र बार प्रयुक्त हुआ है,8 साथ ही इस निपात के विविध अर्थ हैं,9 तथापि यह निपात अन्य अर्थों की अपेक्षा 'उपमा' एवं 'निषेध' अर्थों में

---

१ ऋ०-६-४८-२। २ ऋग्वेद संहिता, मोक्षमूलर, चौखम्बा प्रकाशन, १९६५, भाग १।
३ ऋ० ६-४८-२ : उर्जः नपात सः हिन............ ।
४ वैदिक-पदानुक्रम-कोश-सम्पादक विश्वबन्धु।
५ अमरकोश, शब्दकल्पद्रुम, शब्दस्तोम महानिधि, वाचस्पत्यम्, हलायुध कोश, युगल कोश, वैजयन्ती कोश, मेदिनी कोश में इस निपात का उल्लेख नहीं किया गया है।
६ मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंग्लिश-डिक्सनरी, १९७६।
७ सा. भा., ऋ० ६-४८-२ : 'हिन' इति निपातद्वयसमुदायः............ ।
८ विश्वबन्धुः वैदिक पदानुक्रम कोश।
९ 'उपमा' 'निषेध', 'समुच्चय', 'अपि' एवं 'एव' अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

अधिक प्रयुक्त हुआ है। किन्तु प्रस्तुत स्थल पर 'न' के किसी भी अर्थ का औचित्य संगत प्रतीत नहीं होता। अतः यहां 'हिन' निपात को दो निपातों 'हि' तथा 'न' का समुदाय न मानकर एक निपात के रूप में स्वीकार करना ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

स्कन्दस्वामी के मत में भी प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात एक उदात्त स्वरयुक्त होने के कारण दो निपातों का समुदाय न होकर एक निपात ही है।[1] वस्तुतः स्कन्द स्वामी द्वारा इस निपात को एक निपात मानना ही समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि ऋग्वेद में 'हि' निपात का छः सौ बासठ बार प्रयोग हुआ है[2] एवं सर्वत्र यह निपात उदात्त स्वरयुक्त ही प्रयुक्त हुआ है।[3] जबकि 'हिन' निपात अन्तोदात्त स्वरयुक्त है। यदि यह निपात दो निपातों का समुदाय होता तो एक उदात्त स्वर से युक्त प्रयुक्त न होता क्योंकि 'हि' और 'न' दोनों ही उदात्त स्वर वाले निपात हैं।

इसके अतिरिक्त वेंकट माधव ने भी इस निपात को एक निपात मानकर ही मन्त्र की व्याख्या की है।[4] स्वामी दयानन्द सरस्वती भी इसे एक निपात ही स्वीकार करते हैं।[5] मोनियर विलियम्स के मत में भी यह एक ही निपात है। यद्यपि उन्होंने इसका 'फॉर' एवं 'बिकॉज़' अर्थ किया है तथापि एक निपात होने के विषय में उनकी सम्मति में कुछ भी संदेह नहीं है[6], क्योंकि उन्होंने 'हिन' निपात का विवरण देते हुए उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के प्रस्तुत स्थल को ही उद्धृत किया है।[7]

अतः हमारी सम्मति में आचार्य सायण द्वारा प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात को दो निपातों 'हि' तथा 'न' का समुदाय मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उक्त विवेचन के आधार पर प्रस्तुत मन्त्र में एक निपात के रूप में इसकी स्थिति स्पष्ट है। अतः 'हि न' को स्वतन्त्र निपात ही मानना चाहिए।

'हिन' निपात का 'निश्चय' अर्थ में प्रयोग—

'हिन' की स्वतन्त्र निपात के रूप में स्थिति स्पष्ट करने के पश्चात् ऋग्वेद के प्रस्तुत स्थल पर यह निपात किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यह विचारणीय है। ऋग्वेद का यह विवेच्य स्थल छठे मण्डल का है—

---

१ स्क. भा, ऋ० ६-४८-२: एकोदात्तत्वात् एक निपातोऽयम्।
२ ऋग्वेद संहिता-(सूची खण्ड) पंचमो भागः, वै. रि. इन्सटो. पूना, शक १८६८। ३ वही।
४ व. भा., ऋ० ६-४८-२ : हिनेति इति निपातो हि पर्यायः।
५ द. भा. वही: पदार्थः—(हिन) खलु।
६ मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंग्लिश डिक्सनरी, १९५६, पृ. १२९७। ७ वही।

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्ययुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनां ॥ (ऋ० ६-४८-२)

प्रस्तुत मन्त्र में 'हिन' निपात का प्रथम चरण में प्रयोग हुआ है। मन्त्र में इन्द्र की स्तुति की गयी है। आचार्य सायण ने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए 'हिन' को 'हि' तथा 'न' निपातों का समुदाय मानकर 'हि' अर्थ वाला स्वीकार किया है।[1] किन्तु स्कन्दस्वामी ने प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात को 'यस्मात्' अर्थ वाला माना है। उनकी व्याख्या में इसे 'हि' का समानार्थक स्वीकार किया गया है।[2] 'हि' निपात की व्याख्या करते हुए सायण ने अधिकांश स्थलों पर उसका यस्मादर्थं ही किया है।[3] ग्रिफिथ भी प्रस्तुत स्थल पर उसे हेत्वर्थक स्वीकार करते हैं।[4] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसका 'खलु' अर्थ किया है।[5] उनकी व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक संगत प्रतीत होती है। वेंकटमाधव भी इस निपात को 'हि' का पर्याय मानते हुए 'खलु' अर्थ करते हैं।[6] क्योंकि मन्त्र में अग्नि देवता से देवताओं के लिये हवि ले जाने की कामना की गयी है।[7] इसलिये मन्त्रार्थ में निश्चयात्मकता की प्रतीति ही उचित प्रतीत होती है।

अत: मन्त्रार्थ के औचित्य की दृष्टि से प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात का 'निश्चय' अर्थ ही समीचीन प्रतीत होता है।

उक्त विवेचन से एक तथ्य सामने आता है कि ऋग्वेद में 'हिन' निपात की स्वतन्त्र निपात के रूप में स्थिति मिलती है तथा उस स्थल पर यह 'निश्चय' अर्थ का द्योतक है, क्योंकि उसका भाष्यकारों की सम्मति में प्रकरण के आधार पर 'खलु' अर्थ ही युक्तियुक्त सिद्ध होता है।

अत: 'हिन' निपात को निश्चयार्थक निपातों की श्रेणी में रखने में तनिक भी अनौचित्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि 'हि' निपात की गणना निश्चयार्थक निपातों में सर्वसम्मत है और 'हिन' को ग्रिफिथ एवं स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त प्रायः सभी भाष्यकार 'हि' का पर्याय स्वीकार करते हैं। □

---

१ सा० भा०, ऋग्वेद ६-४८-२ : ऊर्जः अन्नस्य बलस्य वा नपातं पुत्रं प्रशंसिषमित्यनुषङ्गात् हिन इति निपातद्वयसमुदायो हीत्यस्यार्थे।
२ स्क० भा०, वही : एक निपातोऽयम् हिशब्देन समानार्थः यस्मादर्थे वर्तते।
३ लेखककृत शोध प्रबन्ध, ऋग्वेद के निपात (निश्चयार्थक) : एक अध्ययन।
४ ग्रि० भाष्य, ऋ० ६-४८-२ : The Son of Strength; for is he not our gracious Lord ?
५ दया० भा०, वही: ऊर्जः (पराक्रमस्य) नपातं (अपातयिता) सः हिन (खलु) अयम् अस्मयुः (अस्मान् कामयमानः) दाशेम (दद्याम)
६ वें० भा०, वही: हिनेति इति निपातो हि पर्यायः ऊर्जः पुत्रं प्राशंसिषम्। सः अयम् खलु अस्मत्कामः। तस्मै देवानां हविषां दात्रे हविः दाशेम। ७ वही।

गतांक से आगे–

आचारशास्त्र : एक तुलनात्मक अध्ययन

–डॉ० जयदेव वेदालंकार
अध्यक्ष, दर्शन विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्रथम–ब्रह्मचर्याश्रम–इस आश्रम के अपने धर्म हैं, अथवा कर्तव्य हैं। इस आश्रम में ब्रह्मचारी को गुरुओं की आज्ञापालन और विद्योपार्जन करना होता है। महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचर्याश्रम के कर्तव्यों का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में इस प्रकार किया है। जैसे विद्वान् सारथी घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा, खोटे कामों में खींचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें।1

जीवात्मा इन्द्रियों के बस में होके बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है इसमें कोई संशय नहीं है। जब इन्द्रियों को वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है2।

विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वे वैरबुद्धि छोड़कर सब मनुष्यों को कल्याण मार्ग का उपदेश करें और उपदेश में सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोलें। जो धर्म की उन्नति चाहें वह सदा सत्य का उपदेश करें। जिस मनुष्य के वाणी तथा मन सदा शुद्ध तथा सुरक्षित रहते हैं वही सब वेदान्त अर्थात् सब वेदों के सिद्धान्त रूप फल को प्राप्त होता है।3 (सत्यार्थ० ३ समु०)

इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी के लिए महर्षि दयानन्द ने उसके नैतिक नियमों का उल्लेख किया है।

दूसरा आश्रम–गृहस्थाश्रम है। गृहस्थाश्रम में मनुष्य विवाह करा के प्रतिदिन पंच महायज्ञों का पालन करता है। गृहस्थ पुरुष शेष तीनों आश्रमों का पालन पोषण करता है। इसलिए गृहस्थाश्रम और भी उत्तरदायित्व पूर्ण आश्रम है।

महर्षि दयानन्द का कथन है कि गृहस्थ रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे आवश्यक कार्य कर धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करें। कभी भी अधर्म का आचरण न करें।4

गृहस्थ को चाहिए कि अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और गोत्र के तथा अन्य भद्र पुरुष वा जो वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर स्थान आदि देकर अच्छे प्रकार

---

१ इन्द्रियाणाँ विचरताँ विषयेष्वपहारिषु। संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।। मनु० २.८८ ॥
२ इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयं, सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ।।
३ अहिंस्यैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनं, वाक् चैव मधुराश्लक्षणा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।
यस्य वाङ्मनसो शुद्धे सम्यक् गुप्ते च सर्वदा, स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ।। मनु० २.१५६
४ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत। कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वदेत्तत्वार्थमेव च। मनु० ४ ९२ ॥

अर्थात् जिस जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और स्वस्थ रहे उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करना श्रद्धा और तर्पन कहाता है (सत्यार्थ प्रकाश ४ समु०)। इसी प्रकार गृहस्थ अपने कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ अपने विकास और राष्ट्र की उन्नति में सदा लगा रहे।

तीसरा आश्रम—वानप्रस्थाश्रम है। इस आश्रम में मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि गृहस्थाश्रम को पूर्ण करके शहर से बाहर अथवा एकान्त स्थान में जाकर तपस्या आदि का आचरण करता हुआ जिस विद्या की न्यूनता गृहस्थ में रहते हुए हो गई थी उसको पुनः प्राप्त करके पढ़ने-पढ़ाने का कार्य करें।

चौथा आश्रम—सन्यास आश्रम है। इस आश्रम में संसार के सभी राग द्वेषों से ऊपर जाकर तत्त्व-ज्ञान को प्राप्त करके निष्पक्ष भाव से सर्वत्र सत्य का उपदेश करें। महर्षि दयानन्द ने पंचम समुल्लास में लिखा है कि सन्यासी, बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोक कर उनको ज्ञान और आत्मा में लगावें उस ज्ञान स्वात्मा को परमात्मा में लगावें और उस विज्ञान को शान्त स्वरूप आत्मा में स्थिर करें। (पंचम समुल्लास)। सब भूतों में इन्द्रियों के विषयों का त्याग वेदोक्त कर्म और अत्युग्रतपश्चरण से इस संसार में मोक्ष पद को पूर्वोक्त सन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं, अन्य नहीं। (सत्यार्थ प्रकाश पंचम समुल्लास)।

यह समाज का प्रथम सामाजिक विभाजन है। दूसरा इस प्रकार है समाज के चार वर्ग किये गये हैं १. ब्राह्मण, २. क्षत्रिय, ३. वैश्य, ४. शूद्र।

महर्षि दयानन्द इन चारों वर्णों को जन्म से न मानकर कर्म से मानते हैं। उनका कथन है कि जन्म से सब शूद्र हैं उनका वर्ण निर्वाचन कर्म से होता है [1]। इनमें ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है अध्ययन अध्यापन, यज्ञ करना तथा कराना, दान लेना एवं देना[2]। मन से बुरे कर्मों की कभी भी इच्छा न करें, और कभी भी अधर्म में प्रवृत्त न होवें। इन्द्रियों को विषयों से रोकें और जितेन्द्रिय होकर सदैव धर्म का अनुष्ठान करें। ये भी ब्राह्मण के कर्तव्य हैं।[3]

क्षत्रियों के कर्त्तव्य इस प्रकार हैं। जनता की रक्षा करना, परन्तु दुष्टों को दण्ड देना। दान देना परन्तु सुपात्रों को और वेदादि शास्त्रों को अध्ययन करना। विषयों में कभी भी आसक्त न होना ये क्षत्रियों के कर्त्तव्य हैं।[4]

वैश्यों के कर्त्तव्य—पशुओं का पालन एवं संवर्धन करना, विद्या आदि की वृद्धि के लिये दान

---

१ जन्मना जायते शूद्रः, कर्मणा द्विज उच्यते।
२ अध्ययनं अध्यापनं यजनं याजनं तथा दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मणानामकल्पयत् ॥
३ शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।
४ प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥

देना, और सत्य शास्त्रों का पढ़ना सब प्रकार के व्यापार करना, अनधिकार ब्याज न लेना और कृषि करना बतलाये गये हैं ।[1]

शूद्रों के कर्तव्य इस प्रकार हैं—अभिमान आदि दोषों को छोड़ कर शेष तीनों वर्णों की सेवा करना ।

ये चारों वर्णों के संक्षेप में कर्तव्य हैं। ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हो उस-उस वर्ण का अधिकार देना ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोष–युक्त होगें तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल–चलन और विद्या–युक्त न होगें तो हमें शूद्र होना पड़ेगा, और नीच वर्णों का उत्तम वर्णस्थ होने के लिये उत्साह बढ़ेगा।" (सत्यार्थ० ४ समु०)

महर्षि के उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि चारों वर्ण अपने-अपने स्थानों पर श्रेष्ठ हैं हां, शूद्र के विषय में उन के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि शूद्र उसी को कहेंगे जो विद्या आदि को प्रयास करने पर भी प्राप्त न कर सकें। अर्थात् जो केवल सेवा आदि ही कर सकें। यह किसी जाति विशेष का नाम नहीं है, अपितु जो इस योग्य होगा वह शूद्र कहलायेगा चाहे वह ब्राह्मण की ही सन्तान क्यों न हो।

अत: भारतीय मनीषियों ने समाज का वर्गीकरण इस प्रकार किया है कि सभी व्यक्तियों को उन्नति करने का अवसर प्राप्त हो। महर्षि दयानन्द का कहना है कि समाज का वातावरण इस प्रकार का हो कि हम सदैव सत्य का आचरण कर सकें इसलिये आर्यसमाज के छठे नियम में उन्होंने कहा है कि **सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये**। जब इस प्रकार का वातावरण बन जावेगा तो मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा। इस के लिये उन के अनुसार वेद में बतलाया मार्ग अपनाना पड़ेगा क्योंकि मनुष्य का ज्ञान संशयात्मक हो सकता है परन्तु वेद का ज्ञान निर्भ्रान्त है। वेद में सामाजिक संगठन के लिये बहुत सुन्दर उपदेश है–हे मनुष्यों! साथ मिलकर चलो, सम्यक् प्रकार से बोलो और अपने मन को समान बनाओ।[2] इसी प्रकार कहा है–संसार में जो कुछ भी है, उसमें परमात्मा व्याप्त है। यह संसार जो भोगस्वरूप प्राप्त हुआ है इसका उपयोग त्यागपूर्वक करो, लोभ मत करो। यह धन किसी

१ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।

२ संगच्छध्वं संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्वेद १०.१०९)

का भी नहीं हुआ और न होगा ।[1] बस्तुतः यह वेद का मार्ग सर्वोत्तम सुनहरी मार्ग है ।

व्यक्तिगत कर्त्तव्य यह है कि हम स्वच्छ रहें, जो पुरुषार्थ के पश्चात् प्राप्त हो उसमें सन्तुष्ट रहें। सुख दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करें, ईश्वर को सर्वव्यापक जानते हुए उस का स्मरण करें[2] आदि नियम कहलाते हैं। ये व्यक्तिगत धर्म हैं इस का पालन करना चाहिये।

महर्षि जी के नीति सम्बन्धी विचारों का विवेचन करने से हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि मनुष्य एक इकाई है, वह नैतिक सिद्धान्तों का प्रारम्भ है अर्थात् समाज के लिये व्यक्ति और व्यक्ति के लिये समाज है। जबकि हेगल कहता है समाज के लिये व्यक्ति है। परन्तु ऋषि जी के विचारानुसार दोनों में किसी एक का महत्त्व न्यून नहीं समझा जा सकता है। काण्ट का जो यह कहना है शुभ ऐसा हो जो अपने में शुभ हो अर्थात् संक्षेप शुभ, शुभ नहीं है। परन्तु वह शुभ क्या-क्या हो ? इस को काण्ट गिना नहीं पाये। अतएव ऋषि जी का नीति शास्त्र व्यावहारिक है। उसे व्यवहार के धरातल की कसौटी पर कस कर देखा जा सकता है। वे कहते हैं कि दुष्टता को सहन करने वाला दुष्ट मनुष्य से भी बुरा है। अहिंसा कहां पर हिंसा, और हिंसा कहां पर अहिसा बन जाती है इस का सुन्दर विवेचन ऋषि जी ने सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास के राजनीति प्रकरण में किया है जबकि काण्ट इस से भिन्न मानता है।

ऋषि दयानन्द जहां यह बतलाते हैं कि इन नैतिक सिद्धान्तों का उपयोग हमें बुद्धिमानी से करना होगा वहां वे यह भी नहीं मानते है कि आचार अपने-अपने देश की मान्यता है, क्योंकि अहिंसा आदि शाश्वत नियमों को स्वीकार करते हैं। पूर्व अफ्रीका के किसी स्थान पर चतुर चोरों को पारितोषिक दिया जाता है। अतः उनका यही नैतिक सिद्धान्त हुआ। उत्तर–नैतिक सिद्धान्तों को परिवर्तनशील नहीं माना जा सकता है। चोरी करना सब स्थानों पर बुरा है। नैतिकता के कुछ शाश्वत सिद्धान्तों को सार्वभौम मानना ही होगा। हां यदि कभी आपत्ति काल में किसी राष्ट्र के रक्षक राष्ट्र की रक्षा के लिये ऐसा करते हैं तो ये एक अपवाद माना जा सकता है, क्योंकि उन की भावना नैतिक है। अपने स्वार्थ के लिये चोरी आदि कभी भी, कहीं भी नैतिक नहीं है।

□

---

१ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेनभुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।। यजु० ४०-१।

२ शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।। (योग०, सत्यार्थ तृ० समु०)

स्वामी दयानन्द के विवाह विषयक विचार

—रवीन्द्र कुमार, रिसर्चस्कॉलर

भारतीय दर्शन के महान् आधुनिक चिन्तक तथा समाज सुधारक स्वामी दयानन्द 'सरस्वती' ने अल्प आयु में मानव विवाह को एक राष्ट्रीय क्षति के रूप में स्वीकार करने के उपरान्त उन्होंने इसको पूर्णतया समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया है। चिरकाल से व्याप्त इस सामाजिक बुराई की जो अज्ञानता पूर्ण स्थिति की द्योतक है तथा भावी पीढी के लिए एक अभिशाप है, को इस राष्ट्र के प्रति चिन्तित व्यक्तित्व ने मानवता हेतु अभिशाप की संज्ञा दी है।

शताब्दियों पूर्व यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने जनसंख्या की वृद्धि तथा अज्ञानता की स्थिति में विवाह के प्रति मानव विश्व को सचेत किया था।[1] परन्तु प्लेटों का दृष्टिकोण अति अव्यवहारिक तथा संकुचित था जिस कारण वह कार्यान्वित नहीं हो सका तथा उसमें जो अच्छाई भी थी, वह भी आलोचना की शिकार हो गई। महर्षि दयानन्द ने इसी दृष्टिकोण को प्रदान कर मानव विश्व को देन के रूप में प्रदान किया तथा इसकी मुख्य विशेषतायें ये हैं—

१—श्रेष्ठ व्यवहारिकता-युक्त २—आधुनिकता से युक्त तथा ३—वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त

यदि एक सौ वर्ष पूर्व भी महर्षि के गम्भीर संकेत को पूर्णता से ग्रहण कर लिया जाता तो कम से कम भारत की जनसंख्या विषयक दयनीय दशा आज नहीं होती, क्योंकि बाल विवाह की इस कुरीति ने जनसंख्या वृद्धि में उच्च भूमिका निर्वाह की है।

बाल विवाह निषेध चिन्तन, महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदत्त वह अमूल्य देन है जो उसको एक समाज-वैज्ञानिक ठहराती है। उनके द्वारा इस संदर्भ में दिया गया प्रत्येक तथ्य अटल सत्य पर आधारित तथा वैज्ञानिक है। जितना महत्त्व इसके लिये उनके विचारों का तब था, उससे भी अधिक आज है क्योंकि यह समस्या विभिन्न रूपों में आज भी विद्यमान है। न केवल भारतवर्ष ही अपितु समस्त विश्व के लिये उनके विचार इस हेतु महत्त्वपूर्ण भी हैं।

बाल-विवाह : एक सामाजिक कुरीति—

भारत में बाल विवाह एक सामाजिक कुरीति है जो विभिन्न रूपों में विद्यमान रही है तथा यह हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि इस कुप्रथा को दर्शन या धर्मग्रन्थों से त्रुटिपूर्ण रूप में जोड़ने का

१ राजनीति दर्शन का इतिहास : जार्ज एच० सेबाइन, पृष्ठ ५५/५६।

प्रयास किया गया। शास्त्रों के ठेकेदारों द्वारा इस सम्बन्ध में अपूर्ण व असत्य अर्थ निकाल कर यह प्रमाणित करने का प्रयास जारी रहा कि छोटी आयु में विवाह शास्त्र-सम्मत है। महर्षि दयानन्द ने इस त्रुटिपूर्ण व पाखण्ड पूर्ण अर्थों को ललकारा तथा उचित व सत्य व्याख्याएं करके जनमानस को सचेत किया।

"पाराशरी" व "शीघ्रबोध" में उल्लिखित इस तथ्य को कि ८ वर्ष में ही कन्या का विवाह कर देना चाहिये क्योंकि इसके उपरान्त "रजस्वला कन्या" को देखकर माता पिता व उसका बड़ा भाई नरक के भागी होते हैं[1] को महर्षि ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि इस सन्दर्भ में हमें सत्य शास्त्रों को स्वीकार करना चाहिये तथा मिथ्यापूर्ण शास्त्रों को त्याग कर देना चाहिये। "मनुस्मृति" का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि उसमें लिखा है—

"त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥[2]

अर्थात्—"कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे" तो जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तीन वर्षों में ३६ बार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।[3]

महर्षि दयानन्द ने विवाह के इस प्रसंग में भेदों में लिखित यथ्यों को पूर्णता से ग्रहण करने का आह्वान भी किया। समाज में फैली इस कुरीति तथा उस पर त्रुटिपूर्ण ढंग से मिथ्या शास्त्रों के उदाहरणों का खण्डन कर महर्षि ने विवाह विषयक बैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। १६ बर्ष से कम आयु की कन्या तथा २५ वर्ष से कम आयु के वर विवाह को महर्षि ने आज्ञा प्रदान नहीं की। कन्या का विवाह १६ बर्ष से लेकर २५ वें वर्ष तक तथा वर का २५ वर्ष से ४८ वर्ष तक उचित ठहराते हैं।

बाल-विवाह के घातक परिणाम—

अपरिपक्वता की उस स्थिति, जिसने एक रोग के रूप में जन्म लेकर समाज को क्षतिग्रस्त व रोगी बना दिया, को महर्षि ने एक योग चिकित्सक के रूप में पकड़ा। उसके विभिन्न परिणामों से अवगत होकर पश्चात् चिन्तन करने की अचूक ओषधी प्रदान की। मुख्य रूप से महर्षि ने जो घातक परिणाम इस हेतु प्रदर्शित किये वे निम्नलिखित हैं—

---

१ "सत्यार्थ प्रकाश," चतुर्थ समुल्लास—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, प्रथम संस्करण—२०३८, पृ० ५५।
२ वही पृ० ५७। ३ वही।

अपरिपक्वता की स्थिति–

जिससे शारीरिक व मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं हो पाती है। ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थिति शारीरिक क्षमता को सुदृढ़ करने एवम् विद्याध्ययन द्वारा मानसिक परिपक्वता की होती है। अतः इस अवस्था में विवाह अत्यन्त ही हानिकारक है। यह प्रश्न भी देश के भाग्य से जुड़ा है कि वह पीढी जो कि देश की भावी कर्णधार है मानसिक व शारीरिक स्थिति से दुर्बल होने पर देश को कैसे श्रेष्ठ नेतृत्व दे सकेगी ? अतः उनका कथन अटल सत्य है कि—

जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण रहित, बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्यां के ग्रहण पूर्वक विवाह के सुधार से ही सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है।[1]

जीवन साथियों में एक दूसरे के प्रति समझ, अल्पायु विवाह में संभव नहीं–

चूंकि अल्पावस्था के विवाहों में, संरक्षकों की प्रधानता होती है अतः अज्ञानतावश वर तथा वधू एक दूसरे के विचारों को जान नहीं पाते, परिणाम स्वरूप कालान्तर में मानसिक असन्तुलन, विचार भिन्नता उत्पन्न होती है। गृह-क्लेश बढ़ता है जो कि समाज तथा देश दोनों के लिये अत्यन्त हानिकारक है। पूर्वकाल से ही इस बात की चेतावनी मनु जी द्वारा भी दी गई—

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यार्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥[2]

चाहे कन्या ऋतुवाली होकर मरने तक घर में बैठी रहे परन्तु गुणहीन के लिये इसका कभी दान न करें।[3]

जन्मने वाली पीढ़ी के लिये अत्यन्त हानिकारक–

बाल्यावस्था में विवाह का यह भी एक महत्त्वपूर्ण परिणाम है कि जन्म लेने वाली पीढी शारीरिक एवम् मानसिक दोनों रूपों में शक्तिहीन होती है। महर्षि का कथन अटल सत्य है कि वर

---

१ सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, चतुर्थ समुल्लास–पृ० ५५ ।
२ मनुस्मृति–पृष्ठ ३७५ ।
३ सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ ८ ।

की दुर्बल इन्द्रियां तथा वधू का अविकसित गर्भाशय पूर्ण शिशु निर्माण करने में सक्षम नहीं होते। साथ ही अल्पायु में यौन सम्बन्धों को स्थापित करने में दोनों वर-वधू सक्षम नहीं होते। यह प्रसूति विज्ञान का भी कहना है यदि अल्पायु में सन्तानोत्पत्ति होती भी है तो निःसन्देह शिशु शारीरिक रूप से तथा मानसिक रूप से दुर्बल होंगे। विभिन्न रूपों में दुर्बलताओं का प्रभाव बुरे रूप से जीवन पर पड़ता है।[1]

इस प्रकार उपरोक्त कारण जो कि बाल विवाह के परिणाम स्वरूप सम्मुख आते हैं तथा जिनका प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्र पर पड़ता है जिनके प्रति महर्षि ने वैज्ञानिक रूप से सचेत किया है। महर्षि ने एक शताब्दी पूर्व इस दोषपूर्ण कुरीति से अलग हटने का आह्वान किया था। एक शताब्दी में टुकडे करने पर २५ वर्षों के चार बराबर भाग होंगे तथा सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थस का यह नियम है कि "यदि परिस्थितियां अनुकूल रहें तो २५ वर्षों में जनसख्या दो गुणी हो जाती है अविकसित मस्तिष्क व अल्पायु विवाह के कारण जनसंख्या में वृद्धि बड़े पैमाने पर हुई जिससे सभी परिचित हैं। इस कुप्रथा का यदि तभी पूर्ण निषेध हो गया होता तो जनसंख्या की गम्भीर समस्या इस रूप में न दीखती।

हमें आज भी समाज के उस क्रान्तिकारी वैज्ञानिक की इस बात पर पूर्णता से देखकर इस कुप्रथा को समाप्त करने की नितान्त आवश्यकता है। यदि जीवन को सुखी, समाज को श्रेष्ठ तथा राष्ट्र को उन्नतिशील बनाना है तो उस महर्षि के मार्ग को अपनाना ही होगा तथा मानवता को कुप्रथाओं से पृथक् करना ही होगा।

□

---

१ ऊन षोडश वर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्। यद्याधते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थ : स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः। तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

सुश्रुत–धनवन्तरि।

स्फोटवाद

—डॉ विजयपालशास्त्री
प्रवक्ता—दर्शन-विभाग

स्फोटवाद वैयाकरणों का प्रधान सिद्धांत है किन्तु पातञ्जल योगसूत्र में भी स्फोटवाद का सिद्धान्त छिपा हुआ है। महर्षि पतञ्जलि ने योग शास्त्र का अनुशासन करते हुए तृतीय पाद में संयम जन्य सिद्धियों के प्रकरण में इस सिद्धान्त की ओर संकेत किया है। "शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभाग संयमात् सर्वभूतरुत ज्ञानम्"1 इस सूत्र में निगूढ स्फोटवाद के सिद्धान्त को भाष्यकार व्यासदेव ने प्रकाशित किया तथा आचार्य विज्ञानभिक्षु, वाचस्पतिमिश्र, हरिहरानन्द-आरण्यक और नागेश भट्ट आदि व्याख्याकारों ने सरलीकरण की प्रक्रिया द्वारा उसे सुवेद्य बनाया।

योग सम्मत स्फोटवाद के विवेचन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि इस सिद्धान्त की उत्पत्ति में क्या हेतु है ? किन-किन दार्शनिकों ने इसे मान्यता दी है और कौन-कौन इसके विरोधी हैं ?

स्फोट की आवश्यकता—

अपना अभिप्राय दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाषा या बोली ही एक माध्यम है और भाषा के द्वारा ही एक प्राणी दूसरे का तात्पर्य स्वयं समझता है। किन्तु प्रश्न यह है कि किसी पद या वाक्य का अर्थ सभी व्यक्ति एकसा क्यों ग्रहण करते हैं? स्थूल रूप से इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि श्रवण से गृहीत होने वाले शब्दों में किसी अर्थ-विशेष को बतलाने का सामर्थ्य अवश्य रहता है जिससे सभी व्यक्ति उच्चरित पद का एक सा अर्थ ग्रहण करते हैं। दर्शन की भाषा में इसका उत्तर इस प्रकार है—घट पट आदि पद वर्ण रूप हैं। अनेक वर्णों के संयोग से एक पद बनता है और उस पद से अर्थज्ञान होता है। उत्पन्न होकर नष्ट होना वर्णों का स्वभाव है, अर्थात पहले क्षण में वर्ण उत्पन्न होता है, दूसरे क्षण में स्थिति धारण करता है और तृतीय क्षण में नष्ट हो जाता है। अनेक वर्णों का एक साथ उच्चरित होना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वर्ण पृथक् पृथक् समय में उच्चरित होता है। जैसे गो शब्द के ग् वर्ण के उच्चारण के समय 'ओ' और विसर्ग की उत्पत्ति नहीं होती तथा विसर्ग के उच्चारण काल में ग' वर्ण नहीं रहता है। इस प्रकार जब उत्पत्ति विनाशशील वर्णों का सहभाव ही नहीं बनता तब वे भिन्न-भिन्न क्षणवर्ती वर्ण संयोग के अभाव में पद का निर्माण किस प्रकार कर सकते हैं जिससे अर्थ ज्ञान हो सके ? प्रत्येक असंयुक्त वर्ण में अर्थ-प्रत्यायन की शक्ति स्वीकार नहीं की गई है। अतः भिन्न-भिन्न काल में उच्चरित वर्णों से विशेष प्रक्रिया द्वारा होने वाले अर्थ बोध के लिए स्फोट सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

1. योग सूत्र ३/१७

वैयाकरणों का कथन है कि वाणी से घ्, अ, ट्, अ—वर्णात्मक तथाकथितप पद एक विशेष क्रम से उत्पन्न होकर श्रोत्रेन्द्रिय से गृहीत होता है। अर्थात् उक्त वर्णों के उत्पन्न होने पर तत् तत् वर्ण विषयक एक श्रावण-प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है। तदनन्तर तत् तत् श्रावण प्रत्यक्ष से तत् तत् वर्ण विषयक एक-एक संस्कार बनता है। उस उस संस्कार के साथ अन्तिम वर्ण के प्रत्यक्ष से अखण्ड घटात्मक पद स्फोट की अभिव्यक्ति होती है। उस अभिव्यक्त पदस्फोट से घट पदार्थ की स्मृति होती है। इसी प्रकार वाक्यार्थ बोध के लिए वाक्य स्फोट स्वीकार किया गया है।

वैयाकरणों ने स्फोट शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से स्वीकार की है। १—स्फुटति=व्यक्तो भवति अर्थोऽस्मादिति स्फोटः— अर्थात् जिससे अर्थ स्फुटित हो वह स्फोट है। वर्णों से स्फोटात्मक पद की अभिव्यक्ति होती है इसलिए वैयाकरणों ने स्फोट की दूसरी व्युत्पत्ति यह की है-२-स्फुट्यते=अभिव्यज्यते वर्णैरिति स्फोटः=अर्थात् जो वर्णों से स्फुटित होता है वह स्फोट कहलाता है। इन दोनों व्युत्पत्तियों के आधार पर स्फोट का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—"वर्णाभिव्यङ्ग्यत्वे सति अर्थ-प्रतीति-जनकत्वं स्फोटत्वम्" अर्थात् जो वर्णों से अभिव्यक्त होकर अर्थ प्रतीति का जनक हो उसे स्फोट कहते हैं।

वैयाकरणों के मत में शब्द ब्रह्मरूप है.[1] अतः स्फोट ब्रह्मतत्त्व का दूसरा नाम है। लौकिक वर्णात्मक शब्द के लिए स्फोट शब्द का व्यवहार वे उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार लोक में चित्र को देख कर 'यह मनुष्य है' यह व्यवहार प्रचलित है।

वैयाकरणों के अनुसार शब्द चार प्रकार के हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। इन चारों शब्दों में परा वाक् आत्मस्वरूप है। परा वाक् अत्यन्त सूक्ष्म है अतः सर्वजनवेद्य नहीं। इसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। निर्विकल्पक समाधि में स्थित योगी ही इसका साक्षात्कार कर सकते हैं। परा वाणी जब पश्यन्ती अवस्था को प्राप्त होती है तब भी वह साधारण पुरुषों के व्यवहार योग्य नहीं होती। वह भी योगियों के द्वारा ही वेद्य है। परा और पश्यन्ती में शब्द और अर्थ इतने मिले होते हैं कि उनमें थोडा सा भी पृथक्ता का बोध नहीं होता। जब वाणी मध्यमा अवस्था को प्राप्त होती है तभी शब्द और अर्थ में पार्थक्य का बोध होता है यद्यपि मध्यमा में शब्द और अर्थ में तादात्म्य रहता है फिर भी सर्वसाधारण को उनका पृथक् पृथक् बोध होने लगता है। किन्तु मध्यमा वाणी का स्वयं अनुभव किया जा सकता है, उसको दूसरे लोग सुन नहीं सकते। इसलिये उसे सूक्ष्म कहा गया है। इस प्रकार परा, पश्यन्ती, मध्यमा ये तीनों वाणी क्रम से सूक्ष्मतम, सूक्ष्मतर और सूक्ष्म कही गयी हैं। इसके पश्चात वैखरी वाणी ही वक्ता के मुख से उच्चरित होकर श्रोत्रेन्द्रिय का विषय

१—अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम्।
निवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ।। वाक्य पदीय १/१

बनती है। किन्तु इतने पर भी अर्थ बोध नहीं होता। जब वैखरी वाणी से हृदय देश में स्थित वाणी में संक्षोभ उत्पन्न होता है तब मध्यमा में अवस्थित अर्थवाचक स्फोट की अभिव्यक्ति होती है तभी अर्थ बोध होता है। भर्तृहरि ने मध्यमा में ही अर्थबोधकता मानी है।

वैखर्या हि कृतो नादः परश्रवणगोचरः।
मध्यमया कृतो नादः स्फोटव्यञ्जक उच्यते ॥

साँख्य, मीमांसा, वेदान्त और न्याय के दार्शनिक स्फोट को मान्यता नहीं देते। उनके मतानुसार वर्णों में ही वाचकत्व शक्ति है। अर्थ-ज्ञान के लिए स्वीकृत स्फोटवाद में गौरवदोष की उद्भावना कर ये लोग उसे अनावश्यक मानते हैं।

योगाभिमत स्फोटवाद का प्रतिपादन

योग के व्याख्याकारों ने शब्द को वाचक सिद्ध करने के लिए उसका तीन प्रकार से विभाजन किया है। आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार शब्द तीन प्रकार का होता है—वर्णभिन्न, वर्णात्मक और स्फोटात्मक। शंखादि अथवा वागिन्द्रिय के साथ जब उदान वायु का अभिघात होता है तब ध्वनि की उत्पत्ति होती है। वीची-तरंग न्याय से वह ध्वनि दूसरी ध्वनि को उत्पन्न करता है। इस परम्परा से ध्वनि श्रोत्र देश से सम्बद्ध होता है। श्रोत्र देश से सम्बद्ध उक्त ध्वनि का परिणाम विशेष नाद कहलाता है। वीची तरंग न्याय से उक्त ध्वनि का परिणाम विशेष नाद प्रथम क्षण में अस्पष्ट होने के कारण वर्णभिन्न कहलाता है। इसी प्रकार वागिन्द्रिय के साथ उदानवायु के अभिघाताख्य संयोग के आधार पर उक्त वीची-तरंग न्याय से ध्वनि का परिणाम विशेष नाद द्वितीय क्षण में स्पष्ट होकर वर्ण कहलाता है। अर्थात् उक्त प्रकार से नाद ही वर्णभिन्न शब्द है और नाद ही वर्णात्मक शब्द है। तीसरे प्रकार का शब्द स्फोटात्मक होता है।

वर्णभिन्न और वर्णात्मक दोनों प्रकार के शब्द वाचक नहीं होते। क्योंकि वाचक होने के लिए वर्णों की सहस्थिति या एकत्रीभाव अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु आशु विनाशशील वर्णों का सहावस्थान किसी प्रकार सम्भव नहीं। यथा गौः शब्द के अन्तिम वर्ण विसर्जनीय के उत्पत्ति काल में गकार नष्ट हो जाता है। इस प्रकार गकार के साथ विसर्गो की स्थिति नहीं हो सकती। अतः जिस प्रकार वर्ण भिन्न शब्द वाचक नहीं है उसी प्रकार सहभाव के अभाव में वर्णात्मक शब्द भी वाचक नहीं हो सकता।

(क्रमशः)

□

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का स्थान

—आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
उपकुलपति गु० कां० वि० वि०

वैदिक साहित्य में चार मूल संहिताओं एवं तत्सम्बन्धी साहित्य का ग्रहण किया जाता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—१ संहिता भाग २—ब्राह्मण भाग ३—आरण्यक तथा उपनिषद् भाग ४—सूत्र भाग। मूल संहिताएं चार हैं जो ऋग्, यजु, साम, तथा अथर्व नाम से विख्यात हैं। इनमें से प्रत्येक की कई-कई शाखाएं भी है। ब्राह्मण भाग में वेद की कर्म-काण्ड परक व्याख्या है। नाना प्रकार के यज्ञ-भागों के विधि विधानों का यहां उल्लेख मिलता है। कुछ रहस्यात्मक कर्मकाण्ड की भी चर्चा उपलब्ध होती है। आरण्यक तथा उपनिषद् भाग कहीं-कहीं तो ब्राह्मण ग्रन्थों का अंश हैं और कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप से निबद्ध हैं। जैसे बृहदारण्यकोपनिषद् शतपथ ब्राह्मण का अंश है जबकि ऐतरेयारण्यक और ऐतरेयोपनिषद्, ऐतरेय ब्राह्मण से स्वतन्त्र हैं। आरण्यकों में वानप्रस्थ मुनियों के आध्यात्मिक चिन्तन एवं दार्शनिक विचारों का संग्रह हैं। इनमें यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन किया गया है। अरण्य में या एकान्तवास में इनका स्वाध्याय, मनन, चिन्तन एवं निदिध्यासन आदि करने के कारण इनका नाम आरण्यक पड़ा। उपनिषद् रोचक शैली से ब्रह्मविद्या का उपदेश करती हैं। चौथे सूत्र भाग का यद्यपि वेदांगों में कल्प शीर्षक के अन्तर्गत परिगणन किया गया है तो भी इसका स्वतन्त्र महत्त्व होने से यहां पृथक् ग्रहण किया गया है।

सूत्र ग्रन्थों में तीन प्रकार के सूत्रों का समावेश होता है, श्रौत-सूत्र, गृह्य-सूत्र तथा धर्म-सूत्र। श्रौत-सूत्रों में कुछ दिन मास या वर्ष अनवरत चलने वाले महासत्रों की विधि का उल्लेख हुआ है, जिनमें अनेक अग्नियों तथा अनेक ऋत्विक् आदि का विधान होता था। गृह्य-सूत्रों में साधारण गृहस्थ के दैनिक यज्ञों तथा षोडश संस्कारों से सम्बद्ध निर्देश सङ्कलित हैं। धर्मसूत्रों में प्रमुख वर्णाश्रम धर्म एवं राजधर्मों का वर्णन है।

इस समग्र वैदिक साहित्य में उपनिषदों का प्रमुख स्थान है। यद्यपि आध्यात्मिक चिन्तन उपनिषत् काल के पूर्व वैदिक काल में भी विद्यमान था तथापि जितना और जैसा स्पष्ट चिन्तन और विवे-चन उपनिषदों में पाया जाता है उतना एवं वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उपनिषद् ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य भौतिक जगत् से परे उसके मूल सूत्र ब्रह्म और आत्मा तथा मूल प्रकृति का निरूपण करना है। वेद की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य एवं अभिप्राय उपनिषदों में उपलब्ध होने के कारण वैदिक साहित्य में इन का विशेष स्थान है। ब्राह्मण ग्रन्थों का कर्मकाण्ड भी वस्तुतः उपनिषदों के अध्यात्म ज्ञान की ही

तैयारी है। जीवन के परमोद्देश्य के प्रति अग्रसर करने में और उस पथ में आती हुई नाना प्रकार की बाधाओं का समाधान करने में जैसी सफलता उपनिषदों को मिली है कदाचित् ही इन आध्यात्मिक ग्रन्थियों के उद्घाटन में अन्य किसी साहित्य को मिली हो। उपनिषदें अपने अध्येता के चित्त पर एक अमिट छाप छोड़ जाती हैं। ये दिव्य आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं जो अपनी समुन्नत विचार-धारा, उदात्त-चिन्तन और अध्यात्मिक जगत् की रहस्यमयी अभिव्यक्तियों से देश-बिदेश के सभी व्यक्तियों को समान रुप से अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।

डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार—"उपनिषदों ने उन प्रश्नों को लिया है। जो मनुष्य के मन में उस समय उठते हैं जब वह गम्भीरता से चिन्तन करने लगता है और वे उनके ऐसे उत्तर देती हैं जिन्हें हमारा मन आज भी स्वीकार करना चाहता है।.........जो भिन्नता दिखाई देती है बह केवल उनके प्रति हमारी पहुँच की और उन पर दिये जाने वाले जोर की ओर है।

उपनिषदों को जो भी मूल संस्कृत में पढता है, वह मानव आत्मा और परम सत्य के गुह्य और पवित्र सम्बन्धों को उजागर करने वाले उनके बहुत से उद्गारों के उत्कर्ष, काव्य और प्रबल सम्मोहन से मुग्ध हो जाता है और उसमें बहने लगता है। हम जब उन्हें पढ़ते हैं तो इन चरम प्रश्नों से जूझने वाले व्यक्तियों के मन की क्षमता, तत्परता और परिपक्वता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। इन समस्याओं को सुलझाने वाली आत्माओं का सभ्यता के सर्वोच्च आदर्शों से आज भी तात्त्विक तालमेल है और सदा रहेगा।

उपनिषदें अपनी स्थापनाओं को आध्यात्मिक अनुभूति पर आधारित करती हैं, इसलिये वे हमारे लिये अमूल्य हैं। उनके अध्ययन से धर्म उन मूल तत्त्वों को, जिनके बिना धर्म का कोई अर्थ नहीं रहता, सत्य के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने में सहायता मिलती है।"1

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के अनुसार —"प्राचीन भारत के नभोमण्डल में जाज्वल्यमान तारकावली में उपनिषद् वे सितारे हैं जिनका प्रकाश जीवन-यात्रा की घटाटोप अन्धकारपूर्ण रात्रि में हजारों सालों से बटोही का मार्ग-प्रदर्शन करता रहा है।"2

उपनिशदों का अध्यातमवादी दृष्टिकोण जहां हमें परम सत्य का साक्षात्कार कराकर आनन्द विभोर कर निःश्रेयस् तक पहुँचाने का साधन है वहां वह हमें संसार में अभ्युदय से भी वञ्चित नहीं

१ दॉ प्रिंसिपल्स उपनिषदाज, अनु० रमानाथ शास्त्री, भूमिका पृ० ७।
२ एकादशोपनिषद् – भूमिका – पृष्ठ ६।

रखता।[1] जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस् की सिद्धि हो वही धर्म है और यही वेदों का लक्ष्य है। जहां वेद प्रतिपादित धर्म का लक्ष्य अभ्युदय एवं निःश्रेयस् है वहां निःश्रेयस् ही मुख्य है। वैसे ही उपनिषद् का मुख्य उद्देश्य निःश्रेयस् होते हुए मानव को सांसारिक दृष्टि से ऊँचा उठाना भी है। तो फिर उपनिषदों का वैदिक साहित्य में विशेष स्थान स्वाभाविक ही है। उस उपनिषद् साहित्य की अपनी विशेषता यह है कि इतने गूढ़तम रहस्य को इतने सुगम एवं रुचिकर प्रकार से उदाहरणों द्वारा ऐसा बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है कि अध्येता को हृदयंगम करने में कठिनाई नहीं होती।

उपनिषदों के वैदिक साहित्य में स्थान के विषय में हम संक्षेप में यदि कहना चाहे तो कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य से इस अध्यात्मवादी दृष्टिकोण को निकाल देने पर उसका मूल्य उतना ही रह जायेगा जितना धान में से चावल निकाल देने पर तुस का रह जाता है। अतः यह ज्ञान हमारे संस्कृति रूपी शरीर की रीड की हड्डी है।

वाचस्पति गैरोला लिखते हैं—भारतीय विचारधारा में उपनिषदों के द्वारा एक नए युग का सूत्रपात हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर उपनिषद् ग्रन्थों तक सम्पूर्ण वाङ्मय मन्त्र संहिताओं का ही व्याख्यान रूप है फिर भी उनकी व्याख्या पद्धति कुछ भिन्न है। उदाहरण के लिये एक ही स्रोत से उत्पन्न ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों की विचारधारा में पर्याप्त असमानता है। कुछ दृष्टियों से यदि उपनिषदों को ब्राह्मण ग्रन्थों का आलोचना-ग्रन्थ कहा जाय तो अनुचित न होगा। उपनिषदों में वैदिक कवियों के तत्त्वान्वेषी विचारों का दर्शन होता है। वेदों में कर्म और ज्ञान दोनों धाराओं का समन्वय है। वेदों की कर्म-भावना को लेकर ब्राह्मणों की रचना हुई और ज्ञान-भाव को लेकर उपनिषदों की। उपनिषदों से चिन्तन एवं अन्वेषण के नये युग का सूत्रपात हुआ है। धर्म की व्यापक एवं उदात्त भावना संहिताओं में देखने को मिलती है। कर्मकाण्ड प्रधान ब्राह्मण ग्रन्थों ने धर्म के स्थूल रूप का प्रतिपादन किया। इसके विपरीत ज्ञान-काण्ड प्रधान उपनिषदों में धर्म के सूक्ष्म रूप का निरूपण किया गया।

यद्यपि संहिताएं ही उपनिषदों का स्रोत रही हैं, फिर भी जीवन की शाश्वत मान्यताओं के प्रति दोनों में भिन्न-२ रूप से विचार किया गया है। इस प्रकार उपनिषदों का वैदिक मान्यताओं को अपने अध्येता के हृदयों में बिठा सकने में अधिक सफल रहने के कारण वैदिक साहित्य में विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व है।

□

---

१ यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक १-१-३।
२ वैदिक साहित्य और संस्कृति – पृ० ११४।

प्राचीन भारत में वर्ण-व्यवस्था का फौजदारी कानून पर प्रभाव

—डॉ० राजपालसिंह

सृष्टि के आरम्भ में मानव एकाकी था, शनैः शनैः उसने समूह और समूह से समाज का पाथेय निर्मित किया आदि सृष्टि के विस्तृत क्षितिज पर वह बर्बरता एवं असभ्यता का जीवन व्यतीत करता था। मानव की खोज-प्रवृत्ति में उसे सामाजिक तथा आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर किया। सामाजिक प्राणी होने के परिणाम स्वरूप झगड़े और उपद्रव होने अवश्यम्भावी थे। ऐसी परिस्थितियों ने हा कानून को जन्म दिया। मनुष्य की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का अटूट सम्बन्ध फौजदारी कानून के साथ रहा है।

अधिकांशतः अपराधों की पृष्ठभूमि में सामाजिक तथा आर्थिक कारण रहें है, क्योंकि मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकतायें मूलतः इन्हीं दो कारणों से सम्बद्ध रही हैं। इस सन्दर्भ में राजनैतिक कारणों की भी अवहेलना नहीं की जा सकती किन्तु; व्यापक अर्थों में उनका समावेश सामाजिक कारणों में किया जा सकता है। मार्क्सवादी विचारक तो इतिहास की समस्त घटनाओं की व्याख्या आर्थिक दृष्टि से ही करते हैं। इस कथन में सत्यता का अंश तो स्वीकार किया जा सकता है; किन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है।

यदि हम प्राचीन भारतीय इतिहास का अवलोकन करें तो हमें विदित होता है कि समाज में वर्ण-व्यवस्था का विशेष महत्त्व रहा है। सामाजिक संगठन की पीठिका पर वर्णव्यवस्था दीर्घकाल से सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती आ रही है। आधुनिक युग में भी वर्ण-व्यवस्था अपने परिवर्तित रूप में क्रियाशील है। प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था का फौजदारी कानून पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख इकाई होने के कारण समाज और फौजदारी कानून पर ही नहीं वरन् न्याय के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभाव दिखाई देता है।

प्राचीन युग में वर्ण-व्यवस्था एक संगठित रूप ले चुकी थी मुख्यतः इसमें चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। ब्राह्मण जिनका समाज में उच्च स्थान था, का वर्णन ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर किया गया है! यही नहीं, ब्राह्मणों का सर्वाधिक महत्त्व दर्शाने के लिये एक स्थान पर कहा गया है कि देश का जो राजा ब्राह्मणों का आदर करेगा वही सुख-शान्ति को प्राप्त होगा। तैत्तिरीय-संहिता में ब्राह्मण को देवता से भी ऊंचा महत्ता दी गई है और उसे समाज में सर्वोच्च स्थान

दिया गया है । वर्ण व्यवस्था का मूल आधार जन्मगत था । जन्म के अनुसार ही वर्ग-विभाजन होता था केवल ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण ही मनुष्य ब्राह्मण कहलाता था । आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में लिखा है कि दस वर्षीय ब्राह्मण सौ वर्षीय क्षत्रिय से श्रेष्ठ है ।

सामाजिक उच्चता की दृष्टि से प्रथम सोपान पर द्विज प्रतिष्ठित थे । द्वितीय सोपान क्षत्रिय का था । मनु का कथन है कि जन्म से ही ब्राह्मण क्षत्रिय की अपेक्षा श्रेष्ठ है, परन्तु गौतम ने अनेक स्थानों पर ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की श्रेष्ठता का निराकरण करते हुए दोनों को ही सामाजिक उत्थान के लिए समान रूप से महत्त्व दिया है । एक स्थान पर उनका कथन है कि राजा और विद्वान् ब्राह्मण दोनों ही लौक-धर्म की रक्षा करते हैं ।

इस सामाजिक संगठन में तृतीय स्थान वैश्यों का आता था । ऋग्वेद के 'पुरुष-सूक्त' के अनुसार आद्य पुरुष के मुख, बाहु, जांघों तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति हुई ।

वर्ण व्यवस्था की अन्तिम कड़ी शूद्रों की थी । शूद्रों की अवस्था समाज में अन्य की तुलना में सर्वाधिक निम्न, हीन और दयनीय थी । उन्हें अपनी जीविका उपार्जन हेतु अन्य वर्णों पर निर्भर रहना पड़ता था । उनका प्रमुख धर्म उनकी सेवा करना था । समाज में उनकी निम्नावस्था का पता इसी बात से चलता है कि बौधायन ने शूद्र की हत्या करने वाले के लिए इसी दण्ड को निर्धारित किया है जो किसी कौवे. उल्लू तथा कुत्ते के हत्यारे को मिलता था सारांशगत शूद्र पद दलित थे ।

इस व्यवस्था में चारों वर्णों के कार्य भी जन्मगत निर्धारित किए गए थे । ब्राह्मण समाज की सर्वोच्च इकाई थे, पूज्य थे, अतः उन्हें पठन-पाठन का अधिकार था । क्षत्रियों का कार्य अन्य वर्णों की रक्षा करना था अर्थात् उनका कार्य युद्ध का था । वैश्य व्यापारिक कार्यों के निर्धारक थे । अन्तिम वर्ण शूद्र पर इन तीनों वर्णों की सेवा का उत्तरदायित्व था ।

प्रागैतिहासिक काल में फौजदारी कानून की क्या स्थिति थी, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अनुमान तो लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज में अपराध तो अवश्य ही होते होगें, और दण्ड की व्यवस्था होगी । प्रत्येक समाज में अपराधों के अनुसार दण्ड की व्यवस्था की जाती है । मनुष्य तो संवेदनशील एवं प्रबुद्ध प्राणी है, पशु-वर्ग में भी दंड की व्यवस्था देखी जाती है । विद्वान् सर हेनरी मैन ने अपराध-संहिता के सम्बन्ध में यह मत प्रतिपादित किया है । कि प्राचीन समाज में इसका अस्तित्व नहीं था । उस समय अपराध के स्थान पर पाप एवं च्युति हो सकते थे, क्योंकि उनमें प्रतिफल की व्यवस्था थी । विद्वान् मैन के अनुसार राज्य एवं समग्र समुदाय के विपरीत किये गये अप-राध का उदय उत्तरवर्ती है । उस समय विधि के उल्लंघन में क्षति की व्यवस्था थी, अपराध संहिता

की नहीं। विद्वान् हेनरी मेन का यह निष्कर्ष है कि १२७ ई० पू० वर्ष पहले से अपराध विधि का उदय नहीं हो पाया था। मैन के उपरोक्त विचार तर्कसंगत नहीं हैं अनेक विद्वानों ने उनकी कटु आलोचना की है व्यक्तिगत रूप से हमें भी मैन के विचार को ग्रहण करने में कठिनाई प्रतीत होती है। यह हो सकता है कि उनके विचार यूरोप में कुछ सीमा तक लागू होते हों; किन्तु आज के लिये सर्वथा अग्राह्य है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व तो आचार्य कौटिलय हैं, जिन्होंने अपने 'अर्थशास्त्र' में अपराध और उसके लिये निर्धारित दण्ड का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है।

वास्तव में भारतीय विचार को समझने में विद्वानों ने बड़ो भूल की है। वे यूनान को विश्व सभ्यता का जनक मानकर भारत की ओर देखते रहे हैं और उनका यह पूर्वाग्रह था कि कोई भी भारतीय विचार यूनानी विचार से पूर्ववर्ती नहीं हो सकता। उनके ग्रन्थ का यही मूल है। मैगस्थनीज यह मानता है कि उसके समय में भारत में लिखित विधि थी ही नहीं किन्तु लिखने की कला से अनभिज्ञ लोग स्मरण से ही काम चलाते थे। इस प्रकार स्वयं ही वह अपनी आपत्ति समाप्त कर लेता है।

मानव-जीवन का लक्ष्य सुख और शान्ति रहा है; किन्तु उसी के साथ-साथ कुछ मनुष्यों में अपराध करने की भी स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गयी थी। ऐमी स्थिति में समाज को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये दण्ड देना आवश्यक समझा गया। इसीलिये भारत में फौजदारी कानून का विकास हुआ।

प्राचीन भारतीय दण्ड व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक क्षेत्र में वर्ण व्यवस्था का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सर्वप्रथम हम न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न को ही लेते हैं। न्यायाधीश का ब्राह्मण होना आवश्यक था किन्तु ब्राह्मण की अनुपस्थिति में क्षत्रिय तथा अन्य वर्णों की नियुक्ति हो सकती थी। जबकि शूद्र की नियुक्ति किसी भी अवस्था में नहीं हो सकती थी। मनु का तो यह कथन है कि मूर्ख ब्राह्मण न्यायाधीश के पद पर तो नियुक्त किया जा सकता है, पर विद्वान् शूद्र नहीं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न वर्णों के लिये दण्ड-विधान में भी अन्तर था। यदि एक उच्च वर्ण के व्यक्ति किसी निम्न वर्ण के व्यक्ति को घायल करता था तो इस अपराध में उसे कम दण्ड दिया जाता था; परन्तु यदि निम्न वर्ण का व्यक्ति किसी उच्च वर्ण के व्यक्ति को घायल करता था तो उस अपराध में उसे अधिक दण्ड दिया जाता था। यह स्थिति न्याय के प्रत्येक क्षेत्र में थी। यहां तक कि विभिन्न वर्णों के लिये दिव्य साक्ष्य भी अलग-अलग प्रकार के थे। फौजदारी कानून के अन्तर्गत ब्राह्मणों को विशेष सुविधाएं प्राप्त थीं। ब्राह्मणों को इस कानून के अन्तर्गत कम दण्ड दिया जाता था, शूद्रों की स्थिति करुणाजनक थी। शूद्र और कुत्ते को मारने पर एक समान दण्ड था।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र द्वारा किसी ब्राह्मण का अपमान या अपशब्द कहने पर क्रमशः १०० पण, २५० पण का दण्ड दिया जाता था; परन्तु यदि ब्राह्मण तीनों वर्णों के साथ यह अपराध करता

था तो क्रमशः ५०, २५, १२ पण दण्ड दिया जाता था। गौतम के अनुसार शूद्र का अपमान करने पर या अपशब्द कहने पर ब्राह्मण को दण्ड नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार एक क्षत्रिय की हत्या पर एक हजार गाय और एक बैल दण्ड स्वरूप अपराधी को देना पड़ता था, वैश्य की हत्या करने पर सौ गाय और एक बैल और शूद्र की हत्या करने पर १० गाय और एक बैल का दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार एक ही अपराध में भिन्न-भिन्न वर्णों के लिये दण्ड थे।

ब्राह्मणों को दण्ड—

ब्राह्मणों की स्थिति जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं अति सुविधाजनक थी कानून ब्राह्मणों के पक्ष में था। फौजदारी कानून के अन्तर्गत ब्राह्मणों को मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। उन्हें मृत्युदण्ड के स्थान पर देश निष्कासन का दण्ड दिया जाता था। बृहस्पति के अनुसार किसी भी अपराध में ब्राह्मण को मृत्यु–दण्ड या शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये। यदि हिंसा अथवा गम्भीर अपराध करें तो उसे देश निष्कासन या उसके सिर को मुंडवा देना चाहिये या उसके मस्तक पर उसके द्वारा किये गये अपराध का चिन्ह अंकित कर गधे पर बैठाकर नगर में घुमाना चाहिये। किन्तु इन सबका अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मणों को केवल देश निष्कासन या अपराध का चिन्ह अंकित कर मुक्त कर दिया जाता था। गौतम के अनुसार प्रथम बार अपराध करने पर ब्राह्मण को विशेष सुविधायें प्राप्त थीं।

अपराध की पुनरावृत्ति करने पर ब्राह्मण को सामान्य नागरिक की तरह दण्डित किया जाता था।

ब्राह्मणों को भी मृत्यु–दण्ड दिया जा सकता है। गर्भपात, ब्राह्मण पर शस्त्र उठाना एवं राज विद्रोह के अपराध में ब्राह्मण को भी मृत्यु–दण्ड दिया जाता था। परन्तु ब्राह्मणों को मृत्यु–दण्ड कदाचित् किसी अपराध में ही दिया जाता था। सामान्य रूप से उन्हें देश निष्कासन का दण्ड ही दिया जाता था। देश निष्कासन का दण्ड ब्राह्मणों के लिये मृत्यु–दण्ड से भी अधिक कष्टदायी था, क्योंकि केश मुण्डित मस्तक पर चिन्ह अंकित करने व देश से निष्कासित करने से ब्राह्मण की सामाजिक मृत्यु ही हो जाती थी। वह धर्म से बहिष्कृत हो जाता था। इस प्रकार मृत्यु दण्ड की अपेक्षा यह स्थिति ब्राह्मण के लिये अधिक लज्जाजनक थी। ब्रह्म-हत्या महान् अपराध था। इसके लिये मृत्यु–दण्ड निश्चित था। परन्तु अत्याचारी ब्राह्मण के वध में कोई दोष नहीं माना जाता था, भले ही वह गुरु ही क्यों न हों।

इस प्रकार स्थिति का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि कानून के अन्तर्गत ब्राह्मणों को विशेष सुविधायें प्राप्त थीं अतः वर्ण व्यवस्था का फौजदारी कानून पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। परन्तु उक्त सब बातों से यह भी स्पष्ट होता है कि विधि से परे कोई नहीं था। □

उपन्यासकार प्रेमचन्द-एक समीक्षा

–ज्ञानचन्द शास्त्री
हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय

हिन्दी जगत् के उपन्यास सम्राट एवं मूर्धन्य कहानीकार प्रेमचन्द एक उच्चकोटि के साहित्यकार थे। इनकी तुलना यूरोपीय उपन्यासकार टालस्टाल गोर्की जैसे विश्वविख्यात उपन्यासकारों में की जाती है। प्रेमचन्द की विशेषता रही है, युग चेतना के साथ प्रगतिवादिता, पीड़ित मानवता के पक्के पक्षपाती रहे हैं।

प्रेमचन्द के प्रायः समस्त उपन्यास सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं को लेकर लिखे गये हैं। जहां प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय समाज में प्रचलित कुरीतियों एवं कृषक वर्ग की समस्याओं का वास्तविक चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द ने अपने जीवन का अधिकांश भाग ग्राम में व्यतीत कर ग्रामीण लोगों की आर्थिक दुरव्यवस्था एवं मनोदशा को समस्या के रूप में व्यक्त किया है। वस्तुतः व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव भी उनकी समस्याओं को यथार्थ रूप प्रदान करने में सहायक हुआ है। इस सम्बन्ध में एक स्थान पर डॉ० गुलाब राय ने लिखा है "हिन्दी साहित्य के इतिहास में जन-साहित्य के युग प्रवर्तक प्रेमचन्द हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सबसे बड़ी विशेषता है उनकी आदर्शवादिता। चरित्र की दृष्टि से वे निर्देशन करने में तथा घटना का निर्माण तथा उपसंहार करने में वे आदर्श का सदा ध्यान रखते हैं। दूसरी विशेषता है लक्ष्य की उन्मुक्तता। उन्होंने प्रत्येक उपन्यास में सामाजिक और राजनैतिक प्रश्न उठाते हैं। उनका निर्णय भी हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, निर्णय विवेचन करने के कारण प्रेमचन्द लक्ष्यवादी है और चरित्र तथा कथा के स्वरूप निर्माण में वे आदर्शवादी है।

प्रेमचन्द की रचना शिल्प के बारे में डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है "कबीर के बाद प्रेमचन्द ही एक ऐसे लेखक हैं। जिन्होंने जो कुछ देखा उसी को कहा और जो कहा उसे स्वयं आचरण में रखकर दिखाया।"

प्रेमचन्द युग में देश की सामाजिक जागृति एवं राजनैतिक चेतना के कारण स्थिति ऐसी बन गई थी कि उस समय हमें अपने वास्तविक रूप में अवगत कराने वाले, आन्तरिक शक्तियों का आभास देने वाले साहित्य की आवश्यकता थी। ठीक इन्हीं अपेक्षाओं की पूर्ति करते हुए अवतरित हुए।

प्रेमचन्द ने उपन्यास को नवीन दिशा की ओर अग्रसर किया और उसे यथार्थवादिता के कठोर धरातल पर ला खड़ा किया। जिससे उपन्यास मानव जीवन की वास्तविक झांकी को बिम्बित करने में समर्थ हो सका। प्रेमचन्द ने यथार्थ का सम्बन्ध आदर्श से स्थापित करना अभीष्ट समझा उनका समस्त साहित्य इसी भावना से अनुप्राणित है। गोदान, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन आदि समस्त उपन्यासों में पहले उन्होंने जीवन का लक्ष्य, समाज की विषमताओं और समस्याओं का मार्मिक अंकन किया है। उन्होंने सद्वृत्तियों वाले पात्रों के माध्यम से एक आदर्श की स्थापना की है जिसका अनुशीलन कर व्यक्ति अपना जीवन उन्नत बना सकता है। समाज की भीषण–समस्याओं को उन्होंने आदर्शवादी ढंग से सुलझाने का प्रयास किया है। जैसे 'सेवा सदन' में सुमन के चरित्र का सुधार कर प्रेमचन्द एक आश्रम की प्रतिष्ठा करते और उसके जीवन का एक उज्ज्वल अध्ययन आरम्भ करते हैं।

वास्तव में प्रेमचन्द का साहित्य बीसवीं सदी के भारत का सच्चा इतिहास और उसकी सच्ची झलक है। उनके साहित्य में सच्चे भारत के दर्शन होते हैं। वैसे प्रेमचन्द युग में भारत वर्ष में पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों का संघर्ष चल रहा था, इस संघर्ष में हम पश्चिमी सभ्यता की ओर लालायित होकर बढ़ते गये। परन्तु उनकी अनुपयुक्तता और खोखलापन देखकर संकुचित हो जाते हैं। 'गोदान' में मेहता कहते हैं—''मुझे खेद है हमारी बहिनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहां नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गयी है। पश्चिम की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, इसलिये कि वह अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा।

प्रेमचन्द के उपन्यासों का मूल प्रेरणा-स्रोत एवं आधारभूमि समाज ही है। इनके कथानकों में मानव के सामाजिक जीवन का प्रमुखतः चित्रण मिलता है। वैयक्तिक जीवन का भी अंशतः उल्लेख हो गया है। व्यक्ति ही सामूहिक रूप से समाज का रूप धारण कर लेता है और उसकी समस्याएं ही सामाजिक समस्याएं बन जाती हैं। अपने समय की समस्याओं का चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। विधवा की समस्या उस समाज की प्रमुख समस्या थी, जिसका वर्णन उस युग के प्रायः सभी उपन्यासकारों ने किया था और उसके समाधान की चेष्टा भी की थी। प्रेमचन्द के हृदय में विधवाओं के प्रति सहानुभूति थी, उन्होंने प्रतिज्ञा, वरदान, प्रेमाश्रम, गबन, निर्मला उपन्यासों में विधवाओं के जीवन पर सूक्ष्मता से प्रकाश डाला है। 'वरदान' की ब्रजरानी 'प्रेमाश्रम' की गायत्री, प्रतिज्ञा की पूर्णा, 'गबन' की रतन को वैधव्य जीवन का दुःख भोगना पड़ा। अतः विधवा समस्या का स्थायी समाधान विधवा-विवाह ही है। स्वयं प्रेमचन्द ने विधवा शिवरानी देवी से विवाह करके विधवा समस्या का स्थायी समाधान प्रस्तुत किया है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में अमृतराय विधवाओं के लिये वनिता आश्रम की स्थापना करता है। यह समाधान आदर्शवादी है और परिस्थितियों के अनुरूप है क्योंकि उस युग में

विधवा का विवाह समाज में क्रान्ति उपस्थित करने वाला था और प्रेमचन्द क्रान्तिकारी न होकर आदर्शवादी हैं। आश्रम की स्थापना द्वारा उन्होंने आदर्श की रक्षा की है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में युग के शोषित, दलित एवं पीड़ित व्यक्तियों के साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित कर उनके जीवन की समस्याओं को रखा है और पीड़ा के परिहार के लिये यथासम्भव सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं। नारी किसान, मजदूर तथा समाज के अन्य अभावग्रस्त व्यक्तियों को उन्होंने अपने उपन्यासों का आधार स्तम्भ बनाया है। रंगभूमि उपन्यास में सूरदास नामक अन्धा पात्र भारतीय ग्रामीण जीवन का प्रतीक है तथा गांधीवादिता में पगा हुआ है। वह अन्धा निर्बल होने पर भी निष्ठावान् है। वह परतन्त्र किन्तु स्वाधीनता कामी भारतीय जीवन का प्रतिनिधि है। भारतीय निर्बलता और साधनहीनता के साथ ही गांधी जी द्वारा प्रतिष्ठित आशावादिता और अजेयता भी 'सूरदास' के जीवन में संनिहित है। इस तरह उसके जीवन में विरोधी भावों और गुणों का मिश्रण है। सूरदास प्रेमचन्द की एक श्रेष्ठ चरित्र सृष्टि है।

रंगभूमि गांधीवादी उपन्यास इसलिये कहा जाता है कि यह गांधी जी की राजनैतिक चेतना से अनुप्राणित है। रंगभूमि प्रेमचन्द की उपन्यास कला का विकसित सोपान है। गांधीवाद का प्रभाव साहित्य व ज़ीवन पर जैसा भी कुछ पड़ा वह रंगभूमि में दिखाई पड़ता है। चरित्रों की विविधता, बहुलता और भारतीय जीवन की व्यापकता का चित्रण रंगभूमि की अपनी विशेषता है। प्रेमचन्द ने पूंजीवादी समाज व्यवस्था का भी विरोध किया है, पूंजीवादी प्रथा का खण्डन करते हुए समाजवाद की स्थापना का समर्थन किया है। प्रेमचन्द का मूल-उद्देश्य समाज का कल्याण और मानवता की रक्षा है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने अपने कथानकों का निर्माण किया है। समष्टि के मंगल का उत्सर्ग करके व्यक्ति की अनुभूतियों का तरंगाभिधान उनके लिये असत्य है। वे मानव की उन वृत्तियों को जागृत करना चाहते हैं जो सामाजिक भावना को आघात पहुँचाने वाली नहीं हैं। उन्होंने प्रायः अपने पात्रों में उन गुणों को प्रस्फुटित किया है जिनकी समाज को समष्टि रूप में मानव-हित के निमित्त आवश्यकता थी। प्रेमचन्द ने सदैव मानव-कल्याण तथा मानव-मंगल के पक्ष का मंडन किया है। जो वस्तुतः उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिफल है, उन्होंने अपने उपन्यासों में आदर्श व्यक्तियों के जीवन में मानव सुलभ दुर्बलताओं का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द ने उनकी सद्वृत्तियों को प्रस्फुटित कर मानव के प्रति अपनी अडिग आस्था का प्रमाण दिया है। प्रेमचन्द का विश्लेषण मानवतावादी और नैतिक है।

इनमें नैतिक मूल्यों, भारतीय संस्कृति और स्थायी मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। गोदान की मालती के विलासमय जीवन का परिष्कार सामाजिक क्षेत्र में कार्य करके त्याग वृत्ति के द्वारा ही होता है। अपने स्वार्थों के संकुचित घेरे से बाहर निकलकर जब हम लोकोपकारी कार्यों में जुड़ जाते

हैं, तब हममें आत्मनिषेध, निराभिमानवता, आत्मोत्सर्ग, की भावना उत्पन्न होने लगती है। जिससे मन पवित्र होने और चित्तवृत्तियां सुसंस्कृत होने लगती हैं।

प्रेमचन्द के कृतित्व का समय सन् १९०१ से १९३६ तक है। प्रेमचन्द भारतीय जनता के जागरण काल के लेखक थे। उन्होंने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन, स्वतन्त्रता संग्राम तथा सामाजिक कुरीतियों और विभीषिकाओं से प्रभावित होकर लिखा था।

अत: अन्त में हम यह स्वीकार करेंगे कि गहरी एवं व्यापक अन्तर्दृष्टि जीवन्त एवं सहज कलाकारिता तथा अमोघ भाषा शक्ति आदि से सम्पन्न प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य केवल हिन्दी की ही नहीं अपितु समूचे भारत की सम्पत्ति है। साथ ही भारतीय जनता की सहृदयता, सहनशीलता, बेबसी, प्रेमचन्द के साहित्य में मुखरित हुई है।

□

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम	"वेदमञ्जरी"
लेखक	डॉ० रामनाथ वेदालंकार
प्रकाशक	समर्पण शोध-संस्थान आर्यसमाज, करोलबाग, नई दिल्ली-५
मूल्य	४० रुपये

इस वेदमञ्जरी में डॉ० रामनाथ जी ने चारों वेदों से ३६५ मन्त्रों का संग्रह किया है। वर्ष में ३६५ दिन होते हैं। एक-एक मन्त्र का एक-एक दिन में चिन्तन मनन करते हुए स्वाध्याय किया जाय तो एक वर्ष पर्यन्त यह क्रम चलता रह सकता है। वैसे, यह आवश्यक नहीं है कि ग्रन्थ में निर्दिष्ट क्रम से एक दिन में एक ही मंत्र पर विचार किया जाय। यह बात पाठक की रुचि पर अधिक निर्भर करती है कि वेदों की ३६५ मञ्जरियों में से किस मञ्जरी की सुगन्ध उसे अधिक आकृष्ट करती है। अपनी इच्छानुसार कहीं से भी वह किसी भी मंत्र को लेकर उसके सम्यक् परिशीलन से आनन्द प्राप्त कर सकता है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही डॉ० रामनाथ जी ने मंत्रों की व्याख्या के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि को स्पष्ट कर दिया है। निघण्टु की व्याख्या करते हुए आचार्य यास्क ने अपने निरुक्त में पदों का निर्वचन करते समय जिस पद्धति का आश्रय लिया है, डॉ० रामनाथ जी ने भी इसको आधार बनाया है 'धातवः अनेकार्थाः' इसको वे गांठ बांधकर चले हैं। "वैदिक भाषा का एक-एक शब्द अपने अन्दर अर्थ वैपुल्य का अगाध भण्डार भरे हुए है। अर्थ-वैपुल्य में संसार भर की अन्य कोई भाषा इस भाषा की तुलना नहीं कर सकती है। वैदिक शब्दों में से एक के बाद दूसरा अर्थ निकलना चलता है और व्यक्ति अपने-अपने स्तर के अनुसार स्थूल, सूक्ष्म, साधारण, गम्भीर, गम्भीरतर या गम्भीरतम अपेक्षित अर्थ को ग्रहण कर लेता है।" उनके इस कथन की महत्ता किसी भी मंत्र की व्याख्या पढ़कर समझी जा सकती है। उनकी यह व्याख्या उन्हीं के शब्दों में' भावभीनी' है अतः सर्वत्र ही भाषा का प्रवाह अबाध गति से बहता चलता है। उस प्रवाह के लिये मूल मंत्र के प्रति शब्द का अन्वर्थ अनुसरण सर्वथा अपेक्षित नहीं समझा गया है। भाषा अति प्राञ्जल है और उस पर सर्वत्र ही भावना की मधुरिमा की 'कोट' चढ़ी हुई है। पाठक मूल को भूलकर व्याख्या के मधुर प्रवाह में बहता चला जाता है। व्याख्या में अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना का प्रयोग अधिक हुआ है।

यूं तो इस वेद मञ्जरी से पूर्व भी बहुत से मंत्र-संग्रह अर्थ सहित, अनेक स्थानों से निकलते रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी के पूर्व आचार्य पं० अभयदेव जी की भी वैदिक विनय को पर्याप्त ख्याति मिली थी। परन्तु यह "मञ्जरी" सबसे विशिष्ट है। इसमें यथासम्भव, सर्वथा नवीन ग्रन्थों का ही चयन किया गया है जो प्रायः अन्य प्रचलित संग्रहों में सम्मिलित नहीं किये गये हैं और यदि कुछ मन्त्र आ भी गये तो उनकी व्याख्या में यही विशेषता है। इसमें २७५ मंत्र ऋग्वेद के, ४६ मंत्र यजुर्वेद के, २० मंत्र सामवेद के तथा ८४ मंत्र अथर्ववेद के हैं। प्रत्येक मंत्र के साथ उसके ऋषि, देवता और छन्द का भी उल्लेख कर दिया गया है। यदि मंत्र का पदपाठ और अन्वय भी साथ में दे दिया जाता तो मूल मंत्र का अर्थ समझने में अधिक सरलता हो सकती थी।

इस सर्वाङ्ग सुन्दर संग्रह के लिये वस्तुतः डॉ० रामनाथ जी साधुवाद के पात्र हैं।

—धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री
३/६ भगवाननगर, देहरादून

गुरुकुल–समाचार

प्रस्तुतकर्ता–डॉ० राकेश शास्त्री

३ मई, १९८४ को इतिहास विभाग में आई० गुस्तोपुत्तू फाल गुनेदी की पी-एच. डी. को मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "दि एबोलेशन ऑफ इण्डियन कल्चर इन बाली" विषय पर डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा प्रो० एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग के निर्देशन मे शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था ।

७ मई ८४ को इतिहास विभाग में राकेश कुमार शर्मा की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा अध्यक्ष, इतिहास विभाग के निर्देशन में "प्राचीन भारत में सम्प्रभुता का विकास (वैदिक काल से गुप्तकाल तक)" विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था ।

१५ मई ८४ को प्रो० ओ० पी० मिश्र (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा, डॉ० जयदेव वेदालङ्कार, डॉ० काश्मीर सिंह भिण्डर (सहायक–परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में परीक्षाएं शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुईं ।

१७ मई ८४ से १६ जुलाई ८४ तक ग्रीष्मावकाश की घोषणा की गई ।

३० मई, ८४ को श्री शेरबहादुर चौकीदार का देहावसान के कारण सम्पूर्ण गुरुकुल परिवार शोक निमग्न हो गया तथा एक शोक-संदेश में उनके शोक सन्तप्त परिवार के लिये संवेदना व्यक्त की गई और उसकी आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई।

३१ मई, ८४ अपराह्न को कार्यवाहक कुलसचिव डॉ० जबरसिंह सेंगर के स्थान पर प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, गणित विभाग की कुलसचिव पद पर बिधिवत् नियुक्ति की गई। उन्होंने ३१ मई अपराह्न में अपना कार्यभार ग्रहण कर लिया तथा डॉ० जबरसिंह सेंगर ने अपने पूर्व पद प्रवक्ता, इतिहास बिभाग का ३१ मई से ही कार्यभार संभाल लिया ।

गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ-आश्विन, २०४१ | वर्ष : ३६ | अङ्क : ६-१०
जून - अक्तूबर, १९८४ | | पूर्णाङ्क : ३५७-६१

गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालयस्य मासिकी पत्रिका

संरक्षक

श्री बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

श्री रामप्रसाद वेदालंकार
उप-कुलपति

सम्पादक-मण्डल

अध्यक्ष : सम्पादक-मण्डल	—	पं० सत्यकाम विद्यालङ्कार आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय
सम्पादक	—	डॉ० मानसिंह प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
सह-सम्पादक	—	डॉ० राकेश शास्त्री प्रवक्ता, संस्कृत-विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मूल्य— १२ रुपये वार्षिक
इस अंक का मूल्य— ५ रुपये

प्रकाशक
वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मुद्रक—जैना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर।

विषय–सूची

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचारों के लिए स्वयं लेखक ही पूर्णतः उत्तरदायी हैं।

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालयस्य मासिकी पत्रिका]

ज्येष्ठ—आश्विन, २०४१ अंक : ६-१०
जून —अक्तूबर, १९८४ वर्ष : ३६ पूर्णांक : ३५७-६१

श्रुति-सुधा

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

(शुक्ल—यजुर्वेद ४०।१)

अर्थ : इस जगती अर्थात् विश्व में जो कुछ भी विद्यमान है वह सभी कुछ अन्तर्यामी रूप में सबका ईशन करने वाले परमेश्वर का वास्य है। वहीं समस्त स्थावरजङ्गमात्मक जगत् में आत्मरूप में विद्यमान होकर उसे आच्छादित करता है। जगती उससे परिपूर्ण है; इसका कोई भी अंश उससे रहित नहीं है। अतः जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ उस ईश्वर ही के हैं; हमारा उन पर कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सभी योग्य पदार्थों को परमेश्वर ही का समझते हुए ममत्व तथा आसक्ति का त्याग कर केवल कर्त्तव्य पालन के निमित्त उनका यथाविधि उपभोग करे; विषयों में अपने मन को न फँसने दे। उसे किसी के भी धन की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि धन किसी का नहीं होता।

वाल्मीकिकालिदासयोः प्रावृड्वर्णनम्

—वेदप्रकाश शास्त्री

घर्मांशुतापपरितप्ते जगन्मण्डले समग्रामुर्वीं शीतलयितुं समायाति जलदागमोऽयं सर्वचित्तानुरञ्जकः। सर्वैरेव संस्कृतकवीश्वरैः कवित्वप्रतिभासाम्यभावहृद्भिर्जलदागमोऽयं सुतरां वर्णितः। इदं प्रावृड्वर्णनं वाल्मीकिकालिदासाभ्यां नैपुण्येन कृतमतस्तयोरेव वर्णनं यथायथमालोचनपदवीमुपनीयते। सर्वप्रथमं वर्षर्तोः कलात्मकं वर्णनं वाल्मीकिरामायण एव दृश्यते। रामायणानन्तरं पश्चाद्वर्तिनिकाव्यकल्पे प्रावृड्वर्णनं नितरां द्रष्टुं शक्यते। रामायणस्य किष्किन्धाकाण्डे रामः समागतं वर्षाकालं वीक्ष्य तदागमनविषये स्वानुजं लक्ष्मणं प्रोवाच--

अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः।
संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः॥

(वा०रा०कि० २८।२)

हे सुमित्रानन्दन ! जलदायकोऽयं प्रसिद्धः प्रावृट्कालः सम्प्राप्तः कालेऽस्मिन् गिरिसदृशैः पयोधरपटलैः सम्पूर्णं व्योममण्डलं प्रावृतम्। यथा वाल्मीकिना वर्षाकालागमनसूचनोपमालंकारसौष्ठवेन प्रदत्ता तथैव कालिदासोऽपि प्रावृट्कालं सूचयति परं तद्वर्णनं कामपि वैदग्धीमावहति। यथा क्वचिद् प्रमोदावसरे कश्चिद्राजा सपताकं मदवर्षिणं गजमारुह्य वाद्यवादकैः सह सर्वानानन्दयन् समायाति तथैव जलबिन्दुपरितं मेघकुञ्जरमारुह्य विद्युत्केतुमुत्तोलयन् सोल्लासं घनागमोऽयं समायातः यथा—

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जर—
स्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः।
समागतो राजवदुद्धतद्युति—
र्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये॥

(ऋतु० २।१)

महाकविना वाल्मीकिना क्वचिदेकस्मिन् स्थले प्रतीयमानोत्प्रेक्षालंकारेण विच्छित्ति-पूर्वकं वर्षाकालस्य वर्णनं कृतम् । जलवर्षणमालोक्य कविः कथयति यत् भास्करस्य किरणैः समुद्राणां जलं पीत्वा नवमासपर्यन्तं धृतं गर्भमेव द्यौरियमिदानीं जलरुपेण मुञ्चति । यथा—

नवमास धृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥

(वा०रा०कि० २८।३)

अत्र कवीश्वरेण गर्भप्रक्रियां वर्णयता वृष्टिविज्ञानविषये किमपि संदिष्टमेव । वैज्ञानिकमतानुसारं व्योम्नि पूर्वं जलानां गर्भमयी प्रक्रिया सम्पद्यते तदनन्तरमेव पृथिव्यां जलवर्षणं भवति । महाकविना कालिदासेन अमुमेव श्लोकमधिगत्य स्वकीये रघुवंशमहाकाव्ये दिलीपगुणवर्णने स्वप्रतिभोन्मेषः कृतः । यथा—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥

(रघु० १।१८)

वाल्मीकिना क्वचिदाकाशस्य मानवीकरणरुपेण वर्णनं कृतम् । यथा लोके व्रणितः पुरुषः श्वेतवस्त्रखण्डैर्व्रणभागं बध्नाति तदा तस्य व्रणभागस्तु रक्तिमः शेष-भागश्च शुभ्र एव भाति तथैव कविरत्र प्रावृड्वर्णने व्योमविषये कामपि नवीना-मुत्प्रेक्षां परिकल्प्य रसं परिपुष्णाति । यथा—

संध्यारागोत्थितैस्ताम्रै रन्तेष्वापि च पाण्डुभिः ।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ॥

(वा०रा०कि० २८।५)

अपरस्मिन् श्लोके वाल्मीकिना पुनरपि व्योम्नः मानवीकरणं कृतम् । लोके यथा कश्चित् कामातुरः पुमान् मन्दं मन्दं निःश्वसिति चन्दनर्चचितकायो भवति, पाण्डुवर्णाभश्च जायते तथैव मन्दं मन्दं पवनं निःश्वासरुपेण सन्ध्यां चन्दनरुपेण पाण्डुरं जलदञ्च पीतकपोलरुपेण धारयन् असावाकाशः कामातुर जन इवाभाति । यथा—

मन्दमारुतिनिःश्वासं ।
संध्याचन्दनरञ्जितम् ।
आपाण्डुजलदं भाति ।
कामातुरमिवाम्बरम् ॥

(वा०रा०कि० २८।६)

वर्षाकाले सूर्यातपतप्ता पृथिवी बाष्पं मुञ्चति, वाल्मीकिना पृथिव्याः समुत्थितं बाष्पं वीक्ष्याभिनवा कल्पना कृता। इयं पृथिवी घर्मतप्ता नवेन जलेन परिप्लुता शोकसंतप्ता सीतेवाश्रुजलं विमुञ्चति। अत्राचेतन भूतायाः पृथिव्याश्चेतनवद्-वर्णनं कृत्वा कविना सहृदयानां हृदयानि सरसानि कृतानि। यथा—

एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥

(वा०रा०कि० २८।७)

महाकवेः कालिदासस्य रघुवंशेऽयमेव श्लोकः प्रकारान्तरेण समुपलभ्यते। तत्र रामः सीतां कथयति—

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षणोद्यत्रविभिन्नकोशैः ।
बिडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥

(रघु० १३।२९)

वर्षाकाले व्योम्नि मेघाः समन्तात् प्रादुर्भवन्ति कालिदासेन तत्र मेघानां त्रिता निगदिता। आकाशमण्डले क्वचिद् नीलोत्पलकान्तिसंनिभा मेघा विभान्ति, क्वचित् भिन्नाञ्जनसमूहसदृशाः शोभन्ते, क्वचिच्च गर्भिण्याः स्तनकान्तिसमाः सन्ति। यद्यपि वर्णिताः सर्वेऽपि मेघाः श्यामवर्णा एव तथापि कालिदास ईषद्भेदकल्पनया त्रिधा बिम्बनिर्मितिं विधाय कामप्यभिनवां हृदयहारिणीं प्रावृट्शोभां वणयामास। यथा—

नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसंनिभैः ।
क्वचित् सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योमघनैः समन्ततः ॥

(ऋतु० २।८)

कालिदासेन क्वचित् बलाहकानां वीररुपेण वर्णनं कृतम्। यथा लोके कश्चिद् वीरो युद्धभुवमवतीर्य सिंहगर्जनां विधाय समौर्वीकं कोदण्डमाकर्णान्तमास्फाल्य प्रक्षिप्त-सायकाग्रभागैः शत्रून् पीडयति तथैवेते मेघा अपि प्रवासिनां चेतांसि पीडयन्ति। यथा—

बलाहकाश्चाशनिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्तडिद्गुणम् ।
सुतीक्ष्णधारापतनाग्रसायकैस्तुदन्ति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम् ॥

(ऋतु० २।४)

अत्र कविना साङ्गरूपकस्य प्रशंसनीयः प्रयोगः कृतः। मेघानां मानवीकरणमत्र रूपकाश्रितमेव। इह "प्रसभं" शब्दस्य प्रयोगं कृत्वा कविना मेघानां प्रहारविषये निर्दयत्वमपि सहृदयानां प्रतीतियोग्यं कृतम्।

जलदागमे नद्यस्त्वरितगत्या सागरमभिगच्छन्ति। सागरमधिगच्छन्तीनां नदीनां वर्णनं पुंश्चलीनां नायिकानां चरित्रेण तुलितमिवाभाति। यथा—

निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान् प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः।
स्त्रियः सुदुष्टा इव जातविभ्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम्॥

(ऋतु० २।७)

वर्षाकाले नवोदकं कीटरजस्तृणादीनि समादाय वक्रगत्या प्रवहति। तत्र जलस्य तिर्यक् प्रवाहं विलोक्य कविना नवोदकसर्पयोः साम्यमतीवचारुतयोपमालंकारेण वर्णितम्। तत्र कवेरुपमाप्रयोगोऽनायासेनैव दृश्यते। यथा—

विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजङ्गवद् वक्रगतिप्रसर्पितम्।
ससाध्वसैर्भेककुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम्॥

(ऋतु० २।१३)

प्रावृट्कालोऽयं संयोगिनं सुखं प्रयच्छति परं वियोगिनं तु भृशं पीडयति। याः प्रोषितपतिकाः सन्ति तासां कृते मेघदर्शनं नितरामसह्यम्। कालिदासेन प्रवासिप्रमदानां नैराश्यान्वितं जीवनमेकेन पद्येन सकरुणं वर्णितम्। यथा—

विलोचनेन्दीवरवारिबिन्दुभिर्निषिक्तबिम्बाधरचारुपल्लवाः ।
निरस्तमाल्याभरणानुलेपनाः स्थिता निराशाः प्रमदाः प्रवासिनाम्॥

(ऋतु० २।१२)

धारागमकाले नलिनी विपत्रपुष्पा भवति। अत एव मनाक् म्लानिमानमुपगतां नलिनीं विहाय भृङ्गा इतस्ततः परिभ्रमन्तः कानने नृत्यकर्मप्रवृत्तानां मयूराणां कलापचक्रमेव नवोत्पलं मत्वा विमूढास्तत्र पतन्ति। कविना भ्रमराणां भ्रान्तावस्थायाः कलात्मकं वर्णनमत्र भ्रान्तिमानालंकारेण कृतम्। यथा—

विपत्रपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृङ्गाः श्रुतिहारिनिःस्वनाः।
पतन्ति मूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया॥

(ऋतु० २।१४)

प्रायः सर्वैरेव कवीश्वरैरयं प्रावृट्कालः सर्वत्रोद्दीपनविभावतया वर्णितः। अस्मिन् काले जनानां प्रसुप्ताः कामविकाराः पुनरुज्जीविता भवन्ति, पुनश्च नार्यः कामिनां रतिभावं मुहुर्मुहुः क्रियमाणाभिश्चेष्टाभिरुद्दीपयन्ति। यथा—

शिरोरुहैः श्रोणितटावलम्बिभिः
कृतावतंसैः कुसुमैः सुगन्धिभिः।

स्तनैः सहारैर्वदनैः ससीधुभिः

स्त्रियो रतिं संजनयन्ति कामिनाम् ।।

(ऋतु० २।१८)

लोके यदोत्सवावसरः समायाति तदा मानवसमूहः स्नानादिकं कृत्वा नवनवं परिधानं विरच्य, मन्दं मन्दं हसन्, साङ्गोच्छ्वासं उल्लसन् नृत्यन् इवाभाति तथैव वर्षाकाले वनान्तोऽपि उत्फुल्ल इव मुदित इव विभाति । यथा —

मुदित इव कदम्बजैर्जातपुष्पैः समन्तात् ।

पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव ।

हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां ।

नवसलिलसेकश्चिछन्नतापो वनान्तः ।।

(ऋतु० २।२४)

यद्यपि वाल्मीकिना कालिदासेन च चारुतया प्रावृड्वर्णनं कृतम् । उभावपि कवीश्वरावन्योऽन्यमन्यूनाधिकौ स्तस्तथापि वाल्मीकिकृतं वर्णनं कामपि प्रतिभोत्तरतामेवावहति । एकस्मिन् पद्ये पर्वतवर्णनं प्रकुर्वाणेन वाल्मीकिना या कल्पना कृता सा नूनमेव सर्वथाभूतपूर्वा हृद्या अनवद्याच । यथा--

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।

मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ।।

(वा०रा०कि० २८।१०)

यथा कश्चिद् विप्रवटुर्मुनिवटुर्वा मृगाजिनमवधार्य ससूत्रः श्रुतिं पठति तथैव पर्वता अपि मेघान् कृष्णाजिनत्वेन जलधारा यज्ञोपवीतेन गुहोद्भूतान् मरुच्छब्दान् मन्त्रोच्चाररूपेण परिकल्प्य वेदपाठिन इव जाताः । अत्र कविना प्रावृट्कालिको वेदप्रचारः प्रसारश्च सूचितः ।

एकस्मिन् स्थले वाल्मीकिना व्योम्नि कालमेघपटलमध्ये स्फुरन्ती विद्युद विलोकिता, तां च विलोक्य अभिनवा कल्पना कृता । तत्कल्पनानुसारं नीलमेघाश्रितेयं विद्युद् रावणस्याङ्के विचेष्टमाना सीतेव भाति । यथा—

नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।

स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ।।

(वा०रा०कि० २८।१८)

वर्षाकाले जलवर्षणात् सर्वत्र मार्गगमनमसुकरं भवति, विशेषतः पर्वतस्थलेषु । यथा कश्चिद् भारवाहकः परिक्लान्तः सन् मध्ये मध्ये विश्रम्य यात्रां साधयति

तथैव मेघा अपि जलभारं वहन्तो मध्ये मध्ये पर्वतशृङ्गेषु विरम्य प्रयान्ति। अत्रापि मेघानां कविना मानवीकरणं विधाय चेतनवद् वर्णनं कृतम्। यथा--

समुद्वहन्तः सलिलातिभारं।
बलाकिनो वारिधरा नदन्तः।
महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां।
विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति॥

(वा०रा०कि० २८।२२)

वाल्मीकिना यथासंख्यालंकारयोजनया केवलमेकस्मिन्नेव पद्ये समग्रं प्रावृड्वर्णनं-कृतम्। यथा—

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः॥

(वा०रा०कि० २८।२७)

अमुमेव श्लोकं यथाबन्धमादाय महाकविना कालिदासेन प्रावृड्वर्णनं कृतम्। केवलं तत्र शब्दद्वये कविना परिवृत्तिः कृता। यथा—

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति रुदन्ति नृत्यन्ति समाश्रयन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गाः॥

(ऋतु० २।१९)

महाकविना वाल्मीकिना वनप्रदेशानामनेकरुपेषु वर्णनं कुर्वता वनशोभा प्रकटिता, अखिलोऽपि वनान्तः प्रावृट्समये सोत्प्रासमुत्सवमयः संजातः। यथा—

क्वचित् प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित् प्रनत्ता इव नीलकण्ठैः।
क्वचित् प्रमत्ता इव वारणेन्द्रै
र्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः॥

(वा०रा०कि० २८।३३)

एवं प्राकृतं प्रावृड्वर्णनं विलोक्य निगदितुं शक्यते यत् वाल्मीकिना यद् वर्णनं कृतं तदेव किञ्चित् परिशोध्य परिवर्त्य च कालिदासेनापि वर्णितम्। परं सत्यपि साम्ये स्वस्ववर्णने द्वावपि कवीश्वरावप्रतिहतगतिकौ। अन्यस्य कवेश्च्छायामनुगृह्णन्नपि प्रतिभाप्रपन्नः कवीश्वरो नैव पुनरुक्तदोषभाग् भवति। आनन्दवर्धनेनापि साधु समीरितम्—"अनुमतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्, सुकविरूपनिबध्नन् निन्द्यतां नोपयाति"। अत उभयोरपि कवीश्वरयोः प्रावृड्वर्णनं सुतरां रम्यम्, सद्यः परनिर्वृत्तिकरम्, कान्तासम्मितोपदेशकरञ्च। ○○

गीर्वाणवाणी सदा

—विश्वबन्धु शास्त्री

(१)

वेदोक्ता परिबोधराशिरनघा गर्भीकृता पावना,
विद्यायास्सकलाः कला-कुशलताश्चारुतया चित्रिता।
देवानां मधुराऽधरा विलसिता भाषासु दिव्या प्रिया,
गीर्गङ्गाऽघविनाशिनी प्रवहतां गीर्वाणवाणी सदा ।।

(२)

धात्रादौ विहिता हिताय जगतो ज्ञानाम्बुधिश्शेवधिः,
माता वेदमयी विशालहृदया भव्या भृशं राजते ।
यस्यां संस्कृति-सभ्यता-स्ववपुषा संशोभते सर्वदा,
सेयं नस्सुरभारती विजयतां गीर्वाणवाणी सदा ।।

(३)

मर्यादा पुरुषोत्तमस्य चरितं रामायणं निर्मलम्,
धर्माधर्मविवेकबोधविहितं भव्यं महाभारतम् ।।
श्रीकृष्णस्य विगूढबोधविभवं मोहान्धकारापहम्,
कैवल्यस्य विबोधिकाविजयतां गीर्वाणवाणी सदा ।।

(४)

भाषाणां जननी प्रियाऽमृतधरा, शब्दौघपूर्णा शिवा,
फ्रेञ्चाद्याः विविधाः पराः विकसिताः स्तन्यस्य पानेन याः ।
दण्डी-भास-सुबन्धु-दास-कविभिः काव्याम्बुभी रक्षिता,
साऽस्मान् पातु सरस्वती भगवती गीर्वाणवाणी सदा ।।

यजुर्वेद और आधुनिक जीवन

—मानसिंह

'यजुर्वेद' में यज्ञ-यागों के लिए उपादेय मन्त्रों अर्थात् यजुषों का संग्रह है। वेद के दो सम्प्रदाय हैं—ब्रह्म-सम्प्रदाय तथा आदित्य-सम्प्रदाय। 'शत-पथ-ब्राह्मण, के अनुसार आदित्य-यजुष्, शुक्ल-यजुष् के नाम से प्रसिद्ध हैं और याज्ञ-वल्क्य द्वारा आख्यात हैं— "आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।"[१] (१४।८।५।३३)। अतः आदित्य-सम्प्रदाय का प्रतिनिधि 'शुक्ल यजुर्वेद' है। ब्रह्म-सम्प्रदाय का प्रतिनिधि 'कृष्ण यजुर्वेद' है। 'यजुर्वेद' के शुक्लत्व तथा कृष्णत्व का भेदक तत्त्व उसका स्वरूप है। 'शुक्ल-यजुर्वेद' में दर्शपौर्णमासादि अनुष्ठानों के लिए आवश्यक मन्त्रों का ब्राह्मण-भाग से रहित संकलन है। इसके विपरीत, 'कृष्ण-यजुर्वेद' में मन्त्रों के साथ ही उनके नियोजक ब्राह्मण-भाग का भी सम्मिश्रण है। मन्त्रों का विशुद्ध एवं अमिश्रित रूप ही शुक्ल-यजुः के शुक्लत्व का कारण है और मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग का एकत्र मिश्रण ही कृष्ण-यजुः के कृष्णत्व का हेतु है। 'शुक्ल-यजुर्वेद' की प्रधान शाखाएँ काण्व तथा माध्यन्दिन हैं और मन्त्र-संहिता 'वाजसनेयी संहिता' के नाम से विख्यात है, जो प्रस्तुत वार्ता का आधार है। 'कृष्ण-यजुर्वेद' की आजकल केवल चार ही शाखाएँ उपलब्ध हैं— तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ तथा कपिष्ठल-कठ। अनेकत्र निर्दिष्ट एक आख्यान के अनुसार गुरु वैशम्पायन के शाप से भीत योगी याज्ञवल्क्य ने स्वाधीत यजुषों का वमन कर दिया और गुरु के आदेश से अन्य शिष्यों ने तित्तिरि का रूप धारण कर उसका भक्षण किया। इन्हीं यजुषों का संग्रह 'कृष्ण-यजुर्वेद' की 'तैत्तिरीय संहिता' में है। याज्ञवल्क्य ने सूर्य को प्रसन्न कर उनके अनुग्रह से शुक्ल-यजुषों की प्राप्ति की जिनका संकलन 'शुक्ल-यजुर्वेद' में है। 'शुक्ल-यजुर्वेद' की काण्व तथा माध्यन्दिन संहिताओं में ४० अध्यायों में दर्शपौर्ण-मास, अन्वाधान, अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थापन, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, प्रवर्ग्य तथा ब्रह्मविद्या प्रति-पादित हैं। प्रायः ये ही विषय ब्राह्मण-भाग सहित 'कृष्ण-यजुर्वेद' की संहिताओं में प्रतिपादित किए गए हैं।

बाह्य रूप से देखने पर यज्ञ किसी देवताविशेष के लिए हव्य का अग्नि में प्रक्षेप-मात्र है; किन्तु वस्तुतः वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। यज्ञ विलक्षण रहस्य से युक्त है। यज्ञ का उद्देश्य है मानव को सर्वविध शुद्धि प्रदान कर परार्थपरायण करना और अन्त में परम निःश्रेयस् की उपलब्धि कराना। 'पुरुषसूक्त' से स्पष्ट है कि लोकमंगल के लिए स्वार्थ का बलिदान ही यज्ञ है; स्वयं आदि-पुरुष ने जगत्सृष्टि-रूप यज्ञ में अपनी बलि दी। इस प्रकार यज्ञ-भावना लोकोपकार की प्रेरिका है।

'यजुर्वेद' के मन्त्रों में उपनिबद्ध विचार समय की सीमा से परे हैं और सार्वकालिक एवं सार्वजनीन हैं। उनका आधुनिक युग एवं जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। उनमें मानव के आध्यात्मिक जीवन से सम्बद्ध रहस्यों ही का नहीं अपितु लौकिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन-सम्बन्धी तथ्यों का भी चारु निरूपण हुआ है। 'यजुर्वेद' की कल्याणी वाणी सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए है, किसी वर्गविशेष की सम्पत्ति नहीं। एक ऋषि की उक्ति है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥

(२६/२)

अर्थात् "मैं इन कल्याणी वाणी को (सभी) मनुष्यों के लिए कहता हूँ—ब्राह्मण तथा राजन्य के लिए, शूद्र तथा वैश्य के लिए; अपने लोगों तथा अन्य देशीय जनों के लिए।" इससे उन लोगों को शिक्षा लेनी चाहिए जो वेदों के अध्ययन तथा अध्यापन का एकाधिकार द्विजों ही को देना चाहते हैं और स्त्री तथा शूद्रों को इस कल्याणी वाणी से वंचित रखना चाहते हैं। वस्तुतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि सभी समाज़रूप पुरुष के अंग हैं; फिर उनमें भेद-भाव कैसा ?

यजुर्वेदीय विचारधारा की सबसे महत्त्वपूर्ण देन इस विराट् जगत् में सार्वभौम ऐक्य की स्थापना है। 'यजुर्वेद' का चिन्तन सम्पूर्ण प्राणियों ही में नहीं प्रत्युत समग्र जगत् में एकता के दर्शन करता है। यह बात "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" (यह सब कुछ जो भूत तथा भाव्य है पुरुष ही है, ३१/२) ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्" (जगती में जो भी कुछ है वह सब ईश का वास्य है, ४०/१), "योऽसावादित्ये पुरुषःसोऽसावहम्" (जो वह आदित्य में पुरुष है वह मैं हूँ, ४०/१७), आदि उक्तियों से सुस्पष्ट है। 'यजुर्वेद' के ऋषि का कथन है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥
(४०/६-७)

अर्थात् "जो सब भूतों को अपने में और सब भूतों में अपने आपको देखता है वह संशयग्रस्त नहीं होता; जिस विज्ञानवान् व्यक्ति की दृष्टि में सम्पूर्ण भूत (अपना) आत्मा ही है उस एकत्व का दर्शन करने वाले को भला क्या मोह, क्या शोक ?" यदि आज यह ऐक्य की भावना हमारे हृदय में बद्धमूल हो जाए तो समस्त पारस्परिक वैमनस्य, विभिन्न देश, धर्म, जाति एवं वर्गों के व्यक्तियों के आपसी भेदभाव सदा के लिए मिट जाएँ; हम एक-दूसरे के सुख-दुःख, हानि-लाभ को अपना ही सुख-दुःख तथा हानि-लाभ समझने लगें, पारस्परिक भेदभाव को त्याग कर सद्भाव एवं प्रेम का व्यवहार करने लगें; और ईर्ष्या, द्वेष तथा घृणा आदि अवगुण धरा से तिरोहित हो जाएँ।

यजुर्वेदकालीन साम्यवाद तथा समाजवाद सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर द्वारा व्याप्त मानता है, उसे ईश्वर की सम्पत्ति स्वीकार करता है। अतः मनुष्यविशेष का यहाँ कुछ भी नहीं है। उसे जो कुछ भी मिला है उसका त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥
(४०/१)

अर्थात् "जगती में जो भी कुछ है वह (सब) ईश द्वारा वास्य है। अतः त्याग-पूर्वक भोग करो; किसी के भी धन की कामना न करो।" यदि आज का मानव इस भावना को हृदयंगम कर ले तो चोरी-डकैती, लूट-खसौट, मुनाफ़ा-खोरी, तस्कर-व्यापार आदि धनप्राप्तिहेतु अनैतिक आचरण सर्वथा समाप्त हो जाएँ और समाज में शान्ति, सद्भाव तथा प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो जाए।

'यजुर्वेद' में सार्वभौम मैत्री-भाव पर बल दिया गया है। देखिए यह मन्त्र—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥
(३६/१८)

अर्थात् "सम्पूर्ण प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें; मित्र की ही दृष्टि से मैं समग्र प्राणियों को देखूँ; हम (एक-दूसरे को) मित्र की दृष्टि से देखें।" आज के मानव के लिए यह कितना महनीय सन्देश है !

यजुर्वेदकालीन समाज सुपथहेतु देवों से प्रार्थना करता था और पापकर्मों से दूर रहता था। एक ऋषि की उक्ति है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।

(४०/१६)

अर्थात् "हे समस्त मार्गों के ज्ञाता अग्नि ! हमें धनार्थ शोभन मार्ग से ले जाइए; कुटिलतापूर्ण पाप को हमसे अलग रखिए; हम आपकी अत्यधिक नमस्कार-पूर्ण प्रार्थना करते हैं।" आज भी हमें सुपथ पर चलने तथा कुटिलता एवं पापाचरण से दूर रहने की उतनी ही आवश्यकता है। तत्कालीन व्यक्ति भद्र का ही वरण करता था। एक ऋषि की सविता से प्रार्थना है—

विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।

(३०/३)

अर्थात् "हे सविता ! सम्पूर्ण दुरितों को (हमसे) दूर ले जाइए; जो भद्र है उसे हमारे प्रति प्रेरित कीजिए।" वह भद्र के श्रवण तथा दर्शन की कामना करता है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

(२५/२१)

अर्थात् "हे देवों ! हम कानों से भद्र सुनें और आँखों से भद्र देखें।" मन के भी शिव संकल्प से युक्त होने की प्रार्थना की गई है— "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।" (३४/१)। वह सब ओर से भद्र संकल्पों अथवा विचारों की अभिलाषा करता है—

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ।

(२५/१४)

अर्थात् "भद्र संकल्प अथवा विचार हमारे पास सब ओर से आएँ।" आज के जीवन में इस भद्रता के संगमन की महती आवश्यकता है।

यजुर्वेदीय दर्शन अत्यधिक आशावादी है। वह मनुष्य को लौकिक जीवन

में सुखी, सम्पन्न, स्वस्थ, बलिष्ठ कर्मठ एवं दीर्घजीवी होने की प्रेरणा देता है। देखिए यह मन्त्र—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि
मनुरसि मन्युं मयि धेहि
सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

(१९/९)

अर्थात् "आप तेज हैं, मुझमें तेज का आधान कीजिए; आप वीर्य हैं, मुझमें वीर्य का आधान कीजिए; आप बल हैं, मुझमें बल का आधान कीजिए; आप ओज हैं, मुझमें ओज का आधान कीजिए; आप मन्यु अथवा कोप हैं, मुझमें मन्यु का आधान कीजिए; आप सह अथवा अभिभवशील शक्ति हैं, मुझमें सह का आधान कीजिए।" एक अन्य मन्त्र में प्रार्थना की गई है–

सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः।

(८/५३)

अर्थात् "हम प्रजाओं से शोभन प्रजावाले, वीरों से शोभन वीरों वाले और पुष्टियों से शोभन पुष्टियुक्त हो जाएँ।" अन्य मन्त्र में सौ वर्ष अथवा उससे भी अधिक दैन्यभावरहित होकर जीने की कामना की गई है—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतंश्रृणुयाम शरदः शतं
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

(३६/२४)

अर्थात् "हम सौ शरत् देखें, सौ शरत् जीवित रहें, सौ शरत् सुनें, सौ शरत् बोलें, सौ शरत् अदीन होकर रहें; (बल्कि) सौ शरत् से भी अधिक।" परन्तु कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की अभिलाषा की गई है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

(४०/२)

ये विचार निश्चय ही आधुनिक मानव- समाज के लिए आशावान् एवं कर्मठ जीवन-हेतु एक अत्यन्त स्वस्थ आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

'यजुर्वेद' में मानवकल्याण, तृप्ति तथा शान्ति की कामना की गई है। एक ऋषि के शब्द हैं—

मनो में तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत
श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत
गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥

(६/३१)

अर्थात् "मेरे मन को तृप्त कीजिए, मेरी वाणी को तृप्त कीजिए, मेरे प्राणों को तृप्त कीजिए, मेरे नेत्रों को तृप्त कीजिए, मेरे कानों को तृप्त कीजिए, मेरी आत्मा को तृप्त कीजिए, मेरी प्रजा को तृप्त कीजिए, मेरे पशुओं को तृप्त कीजिए, मेरे गणों अथवा मनुष्यों को तृप्त कीजिए, मेरे गण अथवा मनुष्य तृषित न रहें।" एक अन्य मन्त्र में शान्तिहेतु प्रार्थना है—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।

(३६/१७)

अर्थात् द्युलोक की शान्ति, अन्तरिक्ष की शान्ति, पृथिवी की शान्ति, जलों की शान्ति, ओषधियों की शान्ति, वनस्पतियों की शान्ति, विश्वेदेवों की शान्ति, ब्रह्मरूपा शान्ति, सर्वरूपा शान्ति, शान्तिरूपा शान्ति—वह शान्ति मेरे पास आ जाए।" असन्तुष्ट, अतृप्त एवं अशान्त मानव के लिए तृप्ति एवं शान्तिहेतु की गई इन प्रार्थनाओं का आज भी महत्त्व अक्षुण्ण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'यजुर्वेद' में उपनिवद्ध उपदेश तथा विचार आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में भी अत्यधिक महत्त्व रखते हैं और उसे विविध प्रेरणा प्रदान करते हैं। उनकी आज भी उतनी ही प्रासंगिकता है।

□

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।।

सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी (परस्पर)कल्याण का चिन्तन करें, कोई भी दुःख का भागी न हो।

आधुनिक विज्ञान को वैदिक चुनौती

—विजयेन्द्र कुमार

वेद समस्त ज्ञान का भण्डार है, यह सर्वविदित है। अनेक ग्रन्थों और लेखों से यह सब वास्तविकता प्रमाणित हो चुकी है। निम्न ग्रन्थों के नाम इसके लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

१. फिजिक्स तथा कैमिस्ट्री	लेखक– डॉ० धर्मदेव मेहता
२. मैथमेटिक्स इन वेदाज्	,, ,,
३. बेसिस ऑफ् एस्ट्रोलॉजी इन वेदाज्	,, ,,
४. मैडिसन इन वेदाज्	,, ,,
५. इंजिन इन वेदाज्	लेखक–स्वामी भूमानन्द सरस्वती
६. अनाटोमो इन वेदाज्	,, ,,
७. साइन्स एण्ड वेदाज्	संपादन द्वारा श्री ईश्वरभाईपटेल
८. वैदिक मैथमेटिक्स	जगद्गुरु शंकराचार्य

तब भी वैदिक शोधकर्ताओं के कार्यों के महत्त्व का यह कह कर निम्न मूल्यांकन किया जाता है कि आधुनिक विज्ञान के द्वारा किसी सिद्धान्त की जानकारी प्रकाशित करने के बाद आपने इसे वेदों में ढूंढ दिया है, पहले आप इसके विषय में संसार को सूचित क्यों नहीं कर सके ? इस लेख को लिखने का उद्देश्य वेदों में वर्णित कुछ उन तथ्यों को प्रकाश में लाना है जो आधुनिक विज्ञान को ज्ञात नहीं हैं अथवा आधुनिक विज्ञान की मान्यता वैदिक मान्यता से भिन्न है।

यह सर्वविदित है कि जो सिद्धान्त प्रायोगिक आधार पर नहीं प्रतिपादित किया गया और उसके विषय में एक परिकल्पना मान ली गई, वह परिकल्पना बाद में अशुद्ध सिद्ध हुई है। उदाहरण के लिए परमाणु संरचना संबंधी सिद्धान्त एवगेड्रो, वजोनियस आदि से चलकर कितने ही विचारकों से होते हुए आधुनिक स्थिति तक पहुँचे हैं। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियमों में भारतीय

वैज्ञानिक डॉ० जयन्त विष्णु नारलीकर के द्वारा संशोधन किया गया है। आइन्सटाइन के सापेक्षता के सिद्धान्त में भी कितने दिनों के पश्चात् त्रुटि ज्ञात हुई है। इसी प्रकार निम्न वर्णित वैदिक तथ्यों का उत्तर आधुनिक विज्ञान की देन है। यहाँ केवल इन वैदिक तथ्यों को उल्लिखित किया जा रहा है जिनके विषय में आधुनिक विज्ञान अब तक चुप है अथवा विपरीत मान्यता रखता है।

सबसे पहले तेज गति को ही लें—पैदल-बैलगाड़ी-रेलगाड़ी-वायुयान की तीव्रता से होता हुआ आधुनिक विज्ञान राकेट की गति की तीव्रता तक पहुँचा है। अब निम्न मंत्र पर विचार करें–

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥

(ऋ० १/१८३/१)

इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया गया है कि– "हे अश्विदेवों ! उस **मन से भी अधिक वेग वाले रथ के द्वारा** उत्तम कर्म वाले यजमान के घर को पक्षी के समान गति से प्राप्त होओ।"

इस प्रकार मंत्र में मन की गति से अधिक तीव्र गति का वर्णन है। आधुनिक विज्ञान का यह लक्ष्य इस गति को प्राप्त करना होना चाहिए।

अब एक दूसरे वैदिक तथ्य पर विचार करें। आधुनिक विज्ञान की मान्यता है कि सूर्य स्वयं प्रकाशित ग्रह है और चन्द्रमा इत्यादि उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। अब निम्न मन्त्र पर विचार करें—

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥

(ऋ० ८/९८/२)

इस मंत्र के अर्थ के अनुसार यह बताया गया है कि आदित्य अर्थात् सूर्य स्वयं प्रकाशित नहीं है वरन् किसी अन्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है।

इसके अतिरिक्त निम्न मंत्र भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र संख्याय येमिरे ॥

(ऋ० ८/९८/३)

अब अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों (आइन्सटाइन का सापेक्षता का सिद्धान्त, न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी नियम) की भाँति आधुनिक विज्ञान के सामने

अब यह कार्य शेष है कि इस सिद्धान्त पर कि सूर्य स्वयं की शक्ति से प्रकाशित है, पुर्नविचार करे और तथ्य से संसार को परिचित कराये।

आधुनिक विज्ञान में ऊर्जा की अविनाशिता का सिद्धान्त है। इसके अनुसार ऊर्जा न पैदा की जा सकती है; न नष्ट की जा सकती है केवल ऊर्जा एक प्रकार की ऊर्जा से दूसरी प्रकार की ऊर्जामें बदली जा सकती है। उदाहरण के लिए विद्युत् मोटर में विद्युत् ऊर्जा को यान्त्रिक में बदलते हैं और जेनरेटर में यान्त्रिक ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा में बदलते हैं, आदि। वेद में इस प्रकार की मशीन के द्वारा कार्य का वर्णन है जिसमें कोई ऊर्जा नहीं ली गई है, केवल कार्य हुआ है।

यदि आधुनिक विज्ञान के द्वारा इस प्रकार की मशीन बनाई जा सके तो सोचिये संसार का कितना भला होगा। निम्न मंत्र पर विचार करें—

आरे अघा को न्वि१त्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति।
मास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत्॥

(ऋ० १०/१०३/१०)

उपर्युक्त मंत्र में ऐसी मशीन की कल्पना की गयी है जिसे कोई उर्जा नहीं दी गई और उससे काम लिया जा रहा है।

आधुनिक विज्ञान को इस मशीन के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार अन्य भी बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ आधुनिक विज्ञान नहीं पहुंच सका है अथवा उसकी मान्यता वैदिक मान्यताओं का अनुसरण नहीं करती। नये लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास की तथा जहाँ वेद में और आधुनिक विज्ञान में सहमति नहीं है, उस विषय पर नये सिरे से शोध-कार्य करने की आवश्यकता है।

वैदिक युग में संसदीय प्रणाली

—जबरसिंह सेंगर

वैदिक युग में राजा सर्वोपरि होता था परन्तु उसके ऊपर संसदीय (सभा-समिति) दो संस्थाओं का विशेष अंकुश था जिससे वह निरंकुश नहीं हो पाता था। वैदिक युग में शासन का स्वरूप धर्म के साथ-साथ रहता था। पुरोहित एवं सेनापति का विशेष महत्त्व था ही, परन्तु सभा-समिति का सभी पर अंकुश होता था।

'समिति' शब्द का अर्थ है- दूर-दूर से आकर एकत्रित लोग। 'अथर्ववेद' सप्तम कांड के १२ वें सूक्त में भगवान् के उपदेश से पता चलता है कि इन सभाओं में बड़े-बड़े विद्वान् (ज्ञानी) इकट्ठे होते थे और राजा को राज्य कार्य के लिए शिक्षा देते थे। राजा इन लोक-सभाओं की अवहेलना नहीं कर सकता था, क्योंकि ये सभायें प्रजापति परमात्मा से उत्पन्न समझी जाती थीं। इन सभाओं को नरिष्ठा (कल्याणकारी) के नाम से भी पुकारा जाता था। उनमें उपस्थित ज्ञानी और वर्चस्वी सभासदों की सम्मति के अनुसार ही राजा कार्य करता था। यथा—

सभा च या समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मां स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥
विद्म ते सभे नाम नरिष्ठा नाम वा असि। ....
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमाददे।
अस्याः सर्वस्याः संसदो आभिन्द्र भगिनं कृणु ॥

(अथर्ववेद ७/१२/ १-३)

उक्त मंत्र के अनुसार वेद भगवान् का यह वाक्य कि राजा वही श्रेष्ठ है जो इन लोक-सभाओं के पीछे चलने वाला हो। आगे वेद भगवान् कहते हैं-

राजानः सत्यः समितीरियानः

(ऋग्वेद ६/६२/६)

सभा–समिति, सेना और विद्वान् उसी राजा के पीछे चलते हैं जो कि प्रजा की सम्मति के पीछे चलने वाला हो। जो राजा सभा और समिति की सम्मति की परवाह नहीं करता उसे सभा–समिति से सहायता की आशा करना व्यर्थ है। यथा—

सविशोऽनुव्यचलत। तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलत्।

(अथर्व० १५/६/१-२)

अतः राजा सभा–समिति के अनुसार आचरण भी करते थे। वेद भगवान् राजा को तीन समितियों की आज्ञाओं के पालन का उपदेश देते थे– अर्थात् सभा, समिति, एवं मंत्रिमंडल।

त्रीणि राजाना विदस्थे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।

(ऋग्वेद ३।३८)

उक्त आज्ञा का पालन राजा वैदिक युग में करता था। वेद राजा को सभापति के नाम से भी संबोधित करते हैं--

नः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च।

(यजु० १६।२४)

इससे स्पष्ट होता है कि राजा सभा की बिना स्वीकृति के कोई कार्य नहीं कर सकता था और वास्तव में शासन करने वाली संस्था सभा ही है। राजा मात्र उसका सभापति है।

प्रो० के० पी० जायसवाल ने सभा–समिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि आर्य–जाति के प्राचीन रूप, साहित्य में हम पाते हैं कि उस काल में राष्ट्रीय जीवन और विधियों को लोकप्रिय सभा-समितियों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता था। समिति सम्पूर्ण प्रजा की राष्ट्रीय सभा थी, राजा का चुनाव करती थी। राजा के सभी महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार किया करती थी। समिति विकसित समाज की संस्था थी। दूसरी संस्था सभा थी, जिसे नरिष्ठा भी कहते थे। संभवतः यह चुने हुए विशिष्ट व्यक्तियों की समिति की सत्ता के अंतर्गत काम करने वाली एक स्थायी समिति थी। समिति और सभा प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहीं गई हैं। सभा के अधिकार क्षेत्र समिति से अधिक थे। 'अथर्ववेद' के ७।१२।१ के अनुसार सभा और समिति की निम्न प्रकार से व्याख्या की गई है :—

विल्सन तथा लुडिवग महोदय ने सभा को उच्चतर भवन और समिति को निचला भवन कहा है। त्सिम्मर के अनुसार, जिनका मत अधिक उपयुक्त माना जा सकता है, सभा ग्राम-संस्था कहीं गई है एवं समिति केन्द्रीय संस्था। 'अथर्ववेद' १०।८।८-१३ तक दो मंत्रों के आधार पर पहले सभा का, बाद में समिति का, उसके बाद में मंत्रणा-परिषद् का उल्लेख मिलता है। यह क्रम उस समय के संवैधानिक विकास का परिचायक है। प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक ग्राम प्राय: स्वतन्त्र रूप में अपना पृथक्-पृथक् प्रबन्ध करता था। सर्वसाधारण विषयों को तय करने के लिए ग्राम-निवासियों ने प्रबन्धकारिणी स्थानीय संस्था बना ली थी, जो सभा के नाम से विख्यात हुई। कालान्तर में जब राज्य की स्थापना हुई और राजाओं के अन्तर्गत अनेक ग्राम आ गये तो सार्वजनिक विषयों के लिये केन्द्रीय प्रशासनिक संस्था की स्थापना हुई जो समिति कहलाई।

डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार 'ऋग्वेद' के मंत्रों में कई स्थलों पर सभा का उल्लेख है-(६।२८।६, ८।४।६, १०।३४।६), किन्तु उनसे उसके स्वरूप एवं कार्यों का उल्लेख नहीं मिलता। उसका अर्थ संसद भी है और सामाजिक सम्मेलन तथा सार्वजनिक विषयों पर विचार करने के लिये सभा-स्थान से भी अभिप्राय है। सभा में श्रेष्ठ व्यक्ति सभासद (ऋग्वेद १०।७१।१०) और सभा के योग्य व्यक्ति सभेय कहलाते थे (ऋग्वेद २।२४।१३)। उच्चकुल में उत्पन्न सुजात (ऋग्वेद १०।१।४) व्यक्ति सभा में आते थे। ऋग्वेद-कालीन सभा वृद्ध या प्रवर जनों की परिषद् या समिति थी-यह मत प्रो० के० पी० जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू पोलिटी' के अध्याय २ एवं ३ में व्यक्त किया है।

सभा—

सभा में विजय प्राप्त करने के लिये एक मंत्र पढ़ा जाता था—

विद्म ते सभे नाम नरिष्ठा नाम वा असि।
ये के चे सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥

(ऋग्वेद ७।२।२५)

अर्थात् हे सभा, मैं तेरा नाम जानता हूं, तेरा नाम नरिष्ठा (अजेय) है। इसलिए तेरे जितने सभासद् हों, वे सब समान विचार रखने वाले हों। डॉ० आर० के० मुकर्जी की पुस्तक 'हिन्दू सभ्यता' (पृष्ठ ८३) में भी उक्त मंत्र का विस्तृत समर्थक विश्लेषण मिलता है। विद्वान् वेदोपाध्याय का कथन है कि सभा न्याय का कार्य करती थी और उसका प्रधान राजा स्वयं होता था। इसको राष्ट्रीय न्यायालय की भी संज्ञा दी गई है। सभा का अध्यक्ष सभापति कहा जाता है। राजा सभा के निकट रहता था और उससे काफी अच्छे सम्बन्ध रखता था।

वैदिक साहित्य में सभा के जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे भी सभा का ग्राम-संस्था होना सिद्ध होता है। ऋग्वेद १०।३४।६ में अश्व तथा रथ पर आरूढ सभा के जाते हुए सभासदों का उल्लेख मिलता है। संभवतः ग्राम के धनी-मानी व्यक्तियों का विशेष स्थान था। वे सब रथ पर या घोड़ों पर चढ़कर जाते होंगे। एक स्थान पर सभा के सदस्यों को न्यायकर्ता माना गया है। न्याय करते समय इनके ऊपर किसी प्रकार की शंका नहीं की जाती थी। यथा—

सर्वे नंदन्ति यशसागतेन सभासाहेन संख्या संखायः ।
किल्विषस्पृत् पितुषणिहर्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ।।

एक स्थान पर सभा के सदस्यों की विशेषताएं दर्शाते हुए लिखा गया है कि जहाँ अच्छे आदमी न हों, वह सभा नहीं है और जो अन्याय की बात करें वे भी अच्छे आदमी नहीं हैं और वे पुरुष जो अपने स्वार्थों का त्याग कर न्याय की बात करते हैं वे ही अच्छे पुरुष माने जाते हैं। यथा—

न सा सभा यत्र न सन्ति सन्तो न ते सन्तो ये न भणन्ति धर्मम् ।
रागं च दोषं च विहाय धर्मं भणन्तश्च भवन्ति संताः ।।

ऋग्वेद ८।४।८ के अनुसार सभा के सदस्य कुछ स्वार्थी तत्त्वों का संभ्रान्त सभासद बनने के लिये प्रार्थना करते थे– "यहाँ जो लोग उपस्थित हैं– मैं उनके तेज एवं ज्ञान को ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र, मुझे इस सम्पूर्ण संसद् का नेता बनाओ। जो तुम्हारा मन किसी अन्य ओर गया हुआ है या तुम्हारा मन किसी बात को पकड़ कर बैठ गया है, मैं तुम्हारे उस मन को हटाता हूँ, तुम्हारा मन मेरे अनुकूल हो जाये"। कहने का तात्पर्य यह है कि सभा का मुख्य कार्य न्याय करना होता था, क्योंकि उसे नरिष्ठा कहा गया है।

विदंते सभे नाम नरिष्ठा, नाम वा असि

(जातक पृ० ५०६)

'ऋग्वेद' में सभा को 'किल्विष–स्पृत्' कहा गया है, जिसका अर्थ है पाप या अपराध का परिमार्जन करने वाली सभा। राजा भी सभा के प्रति उत्तरदायी था। सभा आजकल की संसदों की भाँति राष्ट्र नेता अर्थात् राजा को राज्य सम्बन्धी संचालन कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराती थी। एक स्थान पर लिखा गया है कि राजा सभा का सम्मान करता था।

समिति—

प्रो० के० पी० जायसवाल ने समिति को निचला सदन माना है और कुछ

विद्वानों ने इसको एक केन्द्रीय राज्य संस्था माना है। 'ऋग्वेद' में राजा कहता है–

> एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमाददे।
> अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु॥
>
> यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
> तद्व आवर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥

अर्थात् मैं तुम्हारा विचार और तुम्हारी समिति स्वीकार करता हूँ। ऋग्वेद में इस समिति के अंतर्गत राजनैतिक कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों के सम्पादित होने का आभास पाते हैं। इसमें बुद्धिजीवी अधिकांश रूप में होते थे और इसका प्रधान 'पति' या 'ईशान' (अथर्ववेद ६।१२।२) के नाम से पुकारा जाता था। ईशान को पूरे अधिकार समिति के संचालन के लिये थे। इनके कुछ सदस्य राजा द्वारा नियुक्त, कुछ जनता द्वारा और कुछ बुद्धिजीवियों या धनी मानी पुरुषों से चुने जाते थे। ग्रामपति की इस समिति में विशेष भूमिका रहती थी। वह समिति के सदस्यों को अपने व्यवहार एवं कार्यों से आकर्षित करता था। राजा और समिति में राष्ट्र की अभिवृद्धि के कारण समानता का होना आवश्यक था। इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि राजा और समिति दोनों के मंत्र, मन, चित्त एवं हृदय समान हों (ऋग्वेद १०।७१।१०)। सभा और समिति में क्या भेद था—यह वैदिक साहित्य में स्पष्ट नहीं है, पर वैदिक मंत्रों का अनुशीलन कर विद्वान् इस मत पर पहुँचे हैं कि समिति सभा की तुलना में बड़ी सभा थी और यह माना जाता था कि वह सम्पूर्ण प्रजा का प्रतिनिधित्व करती थी। राजा समिति में उपस्थित रहता था और समिति के "पति" अध्यक्ष को ईशान कहा जाता था (ऋग्वेद १०।१९१)। समिति के सदस्यों को सम्बोधित कर कहा गया है—"तुम एक साथ मिलकर एकत्र हो, तुम साथ मिलकर एक बात कहो, तुम्हारे मन एकसदृश हों। पूर्वकाल के देवता लोग समान रूप से चिन्तन करते हुए जैसे बरतते रहे हैं। तुम्हारा मन एक समान हो, तुम्हारी सम्मति एक समान हो, तुम्हारा मन और चित्त समान हो, तुम्हारे निर्णय समान हों, जिससे तुम प्रसन्नतापूर्वक एक मत होकर रह सको"। राजा की नियुक्ति समिति द्वारा होती थी और राजा उसके प्रति उत्तरदायी होता था। राजा सभाओं को स्वीकार करते हुए उनके समक्ष निम्न प्रतिज्ञा करता था—

> पृष्ठो मे राष्ट्रमुदरमंसो ग्रीवाश्च श्रोणीति।
> उरू अरत्नी आनुनीर्विशो मेऽगानि सर्वतः॥

(यजु० २०।८)

अर्थात् "मेरी प्रजाओं ! मैं तुम्हारे विचार और तुम्हारी सभा को स्वीकार करता हूँ । तुम्हारी सभायें जो भी निर्णय लेंगीं, उसे मैं सदा ही स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता हूँ । इससे स्पष्ट है कि राजा समिति के निर्णयों का क्रियान्वयन करता था । संवैधानिक दृष्टि से सार्वभौम सत्ता समिति के हाथ में थी । राज्य की नीति निर्धारित करते समय सभी को एकमत होना पड़ता था—'समानो मंत्रः समितिः समानी, सभी सदस्यों के समान उद्देश्य और समान विचार की व्याख्या भी समिति में होती थी । राजा और समिति के सम्बन्ध आजकल की संसद् और प्रधानमन्त्री की तरह थे । राजा का यह कर्तव्य था कि वह समिति की कार्यवाहियों में यदि उपस्थित नहीं होता था तो समिति अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पाती थी । जब तक समिति रही तब तक प्रत्येक कार्यवाही में राजा उपस्थित रहता था । जैसे—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।
समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।
समानी व आकूतिः समानाः हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।

(ऋग्वेद १०।४१।२-४)

संधि और विग्रह के समय समिति की बैठकें बुलाई जाती थीं । अथर्ववेद के २।२७ में समिति की स्पष्ट व्याख्या की गई है । समिति में प्रार्थना की जाती थी कि हे ईश्वर हमारा शत्रु परास्त हो और हमारी विजय हो । राष्ट्र की प्रगति के विकास सम्बन्धी कार्य समिति किया करती थी । बुद्धिजीवी समिति में आने की इच्छा प्रदर्शित करते थे— **विशस्त्वा सर्वाः वाञ्छन्तु** । (ऋग्वेद २१।७३, अथर्ववेद ६।८७।१, **ध्रुवाय ते समितिः कल्पन्तामिह** (अथर्ववेद ६।८८।३), **त्वां विशो वृणतां राज्याय** (अथर्ववेद ३।४।२) ।

कुछ विदेशी इतिहासकारों ने वैदिक युगीन समिति की आलोचना भी की है । समिति के अन्दर शोर होना, बाहुबल का प्रयोग, अनुशासन-हीनता का भी वर्णन किया है । पर हमें जो मंत्र मिले हैं, और जिसमें समिति के सदस्यों ने इन्द्र से एक समान होकर प्रार्थना की है, उनसे स्पष्ट है कि उस समय कोई अनुशासन-हीनता या लज्जास्पद बात नहीं थी ।

सभा और समिति के अतिरिक्त एक और सभा थी, जिसका नाम बृहद्रथ था । इसका मुख्य कार्य यज्ञ, यज्ञादि विषयक शुद्ध धार्मिक कृत्य करना था । गौतम-

गृह्यसूत्र में जो हमें तथा समाज को निर्देश मिलते हैं, उन्हीं का परिपालन यह संस्था करती थी। एक और संस्था का उल्लेख भी मिलता है— सेना । आगे चलकर ब्राह्मण ग्रंथों ने सभा और समिति का स्थान समाप्त कर दिया।

ड्रकमियर ने सभा और समिति के पतन की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि राजाओं के अधिकार-क्षेत्रों में वृद्धि ने सभा-समिति के पतन में योग दिया और उसी काल में प्राय: धीरे-धीरे सभा-समिति का रूप बिगड़ने लगा। राजा का प्रभुत्व सभा और समिति पर छा गया। राजा को आगे चलकर दैवी शक्ति के रूप में माना जाने लगा। पर वैदिक युगीन राजा सभा और समिति के निर्णयों को क्रियान्वित किया करता था ; वास्तविक शक्ति सभा और समिति नामक संसद में निहित थी।

○ ○

न सा सभा यत्र न सन्ति सन्तो
न ते सन्तो ये न भणन्ति धर्मम् ।
रागञ्च दोषञ्च विहाय धर्मं
भणन्तश्च भवन्ति सन्ता : ।।

वह सभा नहीं जहाँ सज्जन नहीं है , वे सज्जन नहीं जो धर्म की बात नहीं करते। राग और दोष को छोड़कर धर्म की बात कहने वाले सज्जन पुरुष होते हैं।

वेद और गौ

—सत्यव्रत 'राजेश'

आर्य संस्कृति में गौ का बहुत उच्च स्थान है। वहाँ गौ को माता कहा जाता है। 'गावो विश्वस्य मातरः', सर्वदेवमयी हि गौः, गाय के रोम-रोम में देवों का वास है, आदि वाक्य विद्वान् तथा जनसाधारण की वाणी से सुने जा सकते हैं। अतः गाय का माहात्म्य आर्य संस्कृति का एक अंग है, कुछ भाष्यकारों की अज्ञानता के कारण कहीं-कहीं गाय को मार कर होम करने जैसा कुकृत्य भी वेदों में देखने को मिलता है, किन्तु यदि उन्हीं मन्त्रों के ऋषिकृत भाष्य को देखा जाए तो यह मान्यता निर्मूल हो जाती है तथा यह स्पष्ट हो जाता है कि उन मन्त्रों में इसका लेश भी नहीं है।

वेद गाय के महत्त्व को स्वीकार करता है तथा उसे अघ्न्या न मारने योग्य तथा 'अदिति' कभी टुकड़े न किये जाने वाली, आदि नामों से अभिहित करता है, वेद में अनेक स्थलों पर गाय के न मारने अपितु रक्षा करने का विधान है, वेद के अनेक मन्त्रों तथा सूक्तों का देवता गाय है, जहाँ उसके गुणों का वर्णन तथा उसकी उपयोगिता का चित्रण किया गया है।

ऋग्वेद के एक सूक्त में गायों की महत्ता का चित्रण किया गया है। वहाँ कहा गया है कि गाएं हमारे घर में आएं, हमारा मंगल करें, गौशाला में बैठें तथा हमारे यहां रमण करें, अनेक रूपों वालीं, बछड़े-बछड़ियों से युक्त ये गाएं गौशाला में होवें तथा ऐश्वर्य वाले गोस्वामी के लिये उषा से भी पूर्व दूध प्रदान करें[1]।

गौ रखने वाला यज्ञ करता है तथा बदले में यज्ञ करने तथा दान देने वाले को वह ऐश्वर्यों का भण्डार परमात्मा धन-धान्य से भर देता है। ऐसे याज्ञिक दाता को धन सदा मिलता है। उसके धन का कभी अपहरण नहीं होता, प्रभु इसे अधिकाधिक धन से बढ़ाता हुआ ऐसे स्थान पर रखता है जहाँ पाप रूप शत्रु या बाह्य शत्रु इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते[2]।

प्रभु ऐसी कृपा करें कि न तो हमारी गौवें नष्ट हों, न हमसे दूर हों, न उन्हें चोर पीड़ा पहुँचा सके, न शत्रु या व्याधि सता सकें, इन्हीं से देवयजन किया

जाता है तथा दान भी दिया जाता है। गोस्वामी इन गौवों के साथ सदा संयुक्त रहे[3], कितनी अपनत्व भरी प्रार्थना है गौवों के लिये वेद में, मानो कोई अपना निकट का सम्बन्धिजन हो जिसके लिये सब प्रकार की सुरक्षा की प्रार्थना की जा रही हो।

जब युद्ध के घोड़े धूल उड़ाते आएं तब भी इन गायों को कोई हानि न पहुँचे। इन्हें कभी कोई भी न मारे, कभी इनके लिये वधस्थल न बने, याजक मनुष्य के पास रहती हुई ये गौवें विस्तृत आवागमन योग्य तथा निर्भय प्रदेश में विचरें[4], गौवें रक्षणीय हैं, युद्ध के अवसर पर भी इन्हें हानि नहीं पहुँचनी चाहिये, इन्हें कहीं भी मारने के लिये न ले जाया जाना चाहिये, चाहे वह यज्ञवेदी हो अथवा सूनागृह, ये तो यज्ञकर्ता यजमान के पास रहें तथा इनके चरने के स्थान ऐसे हों जहाँ ये स्वतन्त्रतापूर्वक घूमें फिरें, साथ ही वह स्थान सब प्रकार से भय रहित हों।

गायें मेरा ऐश्वर्य हैं, इन्हें मुझे ऐश्वर्य के भण्डार प्रभु ने दिया है इन्हीं के दूध के साथ मिलकर सोम पीने के योग्य बनता है, हे मनुष्यों, ये गाएं ही सच्चा धन हैं, मैं ऐश्वर्य-युक्त इस गोधन को हृदय तथा मन से चाहता हूँ[5], आजकल भी ग्राम्यजन गौवों के झुण्ड को धन ही कहते हैं, यह वेद से ही सीखा है उनके पूर्वजों ने।

हे गौवों! तुम्हारी महिमा अद्भुत है, मैं उसका क्या बयान करूँ, तुम्हारा दूध तथा घृत आदि भी अमृत है, 'तुम कृश को बलिष्ठ बना देती हो तथा कान्ति रहित को दर्शनीय, तुम्हारे रम्भाने में भी मंगल छिपा है, तुम हमारे घर को उभयलोक के सुखों से भर दो, हम सभाओं में आपका भरपूर गुणगान करें[6]' देखा न गौवों का करिश्मा, उनका दूध, घी, दही खाकर कमज़ोर व्यक्ति बलिष्ठ बन गया तथा रोग आदि के कारण निस्तेज हुए व्यक्ति के भी मुख पर तेज़ झलकने लगा। गौवों का दूध सात्विक होने के कारण यह गोपति यज्ञ, दान तथा उपासना में मन लगा कर अपना लोक तथा परलोक सुधार रहा है। फिर वह सभाओं में क्यों इनके गुण न गाए।

हे गौवों! तुम खूब फलो-फूलो, बछड़े-बछड़ी तुम्हारे साथ घूमें। तुम अच्छा घास खाओ, सुखपूर्वक जल पीने के स्थान में जाकर शुद्ध जल पिओ, चोर तथा पाप-प्रशंसक का तुम पर अधिकार न हो। तुम दीर्घजीवी होवो, काल का कठोर वज्र तुमसे दूर रहे[7]।

इस पूरे सूक्त में गौवों के महत्त्व तथा उनकी उपयोगिता पर बहुत उत्तम ढंग से प्रकाश डाला गया है। इसकी अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

एक अन्य मन्त्र में गौ को रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री तथा आदित्य की बहन बतलाकर उसे अमृत का केन्द्र कहा गया है। वेद का यह भी उपदेश है कि मैं तुम सब ज्ञानवान् तथा बुद्धिमान् लोगों से कहता हूँ कि इस अहिंसनीय गाय को मत मारो क्योंकि यह निरपराध है,[8] अथर्ववेद उद्घोष करता है कि निरपराध को मारने का परिणाम बड़ा भयंकर है,[9] सर पर बैठी निरपराध की हत्या तुम्हें सुख से न सोने देगी तथा जब इसका फल मिलेगा तब तुम्हें अन्दर तक रुला देगी।

यजुर्वेद में परमेश्वर से यजमान के पशुओं की रक्षा की प्रार्थना की गई है,[10] मन्त्र के पूर्वभाग में गोवाचक अघ्न्या शब्द का प्रयोग हुआ था। वहाँ गौवों की वृद्धि की प्रार्थना की गई थी,[11] गौवों की ओर संकेत करते हुए ही अन्तिम पद में उनकी रक्षा की प्रार्थना की गई है। एक मन्त्र में परमात्मा से सब दोपाए तथा चोपायों की रक्षा तथा पालना की प्रार्थना की गई है,[12] एक ऋचा में गौ हत्यारे तथा मानव–हत्यारे को देश से निष्कासन का आदेश है। जिससे वे मानव-समाज से दूर रहें, कभी निकट न आएं[13], यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि गौ हत्यारे तथा मानव-हत्यारे में भेद नहीं किया गया है तथा दोनों को एक ही प्रकार के दण्ड का विधान है।

गौ हत्या का स्पष्ट निषेध—

वेद के अनेक मन्त्रों में गौ हत्या का स्पष्ट निषेध मिलता है। इतना होने पर भी न जाने वेद के भाष्यकार तथा उनके अनुसरण करने वाले लोग कैसे वैदिक-काल में गौओं के मारने की बात लिख डालते हैं। कुछ मन्त्र देखिये—एक मन्त्र में कहा गया है कि हे ज्ञान रखने वाले, तू इस अखण्डनीय गौ को मत मार,[14] निघण्टु में गाय को अदिति इसी अभिप्राय से कहा गया है, यजुर्वेद में एक स्थल पर सब पशुओं के लिये अभय की प्रार्थना की गई है[15], जिसे अभयदान दिया जाए उसके मारने का निषेध स्वयं ही हो जाता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में गौवों को वधस्थल में ले जाने का स्पष्ट निषेध है[16], एक स्थान पर गौ को अखण्डनीया तथा विशेष दीप्ति वाली कह कर उसके न मारने का उल्लेख है[17], ऋग्वेद चेतावनी देता है कि कोई अल्पबुद्धि मनुष्य गाय को न मारे[18], ऐसी व्यवस्था समाज तथा राज्य की ओर से होनी चाहिये। वेद तो राजा को ऐसी व्यवस्था करने का आदेश देता है जिससे इनके राज्य में प्रजा तथा पशुओं को न कहीं किसी प्रकार का भय हो और न रोग[19], अपितु दो पैरों वाले तथा चार पैर वालों में सुख शान्ति बनी रहे[20]।

गौ हत्यारे को दण्ड—

वेद गौ हत्यारे को मानव हत्यारे से अभिन्न मानता है तथा दोनों को एक समान दण्ड की व्यवस्था करता है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि 'यदि तू हमारी गाय को मारता है, अश्व को मारता है या किसी पुरुष को मारता है तो हम तुझे शीशे की गोली से बेध देंगे, जिससे तू हमारा वीरघाती न बन सके[21]। मन्त्र में जहाँ गौघाती को मृत्यु-दण्ड का विधान है वहाँ एक रहस्य की बात भी है कि वह वीरघाती भी है। जब गौ आदि पशु मारे जाएँगे तब बालक तथा युवक आदि को दूध पर्याप्त मात्रा में न मिल सकेगा परिणामतः वे दुर्बल रहेंगे। इस प्रकार गौ हत्यारा वीर हत्यारा भी है। वीरों के अभाव में शत्रु राष्ट्र को पैरों से रोंदेंगे तथा देश पराधीनता की शृँखला में आबद्ध होगा। यह सब गौघाती से होगा। अतः वेद की दृष्टि में ऐसा पापी शीशे की गोली से बींधने योग्य है। यजुर्वेद में भी गौ हत्यारे को अन्तक अर्थात् मृत्यु को सौंप देने का— मृत्यु दण्ड देने का विधान है[22]।

इस प्रकार वेद गौ के महत्त्व, उपयोगिता, संरक्षण तथा उसकी वृद्धि का आदेश देता है तथा गौघातक को मृत्यु-दण्ड देने का निर्देश करता है। इतना होने पर भी जो लोग वैदिक-काल में गाय मारने या गाय का मांस खाने की बात कहते या लिखते हैं उनकी बुद्धि का आप्रेशन भगवान् ही करें।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि वेद में गौ शब्द पृथिवी, सूर्य-किरण, वाणी तथा धनुष की प्रत्यञ्चा आदि अर्थों में भी आता है। वहाँ गाय के घी, दूध आदि को भी गौ कहा है। अतः वेद का अध्ययन करते हुए मन्त्र के वर्णन के अनुसार विषय देखकर अर्थ करना उपयुक्त होगा न कि गौ शब्द का केवल सास्ना लाङ्गूल वाला पशु विशेष ही अर्थ करने का आग्रह वेदार्थानुमोदक होगा। तभी तो महाभारतकार कहता है—'गौवों का नाम अघ्न्या है, इन्हें कौन मार सकता है। वह संसार का अत्यन्त अहित करता है जो गाय या बैल को मारता है[23]।

१—आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसः दुहानाः ।। ऋ० ६।२८।१

२—इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वयं मुषायति।
भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये निदधाति देवयुम् ।। वही २

३—न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ।। वही ३

४—न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुपयन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ।। वही ४

५—गावो भगो गावो इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धदा मनसा चिदिन्द्रम् ।। वही ५

६—यूयं गावो मेदयथा कृशंचिद श्रीरंचित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ।। वही ६

७—प्रजावतीः सूयवसंरिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसो परिवो हेती रुद्रस्य वृज्याः ।। वही ६.२८.७

८—माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाम मृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।। ऋ० ८.१०१.१५

९—यजमानस्य पशून् पाहि ।। यजु० १.१

१०—अनामा हत्या वै भीमा ।। अथर्व १०.१.२९

११—आप्यायध्वमघ्न्याः ।। यजु० १.१

१२—द्विपादव चतुष्पात्पाहि ।। यजु० ३६.२२

१३—आरे गोहानृहा ।। ऋ० ७.५६.१७

१४—इमं "अदिति" अग्ने माहिंसीः ।। यजु० १३.४९

१५—अभयं नः पशुभ्यः ।। यजु० ३६.२२

१६—न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।। ऋ० ६.२८.४

१७—गाँ मा हिंसी रदितिं विराजम् ।। यजु० १३.४३

१८—गामा मा वृक्त मर्यो दभ्रचेताः ।। ऋ० ८.१०१.१६

१९—एषां प्रजानामेषाँ पशूनां का भेर्मा रोक् ।। यजु० १६.४७

२०—शमसह द्विपदेशं चतुष्पदे ।। यजु० १६.४८

२१—यदि नो गां हँसि यद्यश्वं यदि पुरुषम् । तंत्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसोऽवी-
रहा ।। अथर्व० १.१६.४

२२—अन्तकाय गोघातकम् ।। यजु० ३०.१८

२३—अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति ।
महच्चकाराकुशलं वृषं गांवा लभेत्तु यः ।। महाभारत शान्तिपर्व २६२.४७

शिक्षा, रोजगार और विकास

—बलभद्र कुमार हूजा

लखनऊ विश्वविद्यालय में भारत के श्रम–अर्थशास्त्रियों के रजत–जयन्ती समारोह में सम्मिलित होने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। इसकी अध्यक्षता कर रहे थे सुविख्यात अर्थशास्त्री गौतम माथुर। आजकल वे एप्लाईड मानव· शक्ति संस्थान के निदेशक हैं।

उन्होंने अपने अध्यक्षीय–भाषण में कहा कि "आज देश में गरीब-अमीर के बीच की खाई को पाटने की आवश्यकता है। यदि देश को आर्थिक प्रगति करनी है तो हमें अपनी आर्थिक नीतियों पर पुर्नविचार करना होगा। हमें विकास के सुनिश्चित पथ की खोज हेतु अपनी शिक्षा-नीतियों, श्रम-संगठनों, पूंजी-नियोजन, कार्य–कौशल, उत्पादकता, जनसंख्या तथा मानव--शक्ति सम्बन्धी प्रश्नों को नये मानदण्डों के आधार पर तोलना होगा।

आज एक ओर तो श्रमिक--वर्ग असमानता के गर्त में पड़ा कराह रहा है, दूसरी ओर धनिक-वर्ग ऐशो-इशरत के माहौल में डूबा हुआ है; और तीसरे महत्त्वाकाँक्षी गरीब लोग गरीबी के दानव से छुटकारा पाने हेतु प्रतियोगिता की अंधाधुँध दौड़ में लगे हैं, इसी से समाज में विस्फोट की स्थिति पैदा हो रही है।

अगले दिन शिक्षा, रोज़गार और विकास पर गोष्ठी थी। इसमें प्रो० विसादिया ने साक्षरता के कार्यक्रम को गति प्रदान करने की बात कही। श्री कृष्णमूर्ति ने सुझाव दिया कि प्रशिक्षक के कार्यक्रम लचीले होने चाहियें और श्री देशपांडे ने कहा कि अब वह समय आ गया है जब हमें देश के सन्मुख ठोस, व्यवहारिक कार्यक्रम उपस्थित करने चाहिएँ।

प्रो० देशपांडे की बात उठाते हुए मैंने कहा कि आक्स ब्रिज माडल पर आधारित हमारी शिक्षा–नीति में तुरन्त सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। हम केवल रोज़गार के नाकाबिल नौजवान तैयार कर रहे हैं और बिना सोचे-समझे सभी को कॉलिजों में प्रवेश देकर बेरोज़गारी के दुर्दिन को जरा दूर करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर रहे। हमने १०+२ के पाठ्यक्रम में हस्तकला के

प्रशिक्षण को नाममात्र का स्थान दिया है। इसके स्थान पर हमें दत्तचित्त होकर सभी विद्यार्थियों को ८+४ के अन्तिम चार वर्षों में किसी न किसी कला-कलाप में दक्षता ग्रहण करने के सुअवसर उपलब्ध कराने चाहिएँ जिससे १२ श्रेणी समाप्त करने पर १८ वर्ष के यह नौजवान बैंक आदि से कर्जा लेकर अपने निजी धंधों में प्रवेश कर सकें और व्यर्थ सरकारी नौकरियों के चक्कर में न फँसें।

ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' के दूसरे-तीसरे समुल्लास में विद्या के जिस कार्यक्रम का प्रतिपादन किया है उसके अनुसार विद्या केवल २ या ३ विषयों तक ही सीमित नहीं रहती। विद्या का लक्ष्य मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति कराना है। अतः वेद-शास्त्र की शिक्षा के अतिरिक्त उन्होंने आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद तथा अर्थवेद की शिक्षा का विधान प्रस्तुत किया। अर्थकारी विद्या प्राप्त करने से ही जहाँ एक ओर नवयुवकों की निजी समस्या हल होगी, वहाँ दूसरी ओर वह देश की अर्थव्यवस्था के विकास में समुचित योगदान दे पायेंगे।

हम देशव्यापी साक्षरता की बात तो वर्षों से करते चले आ रहे हैं किन्तु अभी तक इस क्षेत्र में भी वाँछित सुधार नहीं हुआ। इसके साथ ही कॉलिजों में प्रवेश चाहने वाले वाले युवकों की बाढ़ से हम परेशान हैं। यह जानते हुए भी कि कॉलिज की शिक्षा उनके लिये विशेष लाभदायी न होगी, हम दबाव में आकर बेतहाशा कॉलिज खोलते जा रहे हैं। विदेशों में प्रायः १२ श्रेणी के बाद नवयुवक रोजगार में खप जाते हैं, कॉलिजों में बहुत कम लोग जाते हैं। हमने बहुत से रोजगारों के लिये बी० ए०, एम० ए० की शर्त लाज़मी रख छोड़ी है। इससे लोग बी० ए०, एम० ए० की डिग्री प्राप्त करना जरूरी समझते हैं और इसी दौड़ में अपने जीवन के कीमती वर्ष खो बैठते हैं। एक ओर तो हमें विभिन्न नौकरियों के लिये क्या आवश्यक गुण चाहिएँ, उन पर नई दृष्टि से देखना होगा। पब्लिक सर्विस कमिशनों और सरकारी विभागों को सर्विस नियम यथेष्ट रूप से बदलने होंगे, जिससे व्यर्थ कॉलिजों में प्रवेश की प्रवृत्ति थमे, दूसरी ओर हमें कॉलिज प्रवेश हेतु भी कुछ शर्तें लगानी होंगी।

एक शर्त यह हो सकती है कि जिस व्यक्ति को कॉलिज में प्रवेश करना है, वह कम से कम एक वर्ष तक राष्ट्रव्यापी साक्षरता-आन्दोलन में स्वयंसेवी के तौर पर कार्य करे तभी वह कॉलिज-प्रवेश का अधिकारी हो सकता है। इनसे हमें कई लाभ होंगे। एक तो साक्षरता-आन्दोलन के लिये असंख्य नौजवानों की फौज उपलब्ध हो जायेगी। दूसरे उन नौजवानों को देश के करोड़ों बदकिस्मत नागरिकों के बीच कार्य करने का मौका मिलेगा और उनकी संवेदनशीलता

जागृत होगी। तीसरे जब वे कॉलिजों में प्रवेश करेंगे तो उन्हें एहसास होगा कि कॉलिज-प्रवेश एक कमाया हुआ प्रिवलेज है, जो सहज में सर्वसाधारण को उपलब्ध नहीं है। अतः कॉलिजों में जाकर दत्तचित्त होकर विद्याध्ययन करें और व्यर्थ तोड़-फोड़ की कार्यवाही में अपना समय और देश की अमूल्य सम्पत्ति नष्ट न करें। इस से विश्वविद्यालयों के अध्ययन-अध्यापन के वातावरण में वाँछनीय सुधार आयेगा।

साक्षरता के संबंध में हमें याद रखना चाहिए कि स्त्री-शिक्षा देशोद्धार के कार्यक्रम का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। स्त्री को शिक्षित करके हम एक पूरे परिवार को शिक्षित कर देते हैं, और बहुधा तो दो परिवार एक स्त्री की शिक्षा से लाभान्वित होते हैं। अभी तक हमारा ध्यान इस ओर यथेष्ट मात्रा में नहीं गया।

इसके साथ ही हमें इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि कॉलिजों में कितने दिन अध्ययन-अध्यापन होता है, क्या हम वर्ष में २०० दिन कार्य करते हैं। आज के कैलेंडर के अनुसार यदि एप्रिल-मई में परीक्षा होती हैं तो मार्च से पढ़ाई समाप्त हो जाती है। फिर कहीं अगस्त-सितम्बर से जाकर पठन-पाठन का कार्य होता है। फिर सरस्वती-यात्राएँ होती हैं, खेलकूद के कार्यक्रम रहते हैं, हड़तालें होती हैं, सो पठन-पाठन हेतु १०० दिन भी नहीं बचते। आखिर इस प्रकार विद्यार्थियों का शैक्षणिक स्तर कितना उन्नत हो पायेगा? आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता का युग है। क्या उन्नत विदेशी देशों के शिक्षा-कार्यक्रमों पर हमने कभी नज़र डाली है? क्या हम जानते हैं कि कैनाडा, इंगलैंड, जर्मनी आदि में विद्यालयों में हड़तालें नहीं होती हैं। रूस में तो यह कानून बन चुका है। यदि आपको हड़ताल करनी है तो विद्यालय से बाहर हो जाना होगा, आप के लिये विद्यालय में कोई स्थान नहीं होगा। ठीक ही तो कहा है—

"सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्"

अध्यापकों के लिये तो यह नियम होना चाहिये कि काम करो और वेतन पाओ। यदि काम नहीं करना तो वेतन कैसा?

आज इंसेट, टी. वी. कैसेट का युग है। इन आविष्कारों से शिक्षा के साधनों में अद्भुत क्रान्ति हुई है। शिक्षा प्रसार में इनका पूरा उपयोग करना चाहिए। इस संदर्भ में साक्षरता की भी उतनी आवश्यकता नहीं रह जाती। महाराजा रणजीतसिंह और सम्राट् अकबर साक्षर नहीं थे, किन्तु विद्वान् थे, सुशिक्षित थे, बाखबर थे। आज का किसान भी इन्हीं साधनों के द्वारा सुशिक्षित,

जागृत किया जा सकता है। इसके लिये विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को साफ्ट-वेयर प्रोग्राम तैयार करने होंगे, जिससे इन साधनों के द्वारा जनसाधारण के समक्ष निरन्तर सही कार्यक्रम प्रस्तुत होते रहें।

एक अन्य प्रवृत्ति की ओर भी हमें विशेष ध्यान देना चाहिए, वह हे सुशिक्षित, पठित समुदाय का विदेश-गमन और प्रवास। लाखों रुपये खर्च कर के हम डॉक्टर, इन्जीनियर और योग्य विद्वान् तैयार करते हैं, पर उनका लाभ उठाते हैं विदेशी राष्ट्र। हालात को देखते हुए उनके बहिर्गमन पर पूरी रोक तो नहीं लगाई जा सकती, लेकिन उनकी विदेशी आय का कुछ भाग वापिस देश को पुनः प्राप्त हो, क्या ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता ? निश्चय ही हम-आप से देश के शिक्षा-संस्थानों को यथेष्ट रूप से प्रबल किया जा सकता है और इस प्रकार ऐसे विद्यार्थी किंचित् मात्र ही सही, देश के प्रति अपने ऋण से उऋण हो सकते हैं।

सबसे आवश्यक बात यह है कि शिक्षित-समुदाय यह महसूस करे कि देश ने उनको शिक्षित करने हेतु इतनी अमूल्य पूँजी लगाई है। उनका भी देश के प्रति कुछ कर्त्तव्य है। उनको केवल अपनी उन्नति से ही प्रसन्न अथवा संतुष्ट नहीं होना चाहिए, सब की उन्नति में, भलाई में, अपनी उन्नति, भलाई समझनी चाहिए।

यही सीढ़ी है– शिक्षा, रोज़गार और विकास की। इसके सभी सोपान मजबूत हों तो देश मजबूत होगा और तभी मौजूदा संकट का निवारण होगा, भविष्य सुदृढ़, सुन्दर होगा।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

(नीतिशतक-८४)

नीति में निपुण पुरुष चाहे निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी अपनी इच्छा-नुसार आये अथवा चली जाए, आज ही मरण हो अथवा युगान्तरों के बाद, धीर पुरुष न्याय के पथ से एक पग भी विचलित नहीं होते।

आर्य-समाज की शोध-दिशा

—गंगाराम गर्ग

महर्षि दयानन्द हमारे सामने इतने विविध रूपों में आये हैं और एक रूप ने दूसरे रूप को इतना ढ़क लिया है कि बहुधा हम उनके मूलस्वरूप को समझ नहीं पाते। यदि उनका कोई रूप युगों-युगों तक जीवित रहेगा तो वह निश्चय ही वेदोद्धारक का होगा। इन्होंने ही सर्वप्रथम वेद के सही आशय को समझने का प्रयत्न किया।

अब आवश्यकता इस बात की है कि महर्षि के वेद-भाष्य को बोधगम्य बनाकर और उसकी अन्य भाष्यों से तुलना करके उसे हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं में प्रकाशित करवाया जाये। हिन्दी में तो बोधगम्य बनाने के लिये श्री सुदर्शन जी ने कुछ कार्य भी किया है पर अभी अन्य भाष्यों से तुलना अपेक्षित है और साथ ही उसका अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में रूपांतरण भी। यह दुःख की बात है कि अभी तक महर्षि के भाष्य को विश्व के विद्वानों ने मान्यता नहीं दी है। इसका यह कारण नहीं है कि महर्षि की भाष्य-शैली में कुछ दोष है, बल्कि यह है कि महर्षि के भाष्य का बोधगम्य रूप विश्व के विद्वानों तक पहुँचा ही नहीं है। अभी तक महर्षि की भाष्य-शैली की महान् योगी अरविंद ने ही भूरि-भूरि प्रशंसा की है। एक अन्य जर्मन विद्वान रॉठ (सबसे बड़े संस्कृत जर्मनकोश के वैदिक शब्दों से संबद्ध भाग के रचयिता) की यह धारणा थी कि वेद को यदि समझना है तो ब्राह्मण-ग्रंथों से दूर रहना पड़ेगा, क्योंकि वेद के समय में और ब्राह्मण-ग्रंथों के रचनाकाल में बड़ा भारी अंतर है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों की सर्वथा उपेक्षा की जाये। अतः सर्वप्रथम आर्य-समाज की शोध-दिशा वेद-भाष्य की ओर होनी चाहिये।

'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका', वेद भाष्य में और अन्यत्र भी महर्षि ने इस बात के पर्याप्त संकेत दिये हैं कि वैदिक काल में भारत अपनी उन्नति के शिखर पर था और वही हमारा स्वर्ण युग था। वैसे भी प्रारम्भ से यह हमारी मान्यता रही है कि वेद में ज्ञान-विज्ञान का निधान है। 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' यह तो आर्य समाज के नियमों के अन्तर्गत है ही। जबकि सायण आदि भाष्यकार वेदों का यज्ञपरक भाष्य करते हैं और वेदों से ईष्ट की प्राप्ति और

अनिष्ट का परिहार मानते हैं, महर्षि ने वेद को मनुष्य-मात्र के सम्पूर्ण जीवन से जोड़ दिया। यही वेद का वास्तविक स्वरूप था कि हमें राजनीतिशास्त्र (इस दिशा में आचार्य प्रियव्रत जी ने कार्य भी किया है), धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायन, तकनीकी ज्ञान तथा अन्य सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान को बीज-रूप में वेदों में खोजना चाहिये। कौन जानता है, जैसा कि अरविंद ने भी कहा है, कि वेदों में ऐसे सिद्धान्त विद्यमान हों, जहाँ आज के विज्ञान की पहुँच भी नहीं हुई है। जब तक यह नहीं होता, महर्षि की इस विषय में मान्यता और आर्य-समाज के नियम की सत्यता सिद्ध नहीं होती। भाँति-भाँति के ज्ञान-विज्ञान की खोज, यह आर्य-समाज की शोध-दिशा का दूसरा उद्देश्य होना चाहिये।

यद्यपि 'सत्यार्थ-प्रकाश', 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका', 'आर्याभिविनय' आदि के अंग्रेजो रूपान्तर प्रकाशित हो गये हैं, तथापि महर्षि की सभी रचनाओं का अंग्रेजी में रूपान्तरण नहीं हुआ है। जिस प्रकार महात्मा गांधी की सभी रचनाएँ अंग्रेजी में प्रकाशित हो गई हैं, उसी प्रकार महर्षि की सम्पूर्ण ग्रन्थावली अंग्रेजी में उपलब्ध हो, भले ही यह १५-२० खण्डों में क्यों न हो। मॉरिशस सरकार एक दयानन्द विश्वविद्यालय स्थापित करने का विचार कर रही है। इसलिये मॉरिशस के गवर्नर-जनरल सर शिवसागर रामगुलाम को मैंने यह सुझाव भेजा था कि वे दयानन्द के सम्पूर्ण साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद करने की योजना बनाएँ। महर्षि की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर मैंने अंग्रेजी भाषा में 'वर्ल्ड पर्सपेक्टिव्ज़ ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती' नामक ग्रन्थ लिखा था। उसमें लेख के लिये सम्पूर्ण विश्व के विद्वानों को आमंत्रित किया था। केवल ८-६ लेख विदेशी विद्वानों से प्राप्त हुए। अधिकाँश विद्वानों को दयानन्द साहित्य अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं था, इसलिये वे अपने लेख नहीं भेज सके। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के एक संस्कृत प्रोफेसर ने तो यहाँ तक लिख दिया कि उन्हें दयानन्द के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है। यदि दयानन्द का भाष्य एवं अन्य रचनाएँ अंग्रेजी में उपलब्ध होतीं, तो यह उत्तर हमें नहीं मिलता।

पिछले दिनों मैंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को यह सुझाव दिया था कि गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की सभी रचनाओं का खण्डों में प्रकाशन हो। स्वामी जी के बहुत से लेख अनेक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। एक समय बीतने पर वे अप्राप्य हो जायेंगे। मेरा विचार है कि इस दिशा में कार्य होना चाहिये।

मेरे कहने का तात्पर्य है कि साहित्य की संरक्षता और उस पर शोध कार्य आर्य-समाज का प्रमुख उद्देश्य है। साहित्य के संरक्षण और शोध के बिना कोई भी संगठन विश्व-व्यापी नही बन सकता।

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द

—राकेश शास्त्री

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जन्म २२ फरवरी १८५६ को पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध शहर जालन्धर के निकट तलवन नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम नानकचन्द था, जो सूबेदार मेजर और बाद में पुलिस इन्सपेक्टर भी रहे। स्वामी जी का जन्म का नाम बृहस्पति था, किन्तु पिता ने उनका नाम मुंशीराम रखा जो संन्यास लेने से पूर्व तक रहा। संन्यास लेने के बाद ये मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द हो गये। इनके तीन भाई और दो बहने थीं, ये अन्तिम और छठी सन्तान थे। अतः माता-पिता एवं परिजनों का इन पर पूरा प्यार रहा।

इनकी शिक्षा बनारस से प्रारम्भ हुई तथा लाहौर में वकालत की अन्तिम परीक्षा पास करने पर समाप्त हुई।

सन् १८७८ में जालंधर के सुप्रसिद्ध रईस सालगराम की सुपुत्री श्रीमती शिवदेवी के साथ इनका विवाह सम्पन्न हुआ। जिनसे इन्हें दो पुत्र (हरिश्चन्द्र और इन्द्र) तथा दो पुत्रियाँ (वेदकुमारी और अमृतकला) प्राप्त हुईं। जब मुंशीराम ३५ वर्ष के ही थे तभी सन् १८९१ में इनकी धर्मपत्नी श्रीमती शिवदेवी का देहावसान हो गया। उस समय इन्द्र मात्र दो वर्ष के थे।

कुछ दिनों तक मुंशीराम जी ने नायब तहसीलदारी की, किन्तु स्वाभिमानी होने के कारण नौकरी छोड़कर वकालत का स्वतन्त्र व्यवसाय अपनाया तथा फिल्लौर और जालंधर में वकालत की। किन्तु जब वकालत और नैतिक मान्यताओं में टकराव उपस्थित हुआ तो इन्होंने अपनी चमकती हुई वकालत का परित्याग कर दिया। इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवन में महर्षि दयानन्द के उपदेश सुने थे तथा उनसे बहुत प्रभावित थे। अतः इन्होंने आर्यसमाज की सेवा का तथा महर्षि के ऋण से उऋण होने का मन में संकल्प किया और हिन्दी भाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था करने के महान् उद्देश्य को लेकर हिमालय के वनों की राह पकड़ी। तभी से ये मुंशीराम से महात्मा मुंशीराम हो गये और १९०२ में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की, जो आश्रम प्रणाली पर संचालित

वैदिक ज्ञान–विज्ञान, आदर्शों एवं राष्ट्रीय तथा विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं से ओतप्रोत, शरीर और मन के ब्रह्मचर्य से युक्त समाज को श्रेष्ठ नागरिक प्रदान करने वाला प्रथम और अनोखा विद्या का मन्दिर था। इस संस्था को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई, यही उनका सर्वोत्कृष्ट स्मारक है। जिसकी उन्नति में उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

सन् १९१७ में महात्मा मुंशीराम ने संन्यास ग्रहण किया और वे महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द हो गये। सन् १९१८ में उन्होंने गुरुकुल के स्थान पर दिल्ली को अपना निवास-स्थान बनाया और तब से लेकर जीवन पर्यन्त राजधानी उनकी विविध प्रगतियों का केन्द्र रही। उन्होंने यहीं पर जनता के सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक योग–क्षेम के लिए अनेक संस्थाएँ स्थापित कीं तथा अपने समय के सुविख्यात दैनिक समाचारपत्र 'तेज' और 'अर्जुन' को जन्म दिया, कुछ समय तक 'लिबरेटर' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र भी चलाया। उन दिनों दिल्ली को महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, डाक्टर अन्सारी और हकीम अजमल खां की दिल्ली के नाम से सम्बोधित किया जाता था। अतः स्पष्ट है कि दिल्ली के सार्वजनिक-जीवन में स्वामी जी को कितना ऊँचा स्थान प्राप्त था।

सन् १९१९ में स्वामी जी ने रोलेट एक्ट के विरोध में दिल्ली में हड़ताल का आयोजन किया तथा गांधी जी दिल्ली आते हुए मार्ग में गिरफ्तार कर लिए गये तो इसके विरोध में स्वामी जी के नेतृत्व में पीपल पार्क पर जनता एकत्रित हुई। वस्तुतः उन दिनों स्वामी जी दिल्ली के बेताज़ बादशाह थे। ३० मार्च १९१९ ई० को जब स्वामी जी एक बड़ी भीड़ के साथ घंटाघर (चांदनी चौक) के पास पहुँचे तो फौजियों ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया तथा एक गोरखा जवान ने भीड़ पर गोली चलाने के लिए राइफल उठाई तो स्वामी जी आगे बढ़े और उस जवान तथा भीड़ के बीच खड़े हो गये और कहा मैं खड़ा हूँ तुम गोली चलाओ। किन्तु कमाण्डर ने स्थिति की गम्भीरता को देखकर जवानों को हटने का आदेश दिया। इसके बाद स्वामी जी के आदेश से भीड़ शान्तिपूर्वक तितर-बितर हो गयी।

४ अप्रैल १९१९ को मुसलमानों ने उन्हें बड़ा भाई कहकर और नेता मानकर भारत की सबसे बड़ी और विख्यात मस्जिद, जामा–मस्जिद दिल्ली के मिम्बर पर बैठाकर उनका अभूतपूर्व सम्मान किया। संसार के इतिहास में यह पहला अवसर था जब एक गैर मुस्लिम को मस्जिद की वेदि से उपदेश देने की अनुमति दी गई थी। स्वामी जी ने उस वेदि से वेद-मन्त्र द्वारा ईश्वर के माता-पिता के रूप का वर्णन किया।

८ जून १९१९ ई० को इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में होना निश्चित हुआ और सम्पूर्ण दायित्व स्वामी जी को सौंपा गया। यह वह समय था जब क्षत-विक्षत पंजाब अत्याचारों की दारुण वेदना से कराह रहा था तथा जलियाँवाला कांड में सैकडों तरुण युवा गोलियों से भून दिये गये थे। माताओं की गोद सूनी हो गयी थी तथा पत्नियों की मांग के सिन्दूर पुंछ गये थे। स्वामी जी इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष मनोनीत हुए। परन्तु स्वामी जी ने इसका सुप्रबन्ध करके इसे सफल बनाकर धैर्य, साहस, निर्भीकता और कर्मठता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। स्वागताध्यक्ष होने के कारण स्वामी जी ने अपना स्वागत-भाषण हिन्दी में ही पढ़ा था जो उस समय की परम्परा के विरुद्ध था। अमृतसर कांग्रेस की सफलता और यह हिन्दी भाषण कांग्रेस इतिहास की चिरस्मरणीय घटनाएँ हैं।

१० सितम्बर १९२२ ई० को गुरु का बाग आन्दोलन में भाग लेने के लिए स्वामी जी अमृतसर पहुँचे। दिल्ली की शाही जामा मस्जिद के मिम्बर की शोभा बढ़ाने वाले आर्य संन्यासी ने अमृतसर के अकाल-तख्त की भी शोभा बढ़ाई। वहाँ के दीवान में उन्होंने दिल्ली-निवासियों की ओर से संदेश भी सुनाया। दोपहर को एक बजे वे गुरु का बाग भी गये तथा सायं साढ़े पाँच बजे अमृतसर से लौटने की तैयारी के समय गिरफ्तार करके अमृतसर जेल में बन्द कर दिये गये। ५ अक्टूबर तक मुकदमा चला और १ वर्ष ४ माह की साधारण कैद की सजा दी गई तथा मियांवाली जेल में भेज दिये गये। किन्तु २६ दिसम्बर को ही रिहा कर दिए गए तथा जेल से बाहर आकर अमृतसर और जालंधर में व्याख्यान देकर २९ दिसम्बर को दिल्ली पहुँचे।

स्वामी जी दलितोद्धार और अस्पृश्यता-निवारण की समस्या अत्यावश्यक मानते थे। वे दलितोद्धार के कार्य को कांग्रेस के कार्य-क्रम का एक आवश्यक अंग बनाने के लिए प्रयत्नशील थे, किन्तु वर्किंग कमेटी ने ऐसा करना स्वीकार न किया, इस पर उन्होंने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया और दिल्ली में १९२१ में दलितोद्धार सभा की स्थापना करके इस कार्य को संगठित रूप से करना प्रारम्भ किया, जिसमें उन्हें बड़ी सफलता मिली।

अमृतसर कांग्रेस के बाद के वर्षों को उन्होंने मुख्यतः अस्पृश्यता निवारण, दलितोद्धार एवं आर्य संगठन के कार्यों में व्यतीत किया। २३ दिसम्बर १९२६ को एक मतान्ध मुसलमान की गोली से उनके जीवन का दुःखद किन्तु वीरोचित अन्त हुआ। वे शहीद हो गये।

महात्मा गांधी ने उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके विषय में उदगार प्रकट करते हुए कहा था— "वह कर्मवीर थे। अपने धार्मिक विश्वास में अटल थे। वह

श्रद्धा, सत्य और वीरता के मूर्तिमान् प्रतीक थे। वह योद्धा थे..... ..... उन्होंने एक-मात्र सत्य के लिए भारतमाता की वेदि पर अपना जीवन समर्पित किया था।"

भारतमाता के इस देशभक्त और सपूत की दुःखद मृत्यु से जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना सम्भव नहीं है। उनका जीवन अपने देश और धर्म की सेवा के लिए अर्पित रहा। उन्होंने निर्भीकता और दृढ़ता के साथ सदैव असहायों, पीड़ितों, पतियों और दीन-दुखियों को सहारा दिया। उनका आदर्श जीवन हम सबके लिए हमेशा प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

(नीति ७-८)

जब मैं थोड़ा जानता था तब मैं हाथी के समान मदान्ध था। उस समय 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस प्रकार मेरा मन गर्वित रहता था। जब मैंने विद्वानों से क्रमशः थोड़-थोड़ा ज्ञान पाया तब 'मैं मूर्ख हूँ' इस प्रतीति से मेरा मद ज्वर के समान हट गया।

हिमालय की अमृत-चेतना

—विश्वनाथ मिश्र

अरे ओ हिमालय !
तुम्हारे इस हिमाच्छादित माथे पर—
बालारुण की किरणों को—
खिलते हुए देखकर
मुझे लगता है—
वह कविर्मनीषी
चांदी के कागज़ पर
सोने के अक्षरों में—
कोई मधुर कविता लिख रहा है ।
तुम्हारे शिखरों से उतरती हुई—
इन अनन्त धाराओं को देखकर
और उनकी—
अदम्य जिजीविषा का संचार करने वाली—
लहरों की वाणी को सुनते हुए
लगता है, जैसे वे दिव्य-दृष्टा ऋषि—
वैदिक ऋचाओं का पाठ कर रहे हैं ।
तुम्हारे इस परम रमणीय प्रांगण में—
आकाश से जो यह इन्द्रधनुषी—
निर्झर उतर रहा है
लगता है—जैसे ऋग्वेद के विभिन्न मंडलो के—
विविध छन्दों की वर्षा हो रही है ।
देवदारु, चीड़, वरुष, भोज, सेब
आदि के वृक्षों पर जो चिड़ियाँ बोल रहीं है :
लगता है जैसे—
सामवेद के सरगम का समवेत गायन हो रहा है ।
तुम्हारी उपत्यकाओं में
सीढ़ीनुमा—इन नीचे उतरते हुए खेतों को देखकर
लगता है जैसे ये
भागीरथी की उस पावन धारा में नहाने को आतुर
उदात्त आकांक्षाओं के यात्रियों से—
आगे बढ़े जा रहे हैं ।

उन खेतों में —
उज्ज्वल तन और उज्ज्वल मन के —
उन भोले-भाले किसानों को काम करते हुए देखकर
लगता है जैसे वे
बड़े पवित्र मन से —
यजुर्वेद के अग्निहोत्र में लगे हुऐ हैं।
अरे ओ महामहिम गिरिवर !
तुम्हारे शिखरों, घाटियों, हिमनन्दों, निर्मल निर्झरों, सघन कान्तरों
आदि के बीच विचरते हुए
मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरा मन
जीवन के अथर्ववेद का वाचन कर रहा है।
अरे ओ गिरिराज !
अद्भुत हो तुम
असाधारण है तुम्हारा सम्मोहन
और विलक्षण है तुम्हारा मनःप्रभाव
तभी तो तुम्हारी गोद में बैठा हुआ
यह मामूली आदमी
उन दिव्यातिदिव्य प्रज्ञा से सम्पन्न
असीम सुमेधा के धनी
महामना ऋषियों की
अमृत वाणी सुन रहा है।
बड़ा विचित्र है यह बोध
बड़ा निराला है यह अनुभव
और बड़ी अनोखी है यह अनुभूति
तभी तो मैं श्रद्धा की भावना से ओतप्रोत
विनय की चेतना से अनुप्राणित
और आत्म-समर्पण के विज्ञान में घिरा हुआ
तुम्हारे सामने—
दोनों हाथ जोड़े हुए नत सिर खड़ा हूँ —
आत्म-साक्षात्कार से आनन्द विभोर।

———

गतांक से आगे—

स्फोटवाद

— विजयपाल शास्त्री

अर्थ का वाचक शब्द का तृतीय प्रकार पदस्फोट है । आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार स्फोट की प्रक्रिया इस प्रकार है : वर्णों के आठ स्थान हैं— उरःस्थल, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु । सर्वप्रथम उक्त आठ स्थानों में से किसी स्थानविशेष के साथ उदानवायु के अभिघात नामक संयोग से तत्तद् वर्णों की उत्पत्ति होगी । फिर प्रत्येक वर्ण को ग्रहण करने वाला एक-एक श्रावण प्रत्यक्ष होगा । पुनः तत्तत् श्रावण प्रत्यक्ष से तत्तद् वर्णविषयक एक-एक संस्कार होगा । तत्तत् संस्कार से पदविशेषघटक समस्तवर्णविषयक स्मृति उत्पन्न होगी । उस स्मृति से युक्त अन्तःकरण से गकार-ओकार विसर्जनीय रूप आनुपूर्वी से युक्त गोपदात्मक पदस्फोट का मानस प्रत्यक्ष होगा । उस पदस्फोट-विषयक ज्ञान से अर्थ की स्मृति होगी ।

आचार्य विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र में पदस्फोट के विषय में मतभेद है। आचार्य वाचस्पति मिश्र के अनुसार तत्तद् वर्ण संस्कारसहकृत श्रोत्रेन्द्रिय से पदस्फोट का प्रत्यक्ष होता है, जबकि विज्ञानभिक्षु के अनुसार उक्त संस्कारजन्य स्मृतिसहकृत अन्तःकरण से पदस्फोट का प्रत्यक्ष होता है ।

उपर्युक्त त्रिविध शब्दों में पदाख्य शब्द स्फोट इसलिए कहलाता है क्योंकि वह अर्थ के स्फुटीकरण का हेतु है । यह स्फोटाख्य पद गकारादि वर्णों से भिन्न एवं अभिन्न उभय रूप है । आचार्य विज्ञानभिक्षु कहते हैं—"तच्च स्फोट-पदं गकारादि वर्णेभ्यो भिन्नाभिन्नं भेदाभेदयोरनुभवात्" । अर्थात वर्ण और पदों में भेद और अभेद दोनों का अनुभव होने से पद और वर्णों में भेद और अभेद दोनों ही हैं, जिस प्रकार अवस्था और अवस्थावान् में भेद और अभेद है, बीज-अंकुर, शाखा-पल्लव आदि अवस्थाएँ अवस्थावान् वृक्ष से भिन्न और अभिन्न उभय रूप हैं ।

स्फोट के सद्भाव में सन्देह नहीं होना चाहिये । "गो' यह एक पद है"— इस प्रकार का व्यवहार स्फोट की सिद्धि में प्रमाण है । वर्ण अनेक हैं, अतः उनमें

एकत्व-व्यवहार उपपन्न नहीं हो सकता । प्रत्येक वर्ण में अर्थ-प्रत्यायन की शक्ति निहित नहीं है, इसलिये अर्थज्ञान का कारण होने से भी स्फोट की सिद्धि होती है ।

यहाँ पूर्वपक्षी आक्षेप कर सकता है— आनुपूर्वीविशिष्ट समूह के एक होने से 'गो' यह एक पद है –इस प्रकार का एकत्व-व्यवहार उपपन्न हो सकता है । अतः आनुपूर्वीविशिष्ट वर्णसमूह ही अर्थप्रत्यायन का हेतु स्वीकार किया जाए । इसके लिए व्यर्थ स्फोट की कल्पना क्यों की जाए ?

आचार्य विज्ञानभिक्षु ने उक्त आक्षेप का बहुत ही सटीक उत्तर दिया है । उनका समाधान है कि यदि आनुपूर्वीविशिष्ट वर्णसमूह के अतिरिक्त पद को स्वीकार नहीं किया जाएगा तो सयोगविशेष से अवच्छिन्न मृत्कणसमूह के एक होने से उसी के द्वारा जलाहरणादि क्रियाएँ होने लगेंगी । परिणामस्वरूप घटादि अवयवी का उच्छेद हो जायेगा । पूर्वपक्षी को यह स्वीकार्य नहीं होगा । अतः जिस प्रकार संयुक्त मृत्कण समूह से जलाहरण आदि कार्य नहीं हो सकते, उसी प्रकार आनुपूर्वीविशिष्ट वर्णसमूह अर्थ का प्रत्यायन नहीं करा सकता । इस प्रकार सिद्ध हुआ कि पद वर्णों से पृथक् है, एक प्रयत्न से उत्पाद्य है, नाद से अभिव्यंग्य है तथा अन्तःकरण से ग्राह्य है । यह पद ही अर्थज्ञान का कारण होने से स्फोट कहलाता है । अतः वर्णभिन्न वर्णात्मक और स्फोटात्मक ये त्रिविध शब्द विज्ञानभिक्षु को मान्य हैं ।

स्फोटात्मक शब्द में प्रमाण

'गो' यह एक पद है— इस प्रकार का ज्ञान या व्यवहार शब्द को स्फोटात्मक सिद्ध करता है । केवल वर्ण में यह ज्ञान उपपन्न नहीं हो सकता, क्योंकि प्रयत्नभेद से उच्चारण किए गए वर्णों में जब तक कोई एक अभिन्न वस्तु अनुस्यूत नहीं होगी तब तक 'यह एक पद है' इस प्रकार की सर्वसिद्ध अबाधित रूप से होने वाली प्रतीति कभी नहीं हो सकती । जब तक अनेक पुष्पों में एक धागा अनुस्यूत होकर उन्हें नहीं जोड़ेगा तब तक 'यह माला है' इस प्रकार का ज्ञान नहीं हो सकता । अतः स्फोटात्मक शब्द में उक्त लोकानुभव प्रमाण है ।

स्फोट की अभिव्यक्ति में क्रमिकता

योग के व्याख्याकार पदस्फोट की अभिव्यक्ति क्रमशः स्वीकार करते हैं, अर्थात् पदस्फोट की अभिव्यक्ति एक काल में नहीं होती बल्कि प्रथम वर्ण के श्रवण से स्फोट की अस्फुट प्रतीति होती है, तदनन्तर वह द्वितीय, तृतीय आदि वर्णों से स्फुट, स्फुटतर और स्फुटतम होता जाता है ।[1] यद्यपि प्रत्येक वर्ण

किंचिन्मात्र स्फोट को अभिव्यक्त करता है तथापि अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक स्पष्ट-रूप से स्फोट का अभिव्यंजक नहीं होता। पूर्व-पूर्व अभिव्यक्ति से उत्पन्न संस्कारों के साथ अन्तिम वर्ण ही स्पष्ट रूप से स्फोट को अभिव्यक्त करता है। इस लौकिक दृष्टान्त से इसे सुगमता से समझा जा सकता है। दूर पर स्थित वृक्ष प्रथम दृष्टिपात में स्थूलता आदि सादृश्य दोष के कारण हाथी प्रतीत होता है किन्तु आगे बढ़ने पर इस अस्पष्ट ज्ञान के बाद वनस्पति का स्पष्ट ज्ञान होने लगता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि योगदर्शन के व्याख्याकार पद के प्रत्येक वर्ण में अर्थ–प्रत्यापन की शक्ति स्वीकार करते हैं।

पद में वाक्यार्थ–बोधन का सामर्थ्य

योग के व्याख्याकार कहते हैं कि जिस प्रकार प्रत्येक वर्ण में अर्थबोधक पद बनने की शक्ति रहती है उसी प्रकार प्रत्येक पद में वाक्यार्थबोधक वाक्य बनने का सामर्थ्य रहता है। वाचस्पति मिश्र ने पद में वाक्य–शक्ति को स्पष्टतः स्वीकार किया है- "सर्वपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिः[2]।"

पद दो प्रकार से वाक्यार्थ का बोध कराता है : अध्याहार के द्वारा और स्वरूपयोग्यता के द्वारा। उदाहरण के लिये– 'वृक्षः' पद के उच्चारण से 'अस्ति' क्रिया का अध्याहार किया जाता है, क्योंकि कोई भी पदार्थ सत्ता के बिना कभी नहीं रहता। कोई भी कारक क्रियापद के बिना नहीं रह सकता, अतः कारक-पद में वाक्यार्थ–बोधन का सामर्थ्य है।

कारकपद के समान क्रियापद भी कारकपद के बिना नहीं रहता। अतः क्रियापद के श्रवण से कारकपद का अध्याहार कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ 'पचति' कहने पर कर्त्ताकारक 'देवदत्त' का अध्याहार किया जाता है। इस प्रकार क्रियापद और कारकपद दोनों में वाक्यार्थबोधन की योग्यता रहती है।

पदों में वाक्यार्थ-बोधन की स्वरूपयोग्यता भी है। कुछ पद ऐसे भी हैं जो क्रिया या कारक की अपेक्षा के बिना भी वाक्यार्थ का बोध कराते हैं। जैसे 'श्रोत्रियः' यह एक ही पद पूरे वाक्य का अर्थबोध करा रहा है। 'श्रोत्रियः' का अर्थ है— यह वेद का अध्ययन करता है। इसी प्रकार 'जीवति' यह क्रियापद

१– केवल भागानुभवेन पदमव्यक्त मनुभूयते ऽनु संहारधिया तु भागानुभव योनि संस्कार लब्ध जन्मना व्यक्त मिति विशेषः।
(तत्त्ववैशारदी, पृ० ३२३)

२– तत्त्ववैशारदी, पृ० ३२८

इस वाक्यार्थ का बोध करा रहा है कि 'यह प्राणों को धारण करता है'। वाचस्पति मिश्र ने अस्पष्टतः और विज्ञानभिक्षु ने स्पष्टरूप से पदस्फोट के समान वाक्यस्फोट को स्वीकार किया है[1]।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि पातञ्जल योगसूत्र में स्फोटवाद के बीज निहित हैं, जिसके स्वरूप को मनीषी व्याख्याकारों ने सरल भाषा में जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित किया।

× × ×

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।

मनु० ५।१०६

शरीर जल से शुद्ध होते हैं, मन सत्य से शुद्ध होता है । मनुष्य की आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होती है । बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ।

१– नन्वेवं युक्तिसाम्याद् वाक्यमपि स्फोटरूपं एकैकं स्याद् इति चेद् ? बाधकाभावे सतीष्टत्वात् । (योगवार्त्तिक, पृ० ३२५) ।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक-परिचय	—	**वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त (तीन भाग)**
लेखक	—	**आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति** पूर्व–कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
प्रकाशक	—	मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज, मेरठ
पृष्ठ संख्या (तीनों भाग)	—	१५००
मूल्य	—	२४० रुपये
समीक्षक	—	बलभद्र कुमार हूजा

'वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ एक अनुसन्धानात्मक ग्रन्थ है। भारतीय आर्य-परम्परा में सभी ऋषि-मुनि और आचार्य वेद को विविध विद्या-विज्ञानों से युक्त मानते आये हैं। महर्षि व्यास और आचार्य शंकर की सम्मति में तो वेद इतना अधिक ज्ञान-विज्ञान का सागर हैं कि उन्होंने वेद की विद्यमानता को ईश्वर की सिद्धि में एक युक्ति के रूप में उपस्थित किया है। उनकी सम्मति में वेद का रचयिता सर्वज्ञ परमात्मा ही हो सकता है। मनु ने कहा है कि वेद को जानने वाला व्यक्ति सेनाओं का संघटन और संचालन कर सकता है, राज्यों का संचालन कर सकता है, न्याय–व्यवस्था का सचालन कर सकता है, और सारी धरती के विशाल राज्य का भी संचालन कर सकता है। ऐसा कोई प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिसमें वेद के आधार पर और वेद के अपने शब्दों में वेद में वर्णित किसी विद्या–विज्ञान को प्रदर्शित किया गया हो। प्रस्तुत ग्रन्थ में वेद के आधार पर और वेद के अपने शब्दों में वेद में वर्णित राजनीति-विज्ञान को विस्तृत रूप में दिखाया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि वेद में सर्वांगपूर्ण राजनीति शास्त्र का वर्णन है।

ग्रन्थ के संविधान काण्ड, अभ्युदय काण्ड और प्रतिरक्षा काण्ड में तीन भाग हैं। ग्रन्थ में छोटे माण्डलिक राज्यों से लेकर सारी धरती के चक्रवर्ती राज्य (विश्वराज्य) तक के निर्माण, उनकी संसदों, मंत्रीमण्डल, चुनाव–पद्धति, प्रजा-तन्त्र का स्वरूप, न्याय-व्यवस्था, स्त्रियों के राजनीतिक अधिकार, उदार राजनीति,

समाज का संघटन और उसकी आर्थिक व्यवस्था, प्रजाओं के सुख-समृद्धि के उपाय, राष्ट्रवासियों का परस्पर प्रेम, सहयोग और सद्भाव, राष्ट्रों को पतन से बचाने के उपाय, सैन्य संघटन, शस्त्र- अस्त्र, और युद्धनीति आदि अनेकानेक विषयों के सम्बन्ध में वेद के विचारों को प्रदर्शित किया गया है। यह ग्रन्थ लेखक के २५ वर्ष से भी अधिक समय के अध्ययन, अनुसंधान और चिन्तन का परिणाम है तथा अपने प्रकार का सर्वथा मौलिक और पहला ग्रन्थ है। सारे वैदिक-साहित्य में इस प्रकार का दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

वेद में अनेक ऐसे राजनीतिक तत्त्व वर्णित पाये जाते हैं जिनसे आज का राजनीतिक जगत् भी लाभ उठा सकता है। उदाहरण के लिये वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि "जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्, सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहा ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती" अर्थात् यदि कभी किसी राष्ट्र में अनेक भाषाओं को बोलने और अनेक धर्मों को मानने वाले लोग रहने लग जायें तो उन्हें इस प्रकार परस्पर प्रेम से मिल कर रहना चाहिये जिस प्रकार एक घर के लोग प्रेम से मिल कर रहा करते हैं। ऐसा करने से राष्ट्र की भूमि राष्ट्रवासियों के लिये धन–सम्पत्ति और कल्याण–मंगल की हजारों धाराओं को बहाने लगेगी, जिस प्रकार दुधारू गाय दूध की धारायें बहाती है। भाषाओं और धर्मों के नाम पर बुरी तरह अशान्त और संकट–ग्रस्त आज के भारत के लिये वेद का यह उपदेश कितना सामयिक और उपयुक्त है। इस प्रकार वेद के राजनीति विज्ञान को अपने इस ग्रन्थ में उद्घाटित करने और उसे जनता के सम्मुख लाने के प्रयत्न द्वारा लेखक ने प्राणिमात्र की महाती सेवा की है।

महान् हुतात्मा दिवंगत श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में लेखक ने जो दीर्घकाल तक संस्कृत और वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है, उसी का परिणाम यह विशाल मौलिक ग्रन्थ है।

× × ×

पुस्तक का नाम	—	**सत्यदेव परिव्राजक : व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व**
लेखक का नाम	—	**डॉ० दीनानाथ शर्मा**
प्रकाशक	—	राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६
पृष्ठ संख्या	—	२६६, साइज – ८"×६"
मूल्य	—	४० रुपये ।
समीक्षक	—	राकेश शास्त्री

इस संसार में कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो अपने जीवन के अनुभवों तथा प्रतिभा द्वारा समाज का, राष्ट्र का मार्ग-निर्देशन करते हैं और अपनी लेखनी के प्रसाद से साहित्य को समृद्ध करते हैं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक इसी प्रकार के महापुरुषों में से हैं। उन्होंने पञ्जाब से लेकर तिरुचापल्ली तक हिन्दी भाषा का पताका को फहराया और अपनी प्रबुद्ध मेधा से कविता, कहानी, निबन्ध, जीवनी, यात्रा-वृत्तान्त आदि हिन्दी-साहित्य की अनेक विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध किया।

स्वामी सत्यदेव जी त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति थे ; उन्होंने आजीवन अविवाहित रहकर, पूर्ण समर्पणभाव से हिन्दी साहित्य की सेवा की। अपने सम्पूर्ण जीवन की अर्जित सम्पत्ति भी अन्त में उन्होंने 'सत्य ज्ञान निकेतन' की स्थापना के अनन्तर नागरी प्रचारिणी सभा को दान देकर अपनी सात्विक-त्याग भावना का परिचय दिया।

इस प्रकार के महान् व्यक्तित्व पर लेखनी उठाना तथा उनके उत्कृष्ट साहित्य की समालोचना करना भी कोई सरल कार्य नहीं है। डॉ० दीनानाथ शर्मा ने इस महत्त्वपूर्ण कार्य को दायित्व के साथ पूर्ण किया है ; इस प्रशंसनीय कार्य के लिए वे हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ को लेखक ने नौ अध्यायों में विभक्त किया है, प्रथम अध्याय में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का विस्तृत परिचय दिया है। द्वितीय अध्याय में उनके निबन्ध-साहित्य का परिचय देते हुए उसका संक्षिप्त विवेचन किया है। तृतीय अध्याय में उनकी लेखन-शैली के १३ प्रकारों का उल्लेख करते हुए उनका सोदाहरण विश्लेषण किया है, इसी अध्याय में उनके शब्द-चयन पर भी विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय में परिव्राजक जी की लेखन–कला का विवेचन किया गया है। पञ्चम अध्याय में उनके यात्रा-साहित्य का उल्लेख करते हुए उसका विस्तृत विश्लेषण किया गया है, जो अत्यन्त मौलिक बन पड़ा है। षष्ठप

अध्याय में उनके जीवनी तथा कथापरक साहित्य का मूल्यांकन हुआ है। सप्तम अध्याय में उनकी कहानियों का संक्षिप्त परिचयपूर्वक विस्तृत विवेचन है। अष्टम अध्याय में उनके काव्यपक्ष तथा भावपक्ष पर विचार हुआ है तथा नवम् अध्याय में परिव्राजक जी द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार और सेवाएँ शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी और ईसाई प्रचारक, हिन्दी और ब्रह्मसमाज, काशी नागरो प्रचारिणी सभा और हिन्दी सम्मेलन, गुरुकुल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ तथा डी०ए०वी० कालेजों को उनका योगदान, भारतेन्दु और उनका मित्रमण्डल, दक्षिणी भारत तथा पञ्जाब में उनके द्वारा हिन्दी प्रचार आदि विषयों का प्रतिपादन है। अन्त में उपसंहार के पश्चात् परिव्राजक जी के साहित्य का काल-क्रमानुसार उल्लेख करते हुए तीन पृष्ठों में सहायक-ग्रन्थों की सूची दी गई है। वस्तुतः लेखक ने परिव्राजक जी के व्यक्तित्व एवं साहित्यिक उपलब्धियों का इस पुस्तक में अधिकारिक विवेचन किया है।

राजपाल एण्ड सन्ज़ जैसे प्रतिष्ठित काप्रशक द्वारा पुस्तक का प्रकाशित करना ही इस बात का द्योतक है कि कार्य अत्यन्त उत्तम तथा जिज्ञासु अध्येताओं के लिए पठनीय तथा संग्रहणीय है। कागज़ तथा मुखपृष्ठ अत्यन्त उत्कृष्ट एवं आकर्षक बन पड़ा है।

गुरुकुल-समाचार

प्रस्तुतकर्त्ता : राकेश शास्त्री

११ जून, १९८४ को मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय पुस्तकालय में योजना-पटल की बैठक सम्पन्न हुई। जिसमें छटी पञ्चवर्षीय योजना में वि०वि अनुदान आयोग से प्राप्त योजनाओं के शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वयन का निर्णय किया गया तथा सप्तम पञ्चवर्षीय भावी विकास-योजनाओं को प्रस्तुत करने का निश्चय किया गया।

जुलाई, १९८४ में वि०वि० पुस्तकालय में परीक्षा-सुधार विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें वि०वि० के सभी अध्यापकों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। इस संगोष्ठी में परीक्षा-प्रणाली में सुधार के उपायों पर विचार-विमर्श हुआ।

४-५ अगस्त, १९८४ को श्री वेदप्रकाश शास्त्री तथा डॉ० जयदेव वेदालंकार गुरुकुल टटेसर, जोनती (दिल्ली) को मान्यता प्रदान करने हेतु निरीक्षणार्थ गये।

११ अगस्त, १९८४ को विश्वविद्यालय की अमृत-वाटिका में मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में संस्कृत-दिवस उत्साहपूर्वक मनाया गया। समारोह का प्रारम्भ वैदिक मन्त्रों के पाठ तथा यज्ञ से हुआ। श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री के संयोजकत्व में सम्पन्न समारोह में विभिन्न वक्ताओं ने संस्कृत-भाषा एवं साहित्य के महत्त्व का प्रतिपादन किया और सामाजिक एवं धार्मिक एकता के लिए उसके प्रचार-प्रसार पर बल दिया। इसी दिन गुरुकुल-विद्यालय के ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ-संस्कार भी मनाया गया। पं० सत्यकाम विद्यालङ्कार जी (आचार्य, गुरुकुल-विद्यालय) ने उन्हें दीक्षा दी और उनके प्रति उपदेश किया। अपने संप्रेरक एवं विचारोत्तेजक भाषण में मान्य कुलपति जी ने छात्रों एवं शिक्षकों से अपने दैनन्दिन जीवन में संस्कृत-भाषा के उपयोग का आग्रह किया। उन्होंने छात्रों को पारितोषिक-वितरण भी किया।

१३ अगस्त, १९८४ को डॉ० त्रिगुण सेन की अध्यक्षता में वेदमन्दिर में वन-महोत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। इसका संयोजन डॉ० विजय शंकर (अध्यक्ष,

वनस्पतिविज्ञान विभाग) ने किया। इस अवसर पर वक्ताओं ने वृक्षों के संरक्षण एवं उपयोगिता पर अपने विचार प्रस्तुत किए।

१५ अगस्त, १९८४ को गुरुकुल विद्यालय की अमृत-वटिका में मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में स्वतन्त्रता-दिवस का समारोह वर्षा की रिमझिम में भी सोल्लास मनाया गया। यज्ञ के उपरान्त मान्य कुलपति जी ने ध्वजारोहण किया। विद्यालय के ब्रह्मचारियों ने सुमधुर गीतों से वातावरण को संगीतमय बना दिया। कुलसचिव श्री वीरेन्द्र अरोड़ा ने राष्ट्र के प्रति संदेश का वाचन किया। अन्त में मान्य सभापति, पं० सत्यकाम विद्यालंकार तथा कैप्टन देशराज द्वारा क्रमशः आशीर्वाचन, उद्बोधन तथा धन्यवाद ज्ञापन किया गया। समारोह का संयोजन श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री (अध्यापक, गुरुकुल विभाग) ने किया। इस अवसर पर गुरुकुल तथा वि०वि० के अध्यापकों ने प्रतिज्ञाएँ कीं—

सैंतीसवें स्वतन्त्रता दिवस (पन्द्रह अगस्त) के राष्ट्रिय महापर्व के अवसर पर हम गुरुकुल और विश्वविद्यालय के अध्यापक निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ करते हैं—

१— हम सदा राष्ट्रिय संविधान का आदर करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

२—राष्ट्रिय-ध्वज का सदैव सम्मान करेंगे और उसके सम्मान की रक्षार्थ बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए उद्यत रहेंगे।

३— आतंकवाद और राष्ट्रद्रोह एवं राष्ट्र-एकता के लिए प्रत्येक प्रकार का बलिदान करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहेंगे।

४ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की उन्नति और ख्याति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहेंगे।

५— इस विश्वविद्यालय एवं गुरुकुल के नियम तथा उपनियमों का तत्परता से पालन करेंगे।

६—प्रतिदिन नियतवेश धारण करके विश्वविद्यालय एवं गुरुकुल में अपने कार्य पर उपस्थित होंगे।

७—आर्यसमाज के सिद्धान्तों का पालन करेंगे तथा इसके प्रचारार्थ अधिक से अधिक समय देंगे और आर्थिक सहयोग प्रदान करेंगे। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की उन्नति के लिए तन, मन, धन से सहयोग करेंगे।

२१ अगस्त, १९८४ को अमृत-वाटिका में योगेश्वर कृष्ण के जन्म-दिवस को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में उल्लास के साथ मनाया गया। इसका संयोजन श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री ने किया। इस अवसर पर विद्यालय के ब्रह्मचारियों ने कृष्ण–विषयक प्रेरक–प्रसंगों पर अपने ओजस्वी भाषण एवं गीत प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त डॉ० राकेश शास्त्री (संस्कृत विभाग) ने योगेश्वर कृष्ण की

विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उनके जीवन से प्रेरणा लेने के लिए कहा। समारोह के अन्त में धनुर्विद्या के अभ्यास का भी उद्घाटन किया गया।

३० अगस्त, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में शिक्षक-कक्ष में महर्षि दयानन्द व्याख्यान–माला का सूत्रपात किया गया। इस शृंखला में डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश' (हिन्दी-विभाग) के संयोजकत्व में डॉ० भवानीलाल भारतीय (अध्यक्ष–दयानन्द पीठ, पञ्जाब वि०वि०, चन्डीगढ़) का 'आर्य समाज की उपलब्धियाँ तथा सीमाएँ' विषय पर प्रथम व्याख्यान हुआ। जिसमें गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर; बी० एच० ई० एल०; वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर तथा हरिद्वार की संस्थाओं से भी बुद्धिजीवियों ने भाग लिया। अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान में डॉ० भारतीय ने आर्यसमाज का इतिहास तथा वर्तमान स्थिति पर दृष्टि डालते हुए, आर्य समाज में आए दोषों को दूर करने के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किए। उन्होंने श्रोताओं की विविध शंकाओं का भी समाधान किया। मान्य कुलपति के अध्यक्षीय भाषण से सभा समाप्त हुई।

३ सितम्बर, **१९८४** को श्री ज्ञानचन्द रावत (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग) की पी–एच०डी० उपाधि हेतु मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। उन्होंने डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी (अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग) के निर्देशन में 'हरिऔध के महाकाव्यों का सामाजिक एवं शास्त्रीय अध्ययन' विषय पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्रबन्ध प्रस्तुत किया था।

४ सितम्बर, १९८४ को कुलपति जी की अध्यक्षता में वि०वि० पुस्तकालय में शिक्षा-पटल की बैठक सम्पन्न हुई।

५ सितम्बर, १९८४ को गुरुकुल विद्यालय के प्रार्थना–भवन में मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में डॉ० एस० राधाकृष्णन् स्मृति-दिवस तथा शिक्षक-दिवस मनाया गया। इस अवसर पर डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०) ने मुख्य–अतिथि का पद सुशोभित किया। इस अवसर पर विभिन्न वक्ताओं ने डॉ० राधाकृष्णन् के श्रद्धापूर्वक स्मरण के साथ शिक्षकों के दायित्वों पर प्रकाश डाला तथा उनकी सामाजिक सम्मानास्पदता पर बल दिया। मान्य अतिथि ने ब्रह्मचारियों को सम्बोधित करते हुए उन्हें देश की व्यवस्था में योगदान करने तथा ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्ति का प्रयास करने को कहा। सम्मान्य अध्यक्ष ने शिक्षकों के उद्बोधन के साथ-साथ भारतवर्ष के पूर्व–राष्ट्रपति तथा विश्व के ख्यातनामा महान् दार्शनिक डॉ० राधाकृष्णन् के भारतीय धर्म एवं दर्शन और विश्व–शान्ति के क्षेत्र में योगदान का प्रतिपादन

किया तथा अपने जीवन के प्रेरक संस्मरण सुनाते हुए, छात्रों को गुरुओं का सम्मान करने की प्रेरणा दी। अन्त में पण्डित सत्यकाम विद्यालंकार, आचार्य, गुरुकुल-विद्यालय के आशीर्वचनों के साथ सभा समाप्त हुई।

५ सितम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति जी के प्रयास से विश्वविद्यालय में डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०) के कर-कमलों द्वारा एक स्वास्थ्य-केन्द्र का उद्घाटन किया गया। इस केन्द्र का उद्देश्य वि० वि० एवं गुरुकुल विद्यालय के छात्रों एव कर्मचारियों को निःशुल्क चिकित्सा प्रदान करना है।

८, ९ सितम्बर, १९८४ को दर्शन-विभाग के तत्त्वावधान में उत्तरप्रदेश दर्शन परिषद् तथा मानवीय मूल्यों का समाज में अन्तःसम्बन्ध विषय पर अखिल भारतीय दर्शन सम्मेलन का, वेद मन्दिर में डॉ० जयदेव, अध्यक्ष, दर्शन विभाग के निर्देशन में संयुक्त रूप से आयोजन किया गया। इसमें भारतवर्ष के लगभग सभी वि०वि० के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में पारित संस्तुतियां अगले पृष्ठों पर देखिए।

२० सितम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में विज्ञान-महाविद्यालय में प्रो० ओमप्रकाश सिन्हा बलिदान-दिवस का आयोजन किया गया, जिसमें वि० वि० के सभी छात्रों एव अध्यापकों ने भाग लिया। इस अवसर पर श्री सुरेशचन्द त्यागी, डॉ०भारतभूषण विद्यालंकार, पं. सत्यकाम विद्यालंकार, श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी तथा डॉ० जबरसिंह सेंगर ने सिन्हा जी के सम्बन्ध में मधुर स्मृतियों का कथन करते हुए, उन्हें भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की तथा गुरुजन एवं शिष्यों में पारस्परिक सद्भाव तथा सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध की स्थापना पर जोर दिया। अन्त में मान्य कुलपति ने अपने अध्यक्षीय भाषण में वर्तमान समय में छात्रों के दायित्व पर प्रकाश डाला। इसका संयोजन श्री सुरेशचन्द त्यागी (प्राचार्य, विज्ञान महाविद्यालय) ने किया।

२४ सितम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा की अध्यक्षता में गुरु विरजानन्द-दिवस, वेदमन्दिर में उल्लास के साथ मनाया गया। इसका संयोजन श्री वेदप्रकाश शास्त्री एवं श्री प्रेमचन्द शास्त्री ने किया। इस अवसर पर ब्रह्मचारियों ने स्वामी विरजानन्द जी के विषय में अपने मधुर गीत प्रस्तुत किए तथा ऋषिपाल,ब्र० जगदीश, अतुल तथा नितिन कुमार ने स्वामी जी के जीवन के रोचक प्रसंगों पर प्रकाश डाला।

इसके अतिरिक्त पं० भगवद्दत्त, श्री रामप्रसाद वेदालंकार,, डॉ० राकेश शास्त्री, डॉ० त्रिलोकचन्द तथा ऋषिपाल (वेदालंकार-प्रथम वर्ष) ब्र० हरपाल (एम० ए०, वेद-द्वितीय वर्ष), रवीन्द्रकुमार (एम० ए०, संस्कृत, प्रथम वर्ष) ने स्वामी जी के प्रेरक प्रसंगों पर प्रकाश डाला तथा उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दी। 卐

मानवीय-मूल्य और समाज में अन्त:सम्बन्ध पर

राष्ट्रिय कान्फ्रेन्स की संस्तुतियाँ*

१ नैतिकता का आधार कोई सम्प्रदाय नहीं, अपितु मानवीय सम्वेदना और हित ही हो सकता है। सम्प्रदाय का अभिप्राय यहाँ पर ऐसे विश्वासों से है जिनमें उसकी किसी परम्परा में मान्य सिद्धान्त अन्तिम माना जाता है, चाहे वह असत्य ही क्यों न हो।

२—प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर सार्वभौमिक मानवीय-मूल्यों के पालन को स्थापित करने का प्रयास करें। ऐसी शक्ति जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करे तथा एक-दूसरे के प्रति सन्देह उत्पन्न करती है, उसका खण्डन करना चाहिए।

३—मनीषी वक्ताओं ने निष्कर्ष रूप में स्वीकार किया कि विज्ञान का लक्ष्य जीवन को ऐहिक और पारलौकिक समृद्धि एवं उत्कर्ष में निहित होना चाहिए। मानव-जीवन की सुख-सुविधा के लिए विज्ञान ने अनेक उपकरण जुटाये हैं, उसे अत्यन्त सशक्त और सबल बना दिया है, किन्तु नैतिक मूल्यों के अभाव में यह सब व्यर्थ है।

४- अनेक व्यक्तियों के समुदाय से समाज का निर्माण होता है तथा मानव-मूल्यों का प्रभाव सामाजिक मूल्यों पर पड़ता है। आज समाज को व्यक्ति से अधिक सम्मान और वरीयता प्राप्त है। कहावत है— "यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं न करणीयम्" अर्थात् कोई भी कार्य, भले ही नैतिक दृष्टि से कितना शुद्ध हो किन्तु यदि उसे सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है तो वह आचरणीय नहीं है। इससे व्यक्ति की गरिमा का ह्रास हुआ है और सामाजिक मूल्यों का भी पतन हुआ है।

५—बहुधा देखा गया है कि दुष्ट व्यक्ति के समक्ष सौ भले आदमी भी सत्य बात कहने से कतराते हैं। अब चिन्तन का प्रभाव यह हो गया है— "अरे जाने

***७-८ सितम्बर, १९८४ को विश्वविद्यालय में 'मानवीय-मूल्य और समाज में अन्त:सम्बन्ध' विषय पर एक राष्ट्रिय कान्फ्रेन्स का आयोजन किया गया। गम्भीर विश्लेषणोपरान्त विद्वानों की संस्तुतियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।**

भी दो, हमें किसी से क्या लेना-देना है, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। समाज-सुधार का ठेका हमने ही थोड़े ले रखा है।" चिन्तन के इसी ढंग ने समाज में दुर्जनों को बढ़ावा दिया है। हमें इसके विरुद्ध न्याय का पक्ष लेना चाहिए। इसके लिए जन-जागरण आवश्यक है। संगोष्ठी में उक्त समस्या के समाधानार्थ विचार प्रस्तुत किये गये कि समाज में जीवन-मूल्यों का स्तर उन्नत किया जाये।

६—विभिन्न संस्कृतियों में जीवन की परिभाषा और उसके मूल्यांकन का दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् प्रतिपादित है। कहीं संघर्ष का नाम जीवन है, तो कहीं शान्ति हो जीवन है। किसी के अनुसार जीवन की सार्थकता निरन्तर गतिमान रहने में है, तो किसी की मान्यता के अनुसार तत्त्वज्ञानपूर्वक मोक्ष प्राप्ति में है। संगोष्ठी के निष्कर्ष के आधार पर जीवन की सार्थकता धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, इस पुरुषार्थ चतुष्टय की उपलब्धि एवं समन्वय में है।

७—संगोष्ठी में निष्कर्ष के रूप में स्वीकृत कुछ सांस्कृतिक जीवन - मूल्य इस प्रकार हैं—

(क) ज्वलितं तु क्षणं श्रेयः न तु धूमायितं चिरम्।

अर्थात् प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी जीवन क्षण-भर का भी श्रेष्ठ है, धुएँ की तरह निरन्तर सुलगते रहकर लम्बे काल तक जीना निस्सार है।

(ख) जीवन का महत्व सदाचार और पावनता में है।

(ग) अन्याय को सहना, अन्याय करने से अधिक पापकारी है।

(घ) तप, त्याग और सत्य जीवन के स्तम्भ हैं।

(ङ) अर्थ का संग्रह, दान के लिए होना चाहिए।

८—राजनीति इस समय छल का पर्याय बन गयी है। इस छल की राजनीति ने आज राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश पा लिया है, जिस कारण स्वार्थ, प्रपञ्च एवं विघटन की प्रवृत्ति सर्वत्र व्याप्त है। यह ठीक है कि राजनीतिक-मूल्य अन्य जीवन-मूल्यों से कुछ विशिष्ट होते हैं, उसमें राष्ट्र की रक्षा के लिए कूटनीति का आचरण किया जा सकता है, किन्तु राजनीति का अर्थ छल नहीं है। राजनैतिक-मूल्य भी सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और अस्तेय पर आश्रित होने चाहियें। इसी में सबका हित है।

९– कुछ चिन्तकों का विचार है कि राजनीतिक-मूल्यों में धर्म का समन्वय किया जाना चाहिये। राजनीति और धर्म ये दो पृथक्-पृथक् तत्त्व हैं। राजनीति में धर्म का प्रवेश श्रेयस्कर हो सकता है, किन्तु धर्म में राजनीति का प्रवेश वर्जित है।

१०–जब हम नैतिक मूल्यों के निर्धारण की बात करते हैं तो वैदिक आचार-संहिता सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होती है। परन्तु वेदों के अर्थ साम्प्रदायिक न होकर वैज्ञानिक होने चाहिएँ। उन अर्थों पर किसी सम्प्रदाय-विशेष का प्रभाव नहीं होना चाहिए। हम अपने प्राचीन नैतिक मूल्यों को भुला बैठे हैं। इसी कारण आज मानसिक-तनाव, असन्तोष, पारिवारिक-कलह, यौन-विकृति तथा विक्षिप्तता में वृद्धि हुई है। यदि हम उन्हीं पुरातन-नैतिक-मूल्यों को स्वीकार कर लें, तो व्यक्ति और समाज की समस्त कुण्ठायें और तनाव समाप्त हो जायें।

११ –भारतीय आचार-संहिता में नैतिक-मूल्यों का निर्धारण करते समय, व्यवहार के किसी भी पहलू की उपेक्षा नहीं की गई है। जहाँ एक ओर यह कहा गया है कि "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" अर्थात् किसी प्राणी की हिंसा न करें, तो वहाँ दूसरी ओर यह भी निर्देश "आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्", आततायी को देखते ही मार देना चाहिये। परद्रव्य को लोष्ठ और परनारी को मातृवत् समझना भारतीय नीति की रीति सर्वथा निर्दोष है। प्रीतिपूर्वक और धर्मानुसार व्यवहार ही जीवन का आदर्श है। इस सम्मेलन की संस्तुति के अनुसार वैदिक-नैतिक-मूल्य शाश्वत सत्य हैं।

१२—जीवन-मूल्यों के परिवर्तन और परिवर्धन पर संचार-साधनों ने भी अपना प्रभाव डाला है। दूरदर्शन, रेडियो, समाचार-पत्र, डाक-व्यवस्था, रेल-सेवा, सड़क-परिवहन, वायुयान आदि संचार-साधन अब जीव के अपरिहार्य अंग बन गये हैं। जीवन को बनाने और समझने में इनकी भी भूमिका है। विश्व का बहुविध ज्ञान प्राप्त करने में जहाँ इनका कल्याणकारी प्रयोग है, वहाँ इनके दुरुपयोग के परिणाम बहुत भयंकर सिद्ध हो सकते हैं। इस सम्मेलन की संस्तुति है कि संचार-तन्त्र को लोकोपयोगी एवं आदर्शात्मक बनाया जाये, जिससे जीवन-मूल्यों में विकासोन्मुख प्रवृत्ति का सर्जन हो सके।

१३—बालक के सुकोमल मन पर परिवेश का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। माता-पिता और आचार्य का, जैसी विचारधारा, जैसा आहार-व्यवहार और जैसा क्रियाकलाप होगा उसी का विस्तार बालक में होगा। विद्वानों की संस्तुति है कि बालक के निर्माण के उचित और उन्नत परिवेश का निर्माण किया जाये।

१४—बालकों के जीवन का मूल्य-निर्धारण बहुत कुछ पुस्तकों पर भी निर्भर करता है। उनके लिए महापुरुषों के जीवन-चरित्र, प्रभु–भक्तिपूर्ण साहित्य तथा सामान्य-ज्ञान वर्धन करने वाली पुस्तकें सुलभ करानी चाहिएँ। जिस प्रकार नवीन पात्र में लगा हुआ चिन्ह मिटता नहीं, उसी प्रकार बाल्यावस्था में पड़ा हुआ सस्कार बालक के मन पर चिरस्थायी होता है।

१५—यह तो हम देखते ही रहे हैं कि सामाजिक दबावों के कारण जीवन-मूल्य बड़ी द्रुत गति से बदल रहे हैं। जीवन-मूल्यों के ऐसे परिवर्तनों से कोई सुखद परिणाम निकला हो, ऐसी बात नहीं है। समस्यायें बढ़ी हैं, कष्ट बढ़ा है, मानसिक तनाव बढ़े हैं। ऐसे काल में प्राध्यापकों का क्या कर्त्तव्य है, वह एक विचारणीय प्रश्न है।

आमन्त्रित विद्वानों की संस्तुति है कि जीवन-मूल्यों के अनर्थकारी परिवर्तन की धारा को यदि कोई रोक सकता है, तो वह अध्यापक-वर्ग ही है। गुरु ही प्रकाश दिखला सकता है। उनकी भूमिका यह होनी चाहिए कि पहले वह स्वयं अपने गौरव और गरिमा को पहचानें तथा अपने आचरण में स्वस्थ-जीवन-मूल्यों को प्रतिपादित करें। तदनन्दर ही वे अपने शिष्यों को स्वस्थ प्रेरणा दे सकेंगे।

गुरुजन का यह नैतिक दायित्व है कि वह अपने परिवेश के लोगों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलें, उन्हें बतायें कि श्वास–प्रक्रिया मात्र का चलते रहना ही जीवन नहीं है। जीवन नाम है उस ज्वलन्त इच्छा का जो व्यक्ति को निरन्तर आत्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर करे।

१६—(क) शिक्षा, समाज–कल्याण एवं संस्कृति मन्त्रालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली, उक्त समस्या को अपने प्रमुख कार्यक्रमों में सम्मिलत करें, ताकि मानवीय–मूल्यों को संरक्षण मिले और समाज की उक्त समस्या का समाधान ढूंढ़ा जा सके।

(ख) यह भी संस्तुति की जाती है कि इस विकट समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए विश्वविद्यालय, अन्य शिक्षण-संस्थायें अपने यहाँ पर वर्ष में तीन-चार बार राष्ट्रिय, क्षेत्रीय, स्थानीय संगोष्ठियाँ आयोजित करें, ताकि मानवीय-मूल्यों के ह्रास को रोका जा सके।

———

गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय के विकासार्थ
दानकर्त्ताओं की सूची

१.	श्री विश्वनाथ मल्होत्रा, दिल्ली	५०१—००
२.	श्रीमती सत्या मल्होत्रा, दिल्ली	२५०—००
३.	श्री सुदर्शन बजाज, दिल्ली	५००—००
४.	श्री वीरेन्द्र जी (कुलाधिपति), जालन्धर	५०१—००
५.	श्री विजय शास्त्री, योगी फार्मेसी, कनखल	२५०—००
६.	श्री गोविन्दराम भुटानी	१०१—००
७.	श्री लखीराम, दिल्ली	१०१—००
८.	श्रीमती शिवराजवती, बम्बई	५०१—००
९.	श्रीमती सीतादेवी, दीनानाथ ट्रस्ट	२६००—००
१०.	श्रीमती सन्तोष सेठ	५१—००
११.	श्रीमती ईश तथा श्री आनन्दप्रकाश सचदेव, बम्बई	२१—००
१२.	श्री नरेन्द्र जुनेजा	२५१—००
१३.	श्रीमती वेदवती चोपड़ा	२०२—००
१४.	श्री वेदप्रकाश पुरी	१०१—००
१५.	श्री प्रकाश अरोरा	५१—००
१६.	श्रीमती पुष्पा भण्डारी	१०१—००
१७.	श्रीमती प्रेमलता महता	१०१—००
१८.	श्रीमती विद्यावती भण्डारी	१०१—००
१९.	श्रीमती कुलदीप जुनेजा	२५१—००
२०.	कैप्टन देव रतन	२५१—००
२१.	श्री शिशुपाल	१००—००
२२.	श्री शिवलाल सिंघवानी	१०१—००
२३.	श्रीमती चन्द्रवती राय	१०१—००
२४.	श्री ईश्वर सचदेव	२१—००
२५.	श्री विजलानी	५००—००
२६.	श्रीमती शकुन्तला देवी	५१—००
२७.	शक्ति कन्स्ट्रक्शन कम्पनी, बम्बई	१०००—००

२८.	श्री मणिलाल भाई कान्तिभाई पटेल	१५१—००
२९.	श्री पाटकर शेट, कल्याण	२५—००
३०.	श्री वेंकटेश्वर बाला जी, ठाणे	५००—००
३१.	श्री धर्मवीर गुलाटी	५०१—००
३२.	आर्यसमाज, घाटकोपर-बम्बई	१२००—००
३३.	विलियम इण्डस्ट्रीज़	२५०—००
३४.	एल० वी० पटेल एण्ड कम्पनी, घाटकोपर-बम्बई	५००—००
३५.	स्वर्गीय श्री हरीशचन्द्र द्वारा श्री मनीषदेव, सुजातपुर	४०—००
३६.	श्री विमल सूद, सान्ताक्रुज़-बम्बई	१२००—००
३७.	इक्नोमिक ट्रान्सपोर्ट, बम्बई	२५०—००
३८.	श्री प्रकाशचन्द्र, सान्ताक्रुज़-बम्बई	२५०—००
३९.	श्रीमती विमलादेवी मरवाह, बम्बई	१०१—००
४०.	श्री सुर्दशन वासुदेव, बम्बई	११—००
४१.	श्री सुभाष पाल	५१—००
४२.	श्रीमती मधु थापर	२१—००
४३.	श्री विजलानी	५००—००
४४.	आर्यसमाज, सान्ताक्रुज़-बम्बई	१२००—००
४५.	श्री एस. डी. शर्मा, स्वामीनगर, नयी दिल्ली	५०१—००
४६.	श्रीमती सीतादेवी, दीनानाथ ट्रस्ट	१०१—००
	कुल योग:	१६०१४—००

———

जनवरी '८४ से मई '८४ तक पुस्तकालय की विशेष उपलब्धियाँ

प्रस्तुतकर्त्ता—जगदीशप्रसाद विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष

१. जनवरी ८४ से मई ८४ तक की अवधि में कुल ६९९ नई पुस्तकों को मंगवाया गया।

२. उक्त अवधि में पुस्तकालय में गुरुकुल के प्रकाशनों का एवं गुरुकुल के स्नातकों एवं प्राध्यापकों के प्रकाशनों का विशेष कक्ष बनाया गया तथा इस कक्ष में संग्रहीत पुस्तकों की फरवरी ८३ में प्रदर्शनी भी लगाई गई। जिसे मान्यवर कुलाधिपति जी एवं परिद्रष्टा महोदय ने गहरी रुचि से देखा।

३. पुस्तकालय की लगभग १००० पत्रिकाओं की जिल्दबन्दी इसी अवधि के दौरान कराई गयी। ये पत्रिकायें जिल्दबंदी हेतु पिछले अनेक वर्षों से प्रतिक्षित थी। इसी प्रकार २५०० पुस्तकों की जिल्दबंदी भी कराई गई।

४. पुस्तकालय में उपलब्ध १९वीं शताब्दी की दुर्लभ पुस्तकों का संग्रह बनाया गया। उपलब्ध पांडुलिपियों का केटेलाग तैयार किया गया।

५. प्रतियोगितात्मक परीक्षा पुस्तक संग्रह की लगभग २०० पुस्तकें मंगवाई गई।

६. यू० जी० सी० की विजिटिंग टीम ने दिनांक ६-३-८४ को पुस्तकालय का अवलोकन किया तथा पुस्तकालय के विभिन्न संग्रहों से वे विशेष रूप से प्रभावित हुए।

७. पुस्तकालय की नियमित बैठकें दिनांक २-१-८४ एवं दिनांक १२-५-८४ को सम्पन्न की गई जिसमें पिछले वर्षों के अनेक उलझनपूर्ण मामलों पर निर्णय लिया गया।

८. सर्वप्रथम विभिन्न विषयों की विदेशी महत्त्वपूर्ण पत्रिकायें मंगवाने का कार्य इस अवधि में किया गया। लगभग २५ विदेशी पत्रिकाओं के आदेश भेजे गये।

९. यू०जी०सी० विजिटिंग टीम ने पुस्तकालय के लिए ४.७५ लाख रुपये का विशेष अनुदान स्वीकृत किया जो पहले स्वीकृत ५ लाख रुपये की राशि से अतिरिक्त है तथा इस अनुदान से व्यापक रूप से पुस्तकालय के संग्रह को नवीनतम बनाया जा रहा है।

१०. स्टाक प्रमाणीकरण का कार्य इस अवधि में शुरु कराया गया है।

११. स्वर्गीय धर्मदत्त जी वैद्य के जीवनपर्यन्त २०० बहुमूल्य पुस्तकों के संग्रह को पुस्तकालय हेतु उनके परिवार से भेंटस्वरूप प्राप्त किया गया।

———